इकाई –1

अनुसंधान का अर्थ, अनुसंधान की परिभाषा एवं स्वरूप, अनुसंधान के प्रयोजन, अनुसंधान के प्रकार : साहित्यिक एवं साहित्येतर अनुसंधान, अनुसंधानकर्ता के गुण, शोध निर्देशक के गुण

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 विषय विवेचन

1.3.1 अनुसंधान का अर्थ

1.3.2 अनुसंधान की परिभाषा

1.3.3 अनुसंधान का स्वरूप

1.3.4 अनुसंधान के प्रयोजन

1.3.5 अनुसंधान के प्रकार : साहित्यिक एवं साहित्येतर अनुसंधान

1.3.6 अनुसंधानकर्ता के गुण

1.3.7 शोध निर्देशक के गुण

1.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

1.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

1.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

1.7 सारांश

1.8 स्वाध्याय

1.9 क्षेत्रीय कार्य

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए।

1.1 उद्देश्य :

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

1. अनुसंधान के स्वरूप को समझ सकेंगे।
2. अनुसंधान के प्रयोजन से परिचित होंगे।
3. साहित्यिक एवं साहित्येतर अनुसंधान से परिचित होंगे।
4. अनुसंधानकर्ता के गुणों से अवगत होंगे।
5. शोध निर्देशक के गुणों से परिचित होंगे।

1.2 प्रस्तावना:

प्राचीन काल से ही मनुष्य ने अपने चारों ओर विद्यमान परिस्थितियों और वातावरण को समझने का प्रयास किया है। जीवन को सहज एवं सरल बनाने के लिए उसने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु नए-नए शोध तथा अविष्कार किए हैं। इन्हीं अनुभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह जाने-अनजाने शोध तथा अनुसंधान कार्य में निरंतर संलग्न रहता है। कालांतर में इसकी एक निश्चित प्रविधि विकसित हुई है, जिसे अनुसंधान की संज्ञा दी जाने लगी।

अनुसंधान शब्द मूलतः अंग्रेजी के रिसर्च का पर्यायवाची हैं। अनुसंधान को शोध कार्य भी कहा जाता है। मुख्यतः अनुसंधान कार्य एक ज्ञानसाधना है। अनुसंधान कार्य में तथ्य और सत्य को प्रस्तुत किया जाता है। अनुसंधान अथवा शोध कार्य की मूल प्रेरणा जिज्ञासा वृत्ति है। मानव में जिज्ञासु वृत्ति होती है, जिसके कारण मानव प्रकृति और चराचर के सभी रहस्यों को जानना चाहता है। इन रहस्यों को जानने के लिए मानव अनुसंधान की ओर बढ़ता है। अज्ञात, अप्राप्य रहस्यों को अपनी प्रज्ञा के द्वारा अन्वेषण करता है। यही अन्वेषण अथवा जिज्ञासा की वृत्ति ही अनुसंधान का मूल बीज या उसकी प्रेरणा होती है। मानवीय व्यवहार में व्यवस्थित ज्ञान की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। कृषि युग से औद्योगिक युग और औद्योगिक युग से सूचना युग की यात्रा में पाथेय ज्ञान ही रहा है। आज जिन्हें हम विकसित राष्ट्र कहते हैं, वे सुचना युग की यात्रा हैं। वहां सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक गतिविधियों में नवीनतम सूचनाओं की उत्पत्ति, आदान-प्रदान और उपयोग होता है। यहां तक कि सकल घरेलू उत्पाद का अधिकांश हिस्सा अनुसंधान एवं विकास तथा सेवा क्षेत्र की गतिविधियों से आता है। इन राष्ट्रों में अनुसंधान एवं विकास और शैक्षणिक गतिविधियों को सभी स्तरों पर प्रोत्साहित एवं समर्थित किया जाता है। साथ ही इन राष्ट्रों में विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, यहां तक कि मानविकी के क्षेत्रों में भी नवीनतम वैज्ञानिक शोधों को चारों ओर से बढ़ावा दिया गया है।

अनुसंधान किसी भी क्षेत्र में 'ज्ञान की खोज' करना या 'विधिवत गवेषण' करना होता है। समाज की निरंतर बढ़ती हुई आवश्यकताओं एवं सुविधाओं की मांग ने नए-नए आविष्कारों को जन्म दिया है। आज

अनुसंधान एवं विकास की गतिविधियां एकल प्रयास न होकर सामूहिक या संगठित प्रयास बन चुके हैं तथा इन गतिविधियों को प्रोत्साहित करने एवं त्वरित परिणामों की प्राप्ति के लिए अनुसंधान संस्थाओं एवं प्रयोगशालाओं को स्थापित किया है। यह संस्थाएं दिन-रात अनुसंधान कार्य में निरंतर वृद्धि कर रही हैं है। सरकार ने भी अनुसंधान एवं विकास गतिविधियों के महत्व को समझा है और उन्हें अनुदान एवं विविध प्रकार की सहायता देकर प्रोत्साहित किया है।

मुख्यतः अनुसंधान कार्य दो स्तरों पर हो रहा है। एक विश्वविद्यालय स्तर पर जिसमें शोधार्थी अनुसंधान उपाधि जैसे एम. फिल. और पीएच.डी के माध्यम से अनुसंधान कार्य करता है। दूसरे स्तर पर निजी एवं सरकारी अनुसंधान संस्थाएं शोध एवं विकास गतिविधियों को अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रायोजित करती हैं।

1.3 विषय विवेचन :

1.3.1 अनुसंधान का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ :

अनुसंधान शब्द अनु+संधान से बना है। अनु उपसर्ग है। संधान में 'धा' मूल धातु है, जिसका अर्थ है धारण करना अथवा रखना। संधान शब्द को अनु उपसर्ग लगने से अनुसंधान शब्द बना है। अनु का अर्थ है - पीछे लगना या अनुसरण करना। संधान का अर्थ है - पूर्ण एकाग्रता से अनवरत परिश्रम और धैर्य से अपने लक्ष्य की और बढ़ना। अतः अनुसंधान से तात्पर्य है -"पूर्ण एकाग्रता से अनवरत परिश्रम और धैर्य से किसी विशिष्ट कार्य के पीछे लगना अथवा उसका अनुसरण करते रहना।"

अनुसंधान शब्द को अंग्रेजी भाषा में 'रिसर्च' (Research) कहा जाता है। Re-search शब्द का हिंदी अनुवाद 'फिर से यानी बार-बार' होता है तथा सर्च (Search) का अर्थ 'खोज करना' अथवा 'खोजना' होता है। इस प्रकार रिसर्च का अर्थ हुआ प्रदत्तों की आवृत्यात्मक और गहन खोज करना। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो प्रदत्तों की तह में बैठकर कुछ निष्कर्ष निकालना, नये सिद्धांतों की खोज करना और उन प्रदत्तों का स्पष्टीकरण करना रिसर्च की प्रक्रिया के अंतर्गत आता है। अतः अनुसंधान वह प्रकिया है जिसके द्वारा अनुसंधानकर्ता किसी विषय को बार-बार खोजता है जिसके माध्यम से वह उसके विषय में विभिन्न समंकों (Data) को एकत्रित करता है तथा उनेक विश्लेषण के आधार पर उसके संबंध में अपना निष्कर्ष निकालता है। अर्थात् उपलब्ध समंकों की तह में पहुंचकर कुछ निष्कर्ष निकालना नए सिद्धांतों की खोज करना तथा उनके प्राप्त समंकों का विश्लेषण करना ही अनुसंधान के अंतर्गत आता है। अनुसंधान में किसी समस्या का वैज्ञानिक अन्वेषण भी सम्मिलित होता है। अन्वेषण की क्रिया इस तथ्य की परिचायक है कि समस्या को अति निकटता से ही देखा जाये। उसकी पृच्छा (Inquiry) की जाये तथा उसका ज्ञान (Knowledge) प्राप्त किया जाये।

1.3.1.1 अनुसंधान के लिए प्रयुक्त विभिन्न शब्द और औचित्य :

शोध के पर्यायों को भाषा की दृष्टि से दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। हिंदी भाषा के शोध पर्याय और अंग्रेजी भाषा के शोध पर्याय जिसका विवेचन निम्नांकित रूप में प्रस्तुत किया है।

अ) हिंदी भाषा के शोध पर्याय :

1. **शोध :**

यह अनुसंधान का समानार्थी शब्द है। कुछ विद्वानों ने 'शोध' शब्द को अनुसंधान शब्द से भी अधिक उचित और पर्याप्त माना है। 'शोध' शब्द 'शुद्ध' धातु से बना है। 'शुद्ध' का मूल अर्थ है शुद्ध करना, परिमार्जित करना, संदेह रहित बनाना, निभ्रांत बनाना तथा प्रामाणिक बनाना। इस प्रकार शोध का अर्थ हुआ निर्मल, परिशुद्ध, सर्वग्राह्य, प्रामाणिक अथवा मानक। यह शोध शब्द का विस्तृत अर्थ है। इस अर्थ में विश्व का कोई भी पदार्थ 'परिशुद्ध' रूप में शोध होगा। परंतु अनुसंधान के क्षेत्र में अज्ञात तथा विस्तृत तथ्यों को सर्व ग्राह्य बनना ज्ञात तथ्यों को नवीन दृष्टि से संदेह रहित तथा निभ्रांति बनाना शोध कहलाता है। इस प्रकार परिमार्जित तथ्य, तथ्यों के परिमार्जन की प्रक्रिया, तथ्य प्राप्ति के प्रयत्न तथा अनवरत चिंतन आदि सभी शोध के महत्वपूर्ण तत्व शोध शब्द में विद्यमान है। शब्द की मूल प्रकृति तथा प्रकार्यता की दृष्टि से यह शब्द ज्ञात तथा प्राप्त तथ्यों के प्रमाणीकरण से संबंध है।

2. **अनुसंधान :**

अनुसंधान शब्द अनु + संधान प्रक्रिया से बना है। संधान का अर्थ है निशाना लगाना, लक्ष्य निर्धारित करना। अर्थात् निर्धारित लक्ष्य तथा लक्ष्य प्राप्ति का प्रयत्न करना। 'अनु' पूर्व - प्रत्यय का अर्थ है - पीछे। इस प्रकार इस शब्द का प्रमुख अर्थ हुआ अनुगमन करना अथवा निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करने का निरंतर प्रयास करना। अनुसंधान शब्द में अनवरत चिंतन ज्ञात तथ्यों में निहित जीवन मूल्यों की स्थापना आदि तत्त्व अनुस्यूत हैं।

3. परिशीलन :

'परिशीलन' शब्द परि+शीलन प्रक्रिया से उत्पन्न हुआ है। परि का अर्थ है परित: अर्थात् चारों ओर और शीलन का अर्थ है अनवरत चिंतन। परिशीलन का मूल अर्थ हुआ किसी वस्तु का सर्वांगीण चिंतन। यह शब्द प्रकृति से आलोचना के अधिक निकट है, किंतु आज इसका प्रयोग शोध के क्षेत्र में खोज के लिए होने लगा है।

4. **अन्वेषण :**

'अन्वेषण' शब्द अनु + एषण (इष) प्रक्रिया से बना है। इष् या एष् का अर्थ है अभिलाषा करना और अनु का अर्थ है पश्चात् या निरंतरता। इस प्रकार 'अन्वेषण' शब्द का अर्थ हुआ अभिलषित वस्तु का अनुगमन करना अथवा वांछित वस्तु की प्राप्ति का प्रयत्न करना। शोध के अर्थ में इसका अर्थ हुआ ज्ञात वस्तु की प्राप्ति का प्रयत्न करना। इस प्रकार शोध के आंशिक गुण इस शब्द में विद्यमान है, सभी गुण नहीं। शोधकार्य में जो निष्टा, गम्भीरता, लक्ष्योन्मुखता का भाव होता है, वह इसमें नहीं मिलता है।

5. **गवेषणा :**

गवेषणा शब्द की व्युत्पत्ति गो + एषणा से हुई है। गो का अर्थ है गाय और एषणा का अर्थ है खोई हुई को ढूंढते रहना। गवेषणा का शब्दार्थ हुआ गौ की इच्छा। बाद में यह अर्थ विस्तार से गौ की खोज और अंत में प्रत्येक वस्तु की खोज के लिए प्रयुक्त होने लगा परन्तु शोध के क्षेत्र में आज इसका अर्थ है ज्ञात तथा अज्ञात तथ्यों की खोज। इस प्रकार इस शब्द का अर्थ विस्तार हुआ है।

6. **अनुशीलन :**

अनुशीलन शब्द अनु + शील से बना है। शील का अर्थ है- चिंतन करना। शीलन का अर्थ है चिंतन-मनन तथा अनु का अर्थ है पीछे। इसका मूल अर्थ हुआ चिंतन के पीछे चलना। शोध के क्षेत्र में इसका अर्थ हुआ निश्चित चिंतन का अनुगमन करना।

7. **खोज :**

खोज का शाब्दिक अर्थ है - खोई हुई वस्तु का पता लगाना। खोज से बना 'खोजी' शब्द जो ब्रज भाषा में ज्योतिषी के लिए प्रयुक्त होता है। समुद्र, नदी तथा तालाब आदि में खोई वस्तुओं को ढूंढ निकालने वाले व्यक्ति के लिए भी इस शब्द का प्रयोग होता है। कोलंबस तथा वास्को डी गामा ने अमरिकी की खोज की आदि स्थितियों में खोज दूरस्थ अज्ञात वस्तुओं के लिए प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार ज्ञात वस्तु को स्पष्ट करना तथा अज्ञात वस्तु का पता लगाना दोनों ही अर्थ 'खोज' शब्द में जुड़ गए हैं। आज शोध के क्षेत्र में इस शब्द का अर्थ ज्ञात तथा अज्ञात तथ्यों के स्पष्टीकरण से है।

आ) अंग्रेजी भाषा के शोध पर्याय:

1. **रिसर्च :**

रिसर्च शब्द रि + सर्च प्रक्रिया से बना है। सर्च का अर्थ है तलाशी लेना या छिपी हुई वस्तु का पता लगाना। रि का अर्थ है पुनः बार बार। इस प्रकार रिसर्च का अर्थ हुआ ज्ञात वस्तु की पुनः खोज। विश्वविद्यालयीन शोध-नियमों में दूसरा तत्व है 'ज्ञात तथ्यों का पुनराख्यान' रिसर्च इसी द्वितीय तत्व से संबंध

है। अनेक विद्वान् हिंदी के अनुसंधान शब्द को रिसर्च शब्द का अनुवाद अथवा रूपांतरण मानते हैं। किंतु अनुसंधान शब्द की एकनिष्ठता तथा चिंतन की निरंतरता रिसर्च शब्द की मूल भावना में विद्यमान नहीं है।

2. **डॉक्टरेट :**

डॉक्टरेट शब्द 'डॉक्टर' शब्द से बना है। डॉक्टर का अर्थ है पूज्य अथवा सम्माननीय व्यक्ति। किंतु शोध के क्षेत्र में इसका अर्थ है शोध उपाधि से अलंकृत व्यक्ति। डॉक्टरेट का अर्थ है शोध उपाधि। इस प्रकार डॉक्टर यह व्यक्ति है जो विश्वविद्यालय की परिधि में रहकर विश्वविद्यालय के नियमों का पालन करता हुआ शोध-उपाधि को प्राप्त करता है।

3. **पीएच.डी:**

पीएच.डी एक संक्षिप्त शब्द है। इसका पूर्ण रूप है डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी। फिलॉसफी का अर्थ चिंतन है तथा डॉक्टर का अर्थ है चिंतन प्रधान व्यक्ति।

स्पष्ट है कि उपर्युक्त सभी पर्याय शोध प्रकृति के परिचायक है। इनसे शोध के तत्व ही नहीं, उसका स्वरूप भी स्पष्ट होता है।

1.3.2 अनुसंधान की परिभाषा :

अनुसंधान या रिसर्च मूलतः विज्ञान की संकल्पना है। भारतीय ज्ञान और साहित्य में इसका आधुनिक प्रयोग पाश्चात्य साहित्य और चिंतन से ग्रहण किया गया है। पाश्चात्य विज्ञान और मानविकी साहित्य में अनुसंधान के सैद्धांतिक पक्ष पर प्रचुर मात्रा में विवेचन प्रस्तुत किया है। जिसमें इसके विभिन्न पक्षों पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों ने अनुसंधान की जो परिभाषाएं दी है उनमें से कुछ उपयुक्त परिभाषाओं का यहां विश्लेषण किया गया है।

1. **लउण्डबर्ग :**

लउण्डबर्ग शोध को परिभाषित करते हुए लिखते हैं "अवलोकित सामग्री का संभावित वर्गीकरण, सत्यापन एवं साधारणीकरण करते हुए पर्याप्त कर्म विषयक और व्यवस्थित पद्धति है।"

2. **रेडमैन एवं मोरी :**

रेडमैन एवं मोरी शोध को परिभाषित करते हुए लिखते हैं "नये ज्ञान प्राप्ति के व्यवस्थित प्रयास को हम शोध कहते हैं।"

3. **पी. वी. यंग :**

पी. वी. यंग शोध को परिभाषित करते हुए लिखते हैं "अनुसंधान एक ऐसी व्यवस्थित विधि है जिसके द्वारा नवीन तथ्यों को खोजने अथवा पुराने तथ्यों की विषयवस्तु, उनकी क्रमबद्धता, अंतर्संबंध, कार्य-कारण व्याख्या और उनके निहित नैसर्गिक नियमों के पुष्टिकरण का कार्य किया जाता है।"

4. **एडवान्सड् लर्नरस् डिक्शनरी :**

"ज्ञान के किसी भी क्षेत्र या शाखा में नवीन तथ्यों की खोज हेतु सावधानीपूर्वक की जाने वाली कोई खोजबीन या अन्वेषण।"

5. **वेबस्टर सेविन्थ न्यू कॉलेजियट डिक्शनरी:**

"एक विशिष्ट प्रकार की जांच पड़ताल अथवा परीक्षण से है जिसकी सहायता से तथ्यों की खोज और व्याख्या की जा सके स्वीकृत सिद्धांतों अथवा नियमों को नवीन तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में संशोधित किया जा सके और इन संशोधित सिद्धांतों अथवा नियमों को व्यावहारिक रूप में प्रयोग में लाया जा सके।"

6. **डॉ. भगीरथ मिश्र:**

डॉ. भगीरथ मिश्र शोध को परिभाषित करते हुए लिखते हैं– "अनुसंधान के भीतर नवीन तथ्यों का, नवीन विचारों का, निष्कर्षों का, परम्पराओं का, दृष्टियों का एवं कारणों का उद्घाटन होता है।"

7. **आचार्य विनय मोहन शर्मा :**

विनय मोहन शर्मा शोध को परिभाषित करते हुए लिखते हैं– "शोध नये तथ्यों की खोज ही नहीं, उसकी तर्क सम्मत व्याख्या है।"

8. **डॉ. नगेन्द्र:**

डॉ. नगेन्द्र शोध को परिभाषित करते हुए लिखते हैं– "किसी लक्ष्य को सामने रखकर दिशा विशेष में बढ़ना या किसी तथ्य का परीक्षण करना ही अनुसंधान है।"

9. **परशुराम चतुर्वेदी :**

परशुराम चतुर्वेदी शोध को परिभाषित करते हुए लिखते हैं– "अनुसंधान की प्रक्रिया के अंतर्गत केवल किसी वस्तु विषयक तात्विक चिंतन या गवेषणा का ही समावेश नहीं रहता है, उसके सूक्ष्म निरीक्षण और विश्लेषण को भी उचित स्थान मिला करता है। इसमें उसके प्रत्येक अंश का एक दूसरे के साथ कार्य–कारण संबंध स्थापित करने तथा उनके संश्लेषण द्वारा किसी महत्वपूर्ण निश्चय तक पहुंचने की भी प्रधानता रहती है।"

10. **आचार्य नंददुलारे वाजपेयी:**

नंददुलारे वाजपेयी की परिभाषा में अनुसंधान की संकल्पना का विश्लेषण सूक्ष्मता के साथ किया गया है। वे लिखते हैं – "शोध में किसी अज्ञात तथ्य को प्रकाश में लाने और प्रतिष्ठित करने का आशय निहित होता है। शोध में बिखरे हुए तथ्यों का संयोजन और समाहार भी किया जाता है। शोध के लिए उस समस्त

सामग्री का संचय और संग्रह आवशयक है जो उस वस्तु या विषय से संबंधित है। इस समस्त संग्रह को सुव्यवस्थित रूप से सजाकर उसके आधार पर वस्तुमूलक स्थापनाएँ की जाती है और निर्णय दिए जाते हैं। शोध में विषय से संबंधित पूर्ववर्ती वक्तव्य दिए जाते हैं तथा उसके आधार पर निष्कर्ष का ऊप-न्यास किया जाता है। फिर उस निष्कर्ष की पुष्टि करने के लिए विरोधी अभिमतों का खंडन और निराकरण कर नये निर्णय की प्रतिष्ठा की जाती है। यह नया निर्णय जब स्वतंत्र विचार सरणी के रूप में उपस्थित होता है तब उसे 'थिसिस' या 'प्रबंध' कहते हैं।" वास्तविक अर्थ में यह परिभाषा नहीं है, लेकिन इसमें शोध की विशेषताओं का विश्लेषण पर्याप्त स्पष्ट रूप में किया गया है। इस परिभाषा में मुख्य बातें इस प्रकार है -

क) अज्ञात तथ्यों का उद्घाटन।

ख) विखरे तथ्यों का संयोजन।

ग) विषय से सम्बंधित सामग्री का संकलन।

घ) प्राप्त सामग्री का सुनियोजन।

ड) विश्लेषण और निष्कर्ष।

उपर्युक्त विद्वानों की परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि नये ज्ञान की खोज की दिशा में की गयी क्रमबद्धता एवं व्यवस्थित कोशिश शोध है। मानवीय जीवन में दिन-प्रतिदिन शोध की विशिष्ट भूमिका रही है। अंततः अनुसंधान में नवीन तथ्य, नवीन विचार और निष्कर्ष सामने आते हैं।

1.3.3 अनुसंधान का स्वरूप :

शोध शब्द अंग्रेजी के रिसर्च शब्द का हिंदी अनुवाद है। शोध का तात्पर्य एक ऐसे सत्य की लगातार खोज करते रहना है, जो कि पूर्णरूपेण ज्ञान नहीं हो सका है तथा जिसको लेकर जिज्ञासा बनी हुई है। अनुसंधान की प्रकृति तथा उसका स्वरूप मूलतः वैज्ञानिक रहा है। अनुसंधान में वैज्ञानिक प्रक्रिया द्वारा निरूपण होता है। विज्ञान की प्रकृति तथा विज्ञान का स्वरूप भी मूलतः अनुसंधान है। विज्ञान विषय वस्तु को शुद्धतम् बनाता है। अनुसंधान करने वाले अनुसंधानकर्ता परिस्थिति के अनुसार साधनों का उपयोग करते हैं। अनुसंधानात्मक क्षेत्रों, साधना एवं उपादानों में विभिन्नता भले ही हो उनका अंतिम लक्ष्य विषय का शुद्धतम् ज्ञान प्राप्त करना होता है।

मानव मन में स्वभावत: नई-नई जिज्ञासाओं का उदय होता है। तर्कशील और विवेकसंगत प्राणी होने के कारण मनुष्य अपनी जिज्ञासाओं से संबंध्द क्षेत्रों में नए-नए प्रयोगों के द्वारा नए-नए अन्वेषणों में प्रवृत्त रहता है। ऐसे नए अन्वेषणों की प्रवृत्ति के पीछे मनुष्य का मूल उद्देश्य जीवन को ओर अधिक सुखमय, सुंदर, उदात्त, विराट और सांस्कृतिक बनाना होता है। मनुष्य की सभी अन्वेषण उपलब्धियों को आमतौर पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता हैं-भौतिक और भौतिकेतर। भौतिकेतर अन्वेषण से अभिप्राय किसी अतिमानवीय अलौकिक क्षेत्रीय स्थापनाओं से नहीं है, बल्कि किन्हीं नए तथ्यों के अन्वेषण अथवा पारंपरिक

तथ्यों के नवीनीकरण से है, जिनका संबंध अनिवार्यतः मानव जीवन से ही होता है। दूसरे शब्दों में भौतिकेतर क्षेत्र में अन्वेषण से अभिप्राय सांस्कृतिक क्षेत्र के अन्वेषण से है। इस दिशा का अन्वेषण कहीं भी जीवन से कटा हुआ नहीं होता बल्कि जीवन के गहनतर अर्थों से जुड़ा हुआ होता है।

अनुसंधान किसी भी प्रकार का हो, वह ज्ञानवर्धक होता है। उसका उद्देश्य परम्परागत अर्जित ज्ञान के शोधन द्वारा सत्य की प्राप्ति है। वैज्ञानिक अनुसंधान में यांत्रिक क्रिया, निरीक्षण और तथ्य प्राप्त होता है। भौतिक क्षेत्र का अनुसंधान मानवीय आवश्यकताओं से संबंधित होता है। साहित्यिक अनुसंधान शाश्वत मूल्यों पर आधारित होता है। साहित्यिक अनुसंधान में कल्पना की आवश्यकता रहती है। इस प्रकार के शोध कार्यों में मनुष्य के आचरणों, भावनाओं, अनुभूतियों और विचारों पर शोध कार्य करना पड़ता है। तथ्य का निरूपण, अनुसंधानकर्ता की अनुभूति विवेक और कल्पना पर निर्भर है। कलात्मक प्रकृति से कोई भी अनुसंधान अलग नहीं हो सकता।

अनुसंधान में निष्ठा अत्यंत महत्वपूर्ण है। अनुसंधानकर्ता और निर्देशक को शोध कार्य पर परिपूर्ण निष्ठा रखनी चाहिए। इस कार्य के लिए उनमें अथक परिश्रम करने की तैयारी होनी चाहिए। इसके साथ ही उनमें पूर्ण लगन, एकाग्रता एवं विवेक शक्ति के द्वारा निर्णय लेने की शक्ति आवश्यक है। तभी कोई अनुसंधान कार्य सफल हो सकता है।

1.3.4 अनुसंधान का प्रयोजन :

अनुसंधान का उद्देश्य अथवा प्रयोजन दोनों का अर्थ एक ही है। अनुसंधान का इतिहास मानव जाति के इतिहास जितना पुराना है। मनुष्य अपने परिवेश विशेषकर सामाजिक कारकों से बहुत अधिक प्रभावित होता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है जिस कारण मनुष्य को अपने आस पास घटित होनेवाली घटनाओं को जानने एवं समझने की उत्सुकता रहती है। जिस कारण मनुष्य इन घटनाओं पर अपनी तर्क शक्ति से विचार-विमर्श करता है। उन समस्याओं की जड़ में जाकर हल खोजने का प्रयास करता है। उसे प्रभावित करनेवाले घटकों की जांच-पड़ताल करने के बाद ही निर्णय लेता है। शोध का उद्देश्य नये-नये विषयों की खोज करना है ताकि मानव जाति के पारस्परिक हितों के टकराव को कम करके मानव के जीवन को सुगम किया जा सके। सामान्यतः शोध या अनुसंधान करने का मुख्य प्रयोजन किसी समस्या का समाधान करना होता है। प्रत्येक शोध अध्ययन का विशिष्ट लक्ष्य होता है। अनुसंधान की समस्याओं में विविधता अधिक है इसलिए इसके प्रमुख चार प्रयोजन है। जिसे निम्नांकित रूप में प्रस्तुत किया है-

1. सैद्धांतिक प्रयोजन : (Theoretical Objectives)

अनुसंधान में वैज्ञानिक शोध-कार्यों द्वारा नये सिद्धांतों तथा नये नियमों का प्रतिपादन किया जाता है। इस प्रकार के शोध-कार्य व्याख्यात्मक होते हैं। इनके अंतर्गत चरों के सह-संबंधों की व्याख्या की जाती है। इसका प्रधान लक्ष्य चरों की उपयोगिता को सुनिश्चित करना एवं चरों में सह-संबद्धता स्थापित करना है। शोध मूल रूप से ज्ञान की वृद्धि का साधक है। इस दृष्टि से शोध का सैद्धांतिक उद्देश्य तथ्यों, घटनाओं तथा

समस्याओं के विषय में ज्ञान प्राप्त करना है, जिससे पुराने तथ्यों का सत्यापन, तथ्यों की खोज, सिद्धांतों का निर्माण तथा परीक्षण किया जा सकता है। जिनका उपयोग शिक्षा की प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाने में किया जाता है। शोध के सैद्धांतिक उद्देश्य निम्नांकित रूप में प्रस्तुत है-

अ) प्रयोगों द्वारा सिद्ध तथ्यों के आधार पर अवधारणाओं की रचना करना।

आ) पुराने तथ्यों की जांच एवं नवीन तथ्यों की जानकारी प्राप्त करना।

इ) पूर्व स्थापित सिद्धांत की जांच तथा परीक्षण करना।

ई) घटना एवं तथ्यों के मध्य कार्य, कारण संबंध को खोजना।

2. तथ्यात्मक प्रयोजन : (Factual Objectives)

शिक्षा के क्षेत्र में ऐतिहासिक अनुसंधानों के द्वारा नये तथ्यों की खोज की जाती है। इनके आधार पर वर्तमान घटनाओं को समझने में सहायता मिलती है। इस उद्देश्य की प्रकृति वर्णनात्मक होती है, क्योंकि तथ्यों की खोज करके, उनका अथवा घटनाओं का वर्णन किया जाता है। नवीन तथ्यों की खोज शिक्षा प्रक्रिया के विकास तथा सुधार में सहायक सिद्ध होती है।

3. सत्यात्मक प्रयोजन : (Establishment of Truth Objectives)

दार्शनिक प्रकृति के अनुसंधानों द्वारा नये सत्यों की स्थापना की जाती है। इनकी प्राप्ति अंतिम प्रश्नों के उत्तरों से की जाती है। दार्शनिक शोध कार्यों द्वारा शिक्षा के उद्देश्यों, सिद्धांतों तथा शिक्षण विधियों तथा पाठयक्रम की रचना की जाती है। शिक्षा की प्रक्रिया के अनुभवों का चिंतन बौद्धिक स्तर पर किया जाता है। जिससे नवीन सत्यों तथा मूल्यों का प्रतिस्थापन किया जाता है। संक्षेप में यहां पर शोध-कार्यों को प्रकृति से जोड़ने का प्रयास किया है।

4. व्यावहारिक प्रयोजन : (Application Objectives)

अनुसंधान के निष्कर्षों का व्यवहारिक प्रयोग होना आवश्यक है, किंतु कुछ शोध-कार्यों में केवल उपयोगिता को ही महत्व दिया जाता है, ज्ञान के क्षेत्र में योगदान नहीं होता है। इन्हें विकासात्मक अनुसंधान भी कहते हैं। क्रियात्मक अनुसंधान से शिक्षा की प्रक्रिया में सुधार तथा विकास किया जाता है अर्थात् इनका उद्देश्य व्यवहारिक होता है। स्थानीय समस्या के समाधान की दृष्टि से भी यह उद्देश्य व्यवहारिक होता है। स्थानीय समस्या के समाधान से भी इस उद्देश्य की प्राप्ति की जाती है। संक्षेप में निष्कर्षों के व्यवहारिक पक्ष को समझने का प्रयास किया जाता है। अनुसंधान के व्यवहारिक उद्देश्य निम्नांकित रूप में हैं-

अ) सर्वोत्कृष्ट विकल्प की खोज करना।

आ) भविष्य के लिए योजनाओं के निर्माण में सहयोग।

इ) सामाजिक एवं आर्थिक को सुलझाने में सहायक।

ई) किसी घटना के स्पष्ट कारणों के बारे में गहन जांच कर, उस समस्या को नियंत्रित करना।

उ) विभिन्न चरों में परस्पर संबंध स्थापित कर परिकल्पनाओं को स्वीकृत अथवा अस्वीकृत करना।

ऊ) राजकीय तथा आर्थिक नीतियों को आधार प्रधान करना।

ए) व्यवसाय तथा उद्योग की क्रियात्मक तथा नियोजन संबंधी समस्याओं के समाधान में सहयोग करना।

ऐ) सामाजिक संबंधों की समस्या तथा समाधान ढूंढने में सहायता करना।

5. **व्यक्तिगत प्रयोजन :**

एक सहज प्रश्न उपस्थित होता है कि आखिर कोई व्यक्ति अनुसंधान करने के लिए क्यों अभिप्रेरित होता है? इस प्रश्न के उत्तर में अनुसंधान के व्यक्तिगत उद्देश्य निम्नलिखित हो सकते हैं-

अ) अनुसंधान के आधार पर रोजगार एवं उन्नति प्राप्त हो सकती है। क्योंकि बहुत से ऐसे पेशे हैं, जिनमें प्रवेश के लिए किसी व्यक्ति को शोध करना आवश्यक होता है।

आ) कोई व्यक्ति समाज सेवा की दृष्टि से भी शोध एवं अनुसंधान कर सकता है।

इ) अनुसंधान करने का व्यक्तिगत उद्देश्य समाज में सम्मान प्राप्त करना भी हो सकता है।

ई) कुछ लोग रचनात्मक कार्य करने में आनंद का अनुभव प्राप्त करते हैं।

उ) कुछ अनुसंधानकर्ता उन मान्यताओं को सुलझाने संबंधी चुनौती स्वीकार करना उचित समझते हैं, जिनका वर्तमान में कोई हल नहीं है।

ऊ) सरकारी निर्देशों के आधार पर भी अनुसंधान करना अनिवार्य हो सकता है।

संक्षेप में अनुसंधान मानव ज्ञान को दिशा प्रदान करता है तथा ज्ञान भंडार को विकसित एवं परिमार्जित करता है। अनुसंधान विज्ञानसम्मत कार्यविधि और बोधपूर्ण तथ्यान्वेषण द्वारा विषय, प्रसंग, घटना, व्यक्ति एवं सन्दर्भ के बारे में सूचित समस्याओं, शंकाओं, दुविधाओं का निराकरण ढूँढ़ता है। साथ ही विस्मृत और अलक्षित तथ्यों को आलोकित करता है। नए तथ्यों की खोज तथा लक्षित विषय, वस्तु, घटना, व्यक्ति, समूह, स्थिति का सही-सही विवरण जुटाना एवं संकलित सामग्रियों का अनुशीलन, विश्लेषण करना, उनके अनुषंगी प्रकरणों से परिचित होना, एकाधिक प्रसंगों के साम्य-वैषम्य का बोध प्राप्त करना आदि शोध के प्रयोजन है।

1.3.5 अनुसंधान के प्रकार : साहित्यिक एवं साहित्येतर अनुसंधान

साहित्यिक शोध का स्वरूप वैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय शोध की अपेक्षा अधिक जटिल है। साहित्य की स्वरूपगत जटिलता साहित्यिक शोध की जटिलता का मूल कारण है। जहां विज्ञान का बोध भौतिक है, समाजशास्त्रों का बोध वैचारिक है, वहां साहित्य का बोध भौतिकता और वैचारिकता से आगे अनुभूतिपरक है, जिसमें विचार या चिंतन के साथ भावना और कल्पना का भी सामंजस्य रहता है। विज्ञानों और शास्त्रों में अनुभूति के रसात्मक, सृजनात्मक और मांगलिक या मूल्यात्मक रूप के लिए स्थान नहीं है।

सृजनात्मक साहित्य के शोध के लिए कोई सुनिश्चित यांत्रिक प्रणाली नहीं है। विज्ञान के विषयों से संबंधित शोध की सुपरिभाषित एवं निश्चित विधियां प्रचलित हैं। इसी प्रकार समाजशास्त्रीय विषयों की भी अपनी-अपनी शोध - पद्धति विकसित हो चुकी है, किंतु साहित्य के जटिल सृजनात्मक स्वरूप के कारण साहित्यिक शोध की अभी तक कोई सुनिश्चित पद्धति विकसित नहीं हो सकी है और ना ही इसकी कोई संभावना है, क्योंकि साहित्य का सृजनात्मक स्वरूप किसी प्रकार की यान्त्रिकता को स्वीकार नहीं कर सकता। इस संदर्भ में डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं "साहित्य में आत्म की प्रधानता है। अतः साहित्य के अध्ययन में आत्मतत्व का बहिष्कार कर एकांत वस्तुपरक अध्ययन की संभावना नहीं है। इस प्रकार का अध्ययन वस्तु से उलझकर जड़ बन जाएगा, क्योंकि साहित्य तत्वतः वस्तु नहीं है, अनुभूति है।" इसलिए साहित्यिक शोध के लिए शोधक में ज्ञानवृत्ति के साथ ही सृजन, सौंदर्य और संस्कृति के पोषक भाव-वृत्ति का समुचित संयोग भी अभीष्ट है। शोधक में बौद्धिक क्षमता के साथ ही सौंदर्यग्राही सृजनात्मक, प्रतिभा का होना अत्यंत आवश्यक है। अतः साहित्यिक शोध के लिए भाव और अभिव्यक्ति से संबंधित काव्यशास्त्रीय अथवा साहित्यिक विधियां ही उपयुक्त है। सांख्यिकीय, प्रश्नावली, साक्षात्कार, सर्वेक्षण आदि विधियां विशेष स्थितियों में आनुषांगिक रूप में ही उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

वैज्ञानिक, समाजशास्त्रीय तथा साहित्यिक शोध का आदर्श रूप तथ्यान्वेषण और तत्व-बोध की प्रक्रिया की वैज्ञानिकता ही है, किंतु विज्ञान के क्षेत्र में यह शोध-प्रक्रिया शत-प्रतिशत वैज्ञानिक रहती है। इसका कारण है विज्ञान का वैज्ञानिक स्वरूप समाजशास्त्रीय विषयों के शोधों में सामाजिक गतिविधियां शोध का विषय बनती हैं, जो विज्ञानगत भौतिक तत्वों के समान निश्चित नहीं होती। अतः सामाजिक विषयों से संबंधित शोधों में शोध प्रक्रिया या प्रविधि भी वैज्ञानिक शोध के समान शत-प्रतिशत वैज्ञानिक नहीं हो सकती। साहित्य का स्वरूप तो समाजशास्त्रीय विषयों से भी अधिक जटिल, गंभीर और अनिश्चित होता है। संक्षेप में साहित्यिक शोध में प्रविधि को सर्वाधिक नमनीय या लचकीली रूप ग्रहण करना पड़ता है। फिर भी साहित्यिक शोध का लक्ष्य तो वैज्ञानिकता को आधिकाधिक सुरक्षित रखना ही होता है।

साहित्य न तो प्रत्यक्ष ज्ञान है और न ही विज्ञान। वह तो एक कला है, जिसमें ज्ञान-विज्ञान अपनी स्वरूपगत सीमाओं को त्यागकर भावना और कल्पना के सांचे में ढलकर संवेदना - संवलित रूप में व्यक्त

होते हैं। जहां विज्ञान और समाजशास्त्र का जगत से सीधा संबंध होता है, वहां साहित्य वास्तविक जगत के समानांतर अपने ही जगत की सृष्टि करता है। आचार्य भामह के अनुसार कवि ही अपार काव्य संसार का सृष्टा होता है। ऐसी स्थिति में विज्ञान और समाजशास्त्र जगत से प्रत्यक्ष संबंध के कारण समाज के लिए उपयोगी होते हैं, किंतु साहित्य अपने सृजनात्मक या कलात्मक स्वरूप के कारण न तो विज्ञान के समान कोई उपयोगी आविष्कार करता है और ना समाजशास्त्रों के समान सामाजिक व्यवस्था को प्रत्यक्ष प्रभावित या निर्धारित करता है।

साहित्य का कलात्मक प्रभाव भावात्मक होता है। उसका लक्ष्य है लोक रंजन तथा लोकमंगल। साहित्यिक शोध में भी लोकमंगल की प्रेरणा निहित रहती है। शोधार्थी अनेक बार ऐसे तथ्यों या तत्वों की खोज करता है, जिनसे सांप्रदायिक, धार्मिक राजनैतिक, संकीर्णताओं और भेदभावों के उन्मूलन की प्रेरणा मिलती है और भावनात्मक एकता और सांप्रदायिक सौमनस्य का पथ प्रशस्त होता है। डॉ. मलिक मुहम्मद का 'वैष्णव भक्ति आंदोलन का अध्ययन' तथा डॉ. निजामुद्दीन का 'हिंदी में राम भक्ति संबंधी महाकाव्यों का अध्ययन' इसी प्रकार के शोधात्मक प्रयास हैं । डॉ. भ. ह. राजुरकर ने अपने लेख 'साहित्यिक अनुसंधान' में साहित्यिक अनुसंधान का लक्ष्य मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा, साहित्य सृजन के अनुशासन को पहचानना और सांस्कृतिक शोध का उन्नयन माना है। साहित्य के मंगलकारी और अमंगलहारी स्वरूप के अनुरूप साहित्यिक शोध का लक्ष्य भी विकृति निवारक और संस्कृति सम्प्रसारक होता है।

साहित्यिक शोध के स्वरूपगत भेद और प्रविधि को निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है-

1. वर्णनात्मक शोध :

शिक्षा और मनोविज्ञान संबंधी शोध के क्षेत्र में वर्णनात्मक शोध का व्यापक रूप में प्रयोग किया जाता है। ऐतिहासिक शोध का प्रमुख उद्देश्य अतीत की घटनाओं, तथ्यों, विचारों आदि का अध्ययन कर वर्तमान की व्याख्या करना है। जबकि इसके दूसरी ओर वर्णनात्मक शोध का संबंध अतीत से न होकर वर्तमान काल से होता है। वर्णनात्मक शोध के लिए विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग नामों का प्रयोग किया है, जो क्रमशः नॉर्मेटिव सर्वे, डिस्क्रिप्टिव सर्व और स्टेटस सर्वे आदि है। अन्य विद्वानों ने सर्वेक्षण शोध के रूप में इसे संबोधित किया है। किंतु यह वर्णनात्मक शोध का एक प्रकार है। वर्णनात्मक शोध प्रत्यक्ष सुगमता एवं साक्षमता के कारण शिक्षा जगत में निसंदेह सर्वाधिक प्रचलित तथा लोकप्रिय शोध विधि है।

शोध विधि वह रीति है, जो वर्तमान एवं अतीत की घटनाओं को उनके सही दृष्टिकोण एवं आयामों में प्रस्तुत करने का प्रयास करती है। यह हमारी इस बात में सहायता करती है कि इतिहास में लेखन कैसे किया जाए? क्योंकि ऐतिहासिक तथ्यों की प्रकृति के कारण यह एक कठिन कार्य है। चूंकि इतिहास, विज्ञान एवं कला दोनों क्षेत्रों से संबंधित विषय है इसलिए इसके लेखन में प्रयुक्त विधि अन्य सभी विषयों में प्रयुक्त होने

वाली विधियों से भिन्न होती है। इतिहास में पूर्ण वस्तुनिष्ठता की स्थापना लगभग असंभव है। ऐसी स्थिति में अतीत की घटनाओं का अधिक से अधिक यथार्थ वर्णन करने का प्रयास होना आवश्यक है।

इस कार्य के लिए अपेक्षित है कि उपलब्ध स्रोतों का अत्यंत सावधानीपूर्वक उपयोग किया जाए तथा आंकड़ों की आधिकारिक सत्यता सुनिश्चित की जाए। इसके अतिरिक्त विषय वस्तु का आलोचनात्मक मूल्यांकन, लेखक का सत्य उद्देश्य तथा धीरे-धीरे विषय की गहराई में जाने से ऐतिहासिक सत्यता की प्राप्ति होती है। ऐतिहासिक तथ्यों की विवेचना में भ्रांतियों एवं कल्पनाओं की समस्या सामने आती है। किंतु इससे बचने के लिए इतिहासकार को तर्क, संतुलित रुख, दूरदर्शिता एवं विश्लेषणात्मक रुख अपनाना आवश्यक है।

2. साहित्येतिहासिक शोध :

साहित्येतिहासिक के स्वरूप को समझने के लिए इतिहास के अर्थ और स्वरूप को समझना अत्यंत आवश्यक है। इतिहास शब्द इति+ह+आर+घञ् से निर्मित है, जिसका अर्थ है 'ऐसा हुआ था।' इस प्रकार अतीत की घटनाओं के कालक्रम में संयोजित इतिवृत्त को इतिहास कहा जाता है। किंतु वर्तमान अर्थ की दृष्टि से इतिहास निर्जीव तथ्यों का संकलन मात्र नहीं है। वस्तुत: इतिहास मानवीय विकास की जीवंत प्रक्रिया है। इतिहासकार निस्संग दृष्टि से अतीत के तथ्यों के क्रम में निहित सामाजिक-सांस्कृतिक विचारधारा के अखंड सातत्य का अनुसंधान करते हुए तथ्यों और वैचारिक तत्वों में कारण-कार्य-मूलक संबंध की स्थापना करता है। इतिहासकार की तटस्थता तथ्यों और तत्वों की युक्तिसंगत क्रम से विकसित सांस्कृतिक चेतना को निस्संग भाव से ग्रहण करने में है।

ऐतिहासिक अध्ययन के लिए तीन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। 1) इतिहासकार की दृष्टि की स्वच्छता और तटस्थता 2) ज्ञात तथ्यों को बिना तोड़े-मरोडे. सही रूप में संकलित करना तथा अज्ञात या अल्प ज्ञात तथ्यों की खोज करना 3) कारण-कार्य-मूलक वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर तथ्यों को क्रमबद्ध करना और उनसे निष्कर्ष रूप में प्राप्त सामाजिक-सांस्कृतिक विचारधारा तक पहुंचना।

काल अखंड है। काल की अखंडता के कारण अतीत से लेकर वर्तमान तक घटित घटनाओं या तथ्यों में भी एक आंतरिक वैचारिक संगति या चिंतन परंपरा अनुस्यूत रहती है। अतीत से वर्तमान तक की समग्र विकास परंपरा एक अविच्छिन्न कारण-कार्य-श्रृंखला में गुँथी रहती है। इतिहासकार की प्रतिभा तथ्यों की श्रृंखला में निहित वैचारिक संगति के सूत्रों को खोज लेती है। अपने आदर्श रूप में इतिहास कालक्रम में नियोजित तथ्यों और उनसे संबंध विचारधाराओं और अनुभूतियों का सुसंबंध दस्तावेज है। संक्षेप में साहित्येतिहासिक शोध साहित्यिक शोध का एक प्रमुख प्रकार है। इसके लिए शोधार्थी में पारदर्शी प्रतिभा अपेक्षित होती है। साहित्य के विकास में प्राणधारा के रूप में प्रवाहित अंतर्वर्ती सांस्कृतिक चेतना को खोजना और विवेचित करना साहित्येतिहासिक शोध का मूल उद्देश्य है।

साहित्येतिहासिक शोध के विभिन्न पहलुओं को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया है -

अ) काव्यशास्त्रीय शोध :

काव्यशास्त्र काव्य या साहित्य का दर्शन है। यह दर्शन-शास्त्र की भांति ही सूक्ष्म और गहन है। परंपराओं का अखंड सातत्य भारतीय चिंतन की सामान्य विशेषता है। यह बात भारतीय काव्यशास्त्रीय चिंतन पर भी पूर्णतः घटित होती है। रस चिंतन की जिस परंपरा का विकास आचार्य भरत से हुआ था, वही आनंदवर्ध्दन, अभिनव गुप्त, मम्मट, विश्वनाथ, पंडितराज जगन्नाथ से होते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डॉ. नगेंद्र आदि तक अखंड रूप में अग्रसर होती रही। इतना ही नहीं अलंकारवादियों, रीतिवादियों, वक्रोक्तिवादियों आदि ने भी रस को अपने चिंतन का विषय बनाया था और उसे उचित महत्व भी प्रदान किया था। विभिन्न काव्य सिद्धांतों के आचार्यों ने वस्तुनिष्ठ एवं तर्क सम्मत दृष्टि से काव्य के केंद्रीय सृजनात्मक तत्व का अनुसंधान किया है।

काव्य के उसे मौलिक सृजनात्मक सौंदर्य या चारुत्व को ही भामह, दण्डी आदि आचार्यो ने अलंकार, आचार्य कुंतक ने वक्रोक्ति, आचार्य वामन ने रीति तथा आचार्य आनंदवर्ध्दन ने ध्वनि नाम से अभिहित किया है। ये सभी आचार्य अपने मत की प्रतिष्ठा के लिए दूसरे मतों को स्वमत में समाहित करके अपने मत की सर्वांगीणता सिद्ध करते हुए दिखाई देते हैं। सभी अपने मत को प्रतिष्ठित करते हैं, दूसरे मतों को यथासंभव ग्रहण करते हैं और रस को भी मान्यता प्रदान करते चलते हैं। इससे समग्र भारतीय काव्यशास्त्रीय चिंतन में अनेकता में एकता और एकता में अनेकता के दर्शन होते हैं। रीति, अलंकार, वक्रोक्ति, ध्वनि, औचित्य काव्य के सत्य हैं तो रस सब सत्यों का भी सत्य है। शब्द और अर्थ, अनुभूति और अभिव्यक्ति का संयुक्त सौंदर्य ही काव्य का केंद्रीय सृजनात्मक तत्व है। इसके अंतर्गत भारतीय काव्यशास्त्र के साथ पाश्चात्य काव्यशास्त्र भी समाहित है। वर्तमान भारतीय काव्यशास्त्रीय चिंतन पर पाश्चात्य काव्यशास्त्रीय चिंतन का प्रचुर प्रभाव पड़ा है।

आ) भाषा वैज्ञानिक शोध :

जड़ से लेकर चेतन तक विश्व की सारी वास्तविकता भाषा में समाहित होती चलती है। इसलिए शौनक ऋषि ने अपने ग्रंथ वृहद् देवता में वाणी या भाषा को विश्व कहा है। भाषा ध्वनियों से निर्मित शब्दों के संयोजन से रचित वाक्यों के द्वारा वक्ता के स्थूल या सूक्ष्म अर्थों या आशयों को व्यक्त करने वाली व्यवस्था है। यह व्यवस्था वाचिक भी है और लिखित भी। अतः ध्वनि विज्ञान, पदविज्ञान, वाक्य विज्ञान, अर्थविज्ञान और लिपि विज्ञान, भाषाविज्ञान के प्रमुख घटक या अंग है। भाषा विज्ञान भाषा का विज्ञान है, जिसके अंदर भाषिक अध्ययन के सभी पक्ष और पद्धतियां समाविष्ट है। भाषा विज्ञान की परिधि में विश्व की सभी भाषाएं, बोलियां यहां तक की आदिवासियों की अविकसित बोलियां भी समाहित हैं। भारत में भाषा शास्त्रीय चिंतन का विकास वैदिक काल से ही हुआ है। वेदों के उपरांत छः वेदंगों- शिक्षा, कल्प,

व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष में से शिक्षा, व्याकरण और निरुक्त का सीधा संबंध भाषा विज्ञान से है। शिक्षा का संबंध ध्वनि विज्ञान से है। शिक्षा वेदांग में स्वरों और व्यंजनों के उच्चारण का बोध कराया गया है।

भाषा वैज्ञानिक अध्ययन की चार प्रमुख पद्धतियां हैं– वर्णनात्मक, ऐतिहासिक, तुलनात्मक, प्रायोगिक। उपर्युक्त पद्धतियों के अतिरिक्त अन्य पद्धतियों का प्रश्रय भी ग्रहण किया जा सकता है। किसी क्षेत्र की विशिष्ट बोली की शब्दावली के अर्थ वैज्ञानिक अध्ययन के माध्यम से उस क्षेत्र की संस्कृति का प्रमाणिक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। इसी प्रकार मनोभाषा वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग करते हुए किसी भी विशिष्ट साहित्यकार की मानसिक अवस्था या मानसिकता का अध्ययन सहज संभव है, क्योंकि प्रत्येक वक्ता या रचनाकार अपनी मनोदशा या प्रकृति के अनुरूप ही ध्वनियों, शब्दों, वाक्यों का प्रयोग करता है।

इ) शैलीवैज्ञानिक शोध :

शैलीविज्ञान शैली का विज्ञान है, जो भाषिक भंगिमा के अध्ययन के आधार पर रचनाकार की भाव भंगिमा का वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत करता है। भाषिक अध्ययन से संबंध होने के कारण शैली विज्ञान को भाषा विज्ञान की ही एक शाखा माना जाता है, किंतु स्वरूपगत यह भाषाविज्ञान से भिन्न है। जहां भाषा विज्ञान सामान्यतः बोलचाल की गद्यात्मक भाषा के भाषिक विवेचन को अपना प्रमुख लक्ष्य मानता है वहां शैली विज्ञान शैली का विज्ञान होने के कारण शैलीय गुणों से संपन्न ललित या रचनात्मक गद्य या पद्य का शैलीगत तत्वों के आधार पर विवेचन और मूल्यांकन करने को ही अपना केंद्रीय लक्ष्य मानता है। ललित, रचनात्मक, रसात्मक गद्य या पद्य के अध्ययन से संबंधित होने के कारण शैली विज्ञान स्वरूप की दृष्टि से भाषा विज्ञान की अपेक्षा काव्यशास्त्र के कहीं अधिक निकट है। शैली विज्ञान साहित्य समीक्षा की नई वैज्ञानिक पद्धति है, जो लोग इसकी विश्लेषणात्मक पद्धति को देखकर इसे व्याकरण या भाषा विज्ञान का समानधर्मी समझते हैं, वे इस तथ्य को भुला देते हैं की भाषा वैज्ञानिक या व्याकरणिक आधार तो इसे केवल वस्तुनिष्ठ, तर्क सम्मत स्वरूप प्रदान करने के लिए है। अब साहित्य समालोचना में ऐसे निराधार कथनों का कोई अर्थ नहीं रह गया है कि अमुक कृति की भाषा में प्रवाह, प्रांजलता, सुकुमारता या संकेतिकता है। शैली विज्ञान भाषिक विश्लेषण के वैज्ञानिक आधार पर यह सिद्ध करके दिखलाता है कि अमुक कृति में इतने शब्द प्रतीकात्मक है, इसलिए उसकी भाषा सांकेतिक है। इसी प्रकार वह शब्द–योजना के विश्लेषण के आधार पर भाषा की प्रांजलता, सुकुमारता, क्लिष्टता आदि के स्वरूप को स्पष्ट करता है। इसी वस्तुनिष्ठता के कारण शैली वैज्ञानिक समालोचना अधिक युक्ति संगत और विश्वसनीय होती है। इसमें 'सूर सूर तुलसी शशि' या 'नंददास जड़िया, और कवि गड़ियां' या 'कालिदास भारत के शेक्सपियर हैं' जैसे ऊहात्मक या आत्मनिष्ठ कथनों के लिए अवकाश नहीं है।

शैली विज्ञान शैलीय गुणों से संपन्न, अनुभूति प्रदान, सृजनात्मक कृतियों का ही विश्लेषण करता है, नीरस, बौद्धिक अर्थों को व्यक्त करने वाली वैचारिक या वैज्ञानिक पुस्तकों का नहीं। कोरे सूचनात्मक

शास्त्रीय या वैचारिक तथा वैज्ञानिक अर्थों को प्रकाशित करने वाले ग्रंथ शैलीय तत्वों से शून्य होने के कारण शैली विज्ञान के अध्ययन की परिधि में नहीं आते हैं। ये बौद्धिक अर्थ अभिधात्मक या पारिभाषिक भाषा तक सीमित रहते हैं। इनमें अर्थ ही साध्य है, भाषा साधन मात्र है। केवल बुद्धि तक सीमित होने के कारण ये इकहरे और विश्लिष्ट होते हैं। इसके विपरीत साहित्य के रमणीय, ललित, रसात्मक अर्थ, अंतकरण की चिंतना, भावना और कल्पना नामक तीनों क्षमताओं के संयोजन से निर्मित होने के कारण संश्लिष्ट होते हैं तथा ये अपनी निरूपक भाषा से संपृक्त और अविच्छिन्न होते हैं। चिंतना, भावना और कल्पना के योग को ही 'अनुभूति' कहा जाता है। अनुभूति और अभिव्यक्ति को रेखांकित करते हुए ल्योनार्ड फास्टर लिखते हैं "आत्मपरक भाषा अथवा निहित भावावेष से संयुक्त रहती है और भावावेगात्मक मूल्यों का अनुवाद प्रायः दुष्कर होता है। काव्य भाषा का सामान्य भाषा से हटकर नयी प्रभाववत्ता अर्जित करना ही शैली विज्ञान में विचलन कहलाता है। यह विचलन संज्ञा, विशेषण, क्रिया आदि भाषिक स्तरों पर घटित हो सकता है। यह विचलन काव्य भाषा का बहुत ही महत्वपूर्ण तत्व है। अतः यह शैली वैज्ञानिक अध्ययन का प्रमुख आधार है। शैली वैज्ञानिक अध्ययन से किसी कृति की अनुभूतिगत ऊर्जा और ऊष्मा का तर्क सम्मत वस्तुनिष्ठ आधार पर वैज्ञानिक रीति से प्रामाणिक उद्घाटन किया जाता है।

ई) पाठानुसंधान :

पाठानुसंधान की आवश्यकता तब पड़ती है जब कृतिकार की स्वहस्तलिखित मूल पाण्डु लिपि उपलब्ध नहीं होती तथा समकालीन या परवर्ती प्रतिलिपिकारों के द्वारा तैयार की गयी मूल पाण्डुलिपि की प्रतिलिपियां ही अक्षरशः शुद्ध नकल हो। इसके लिए प्रतिलिपिकार को अत्याधिक सजग एवं सावधान रहना पड़ता है। सतर्कता के साथ ही प्रतिलिपिकार में भाषा और विषय की गम्भीर जानकारी भी अपेक्षित है। सजग और सुयोग्य प्रतिलिपिकार से भी कहीं न कहीं कोई भूल हो जाती है। फिर सभी प्रतिलिपिकारों में न तो सच्ची निष्ठा होती है, न सावधानी और न ही अपेक्षित योग्यता। ऐसी स्थिति में प्रतिलिपि परम्परा में मूल पाठ भ्रष्ट से भ्रष्टतर होता चला जाता है। इन पाठगत विकृतियों को आम तौर पर दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। जैसे – अनिच्छित विकृतियां और इच्छित विकृतियां।

पाठानुसंधान का कार्य बहुत ही दायित्वपूर्ण, जटिल, श्रमसाध्य है तथा इसके लिए पाठानुसंधाता में अपार धैर्य, संतुलन, निष्ठा और विशेषज्ञता की आवश्यकता है। यह विशेषज्ञता कई स्तरों पर अपेक्षित है। प्राचीन पांडुलिपियों और प्रतिलिपियों को लिखते समय सर्वप्रथम आर-पार एक पूरी शिरोरेखा खींच ली जाती थी, जिसके नीचे सब शब्दों को बिना अपेक्षित अंतराल के, मिलाकर लिखा जाता था। लिखावट की इस पद्धति से पाठ को सही रूप में ग्रहण करना दुष्कर है। एक अभ्यस्त और प्रबुद्ध शोधार्थी ही इसे सही रूप में पढ़ पाता है। शोधार्थी को प्राचीन भाषा के शब्द रूपों से अवगत होना भी अनिवार्य है। भाषा ज्ञान के साथ विषय वस्तु का ज्ञान भी नितांत अपेक्षित है। संदर्भ बोध के बिना सही अर्थों तक पहुंचना असंभव है।

कुल मिलाकर पाठानुसंधाता को भाषा और विषय का मर्मज्ञ, निष्ठावान अध्येता, तथ्य और सत्य का अन्वेषी, धैर्यवान, श्रमशील और अंतर्दृष्टि संपन्न होना आवश्यक है।

उ) लोकसाहित्यिक शोध :

अशिक्षित और अप्रशिक्षित आदिम मानस के मूल नैसर्गिक लक्षण लोकमानस में परंपरागत रूप से सुरक्षित रहते हैं। लोक मानस ही शिक्षित तथा प्रशिक्षित होकर शिष्ट या अभिजात मानस में परिणत हो जाता है। किंतु अभिजात मानस में भी लोक मानस के आदिम तत्व कुछ–न–कुछ अंशों में सुरक्षित रहते हैं। लोक मानस अपने प्रकृत या नैसर्गिक रूप को सदैव बनाए रखना है। अतः ऊपरी दिखावे, शिष्टाचार, दुराव–छिपाव आदि के आवरणों से मुक्त आडम्बरहीन सहज मानस ही लोकमानस है। शिष्ट मानस पर बौद्धिकता जनित सभ्यता की अनेक परतें चढ़ जाती है। ज्ञान–विज्ञान से संबंध शास्त्रीय जानकारी लोक मानस के प्रतिकूल है। इसलिए लोक और शास्त्र दो विपरीत ध्रुव हैं। लोक की नैसर्गिक अनुभूतियों से लोक–साहित्य का जन्म होता है तथा शास्त्र से अनुप्राणित अनुभूतियां शिष्ट या परिनिष्ठित साहित्य में अभिव्यक्त होती है। यह ध्यातव्य है कि जिस प्रकार प्रत्येक अभिजात व्यक्ति में भी कुछ आदिम तत्व रहते हैं, उसी प्रकार परिनिष्ठित साहित्य में भी आंतरिक ऊष्मा के रूप में कुछ लोक–तत्व रहते हैं। सच तो यह है कि प्रभावपूर्ण परिनिष्ठित साहित्य में लोकानुभूतियों के सम्यक समावेश से भावोष्मा का संचार होता है। सूर, तुलसी, जायसी के उत्कर्ष में लोक–तत्व की महत्वपूर्ण भूमिका है। लोकानुभूति से शून्य कोरा शास्त्रीय काव्य तो यांत्रिक और रीतिबद्ध होकर रह जाता है। वस्तुत: विरोधी तत्वों के अपेक्षित अनुपात में सम्मिश्रण से अद्भुत उत्कर्ष उत्पन्न होता है जिस प्रकार लोक और शास्त्र के सम्मिश्रण से तुलसी श्रेण्य, शिष्ट साहित्यकार बन गए, उसी प्रकार सुने–सुनाए दर्शन, नीतिशास्त्र, पुराणों, महाभारत और रामायण के सहज संचित और अनुभवजन्य शास्त्र–ज्ञान और लोकानुभव की समन्विति से अनपढ़ पंडित लक्ष्मीचंद श्रेण्य लोक–कवि के रूप में प्रतिष्ठित हो गये।

लोक साहित्यिक शोध का समारंभ 19 वीं सदी के उत्तरार्द्ध में उस समय हुआ, जब विद्वानों का ध्यान साधारण जनता की जीवन–विधि, संस्कृति, रीति–रिवाज, भाषा और लोक–कलाओं की ओर आकृष्ट हुआ। सर्वप्रथम इसे 'पोपुलर एण्टिक्विटीज' नाम दिया गया, लेकिन बाद में इसके स्थान पर फोकलोर शब्द का व्यवहार किया जाने लगा। 'लोकवार्ता' और 'लोकतत्व' अधिक प्रचलित हो गए हैं। लोक–साहित्य किसी विशिष्ट क्षेत्र या अंचल के लोकमानस की अभिव्यक्ति होता है। अतः उस अंचल की भौगोलिक, राजनीतिक, शैक्षिक, आर्थिक, धार्मिक, जातीय, पारिवारिक, सामाजिक आदि स्थितियां वहां के लोक–साहित्य में प्रतिबिंबित होती हैं। इन्हीं परिस्थितियों से उपजी मन:स्थितियों से लोक–साहित्य का सृजन होता है।

3. **तुलनात्मक अंतर्विद्याशाखीय शोध :**

'अंतरविद्यावर्ती शोध' अथवा 'अंतर्विद्याशाखीय शोध' शब्द अंग्रेजी के 'इंटर डिसीप्लिनरी रिसर्च' के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है। हिंदी में इसके स्थान पर 'अंतर-अनुशासनिक' और 'अंतर-क्षेत्रीय' शब्द भी प्रयुक्त किये गये हैं, किंतु 'अनुशासन' और 'क्षेत्र' की तुलना में 'डिसिप्लिन' के लिए 'विद्या' शब्द ही सर्वाधिक उपयुक्त है। साहित्य के किसी क्षेत्र या कृति का किसी साहित्येतर दृष्टि या शास्त्रीय दृष्टि से अध्ययन ही अंतरविद्यावर्ती शोध है। अंतरविद्यावर्ती शोध किसी एक शास्त्र की दृष्टि से भी किया जा सकता है और अनेक शास्त्रों की दृष्टि से भी। दो साहित्य-क्षेत्रों या कृतियों का किसी एक शास्त्रीय दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन भी किया जा सकता है। इस प्रकार अंतरविद्यावर्ती शोध के निम्नलिखित तीन प्रमुख आयाम है-

1. एक शास्त्र - केंद्रित अंतरविद्यावर्ती शोध
2. बहुशास्त्र - केंद्रित अंतरविद्यावर्ती शोध
3. तुलनात्मक अंतर्विद्यावर्ती शोध

यों तो संस्कृति और चिंतन के आधार पर भी दो कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है, किंतु बहुशास्त्र-केंद्रित होने के कारण ऐसा अध्ययन शोधार्थी के लिए बहुत भारी पड़ता है। तुलना के लिए एक शास्त्रीय दृष्टि ही पर्याप्त है। जैसे-

1) सौंदर्यशास्त्रीय दृष्टि से उर्वशी और कनुप्रिया का तुलनात्मक अध्ययन।
2) समाजशास्त्रीय दृष्टि से रामचरितमानस और साकेत का तुलनात्मक अध्ययन।

अ) सौंदर्य शास्त्रीय शोध :

'सौंदर्यशास्त्र' शब्द अंग्रेजी के 'एस्थेटिक्स' के पर्याय के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। सौंदर्यशास्त्र ललित कलाओं का दर्शन होने के कारण कला दर्शन है। अतः यह दर्शनशास्त्र की भांति तर्कबद्ध और यांत्रिक नहीं है। कला-दर्शन के रूप में यह साहित्य की प्रकृति के अनुरूप है। जिस प्रकार संस्कृति के साथ विकृति जुड़ी है, उसी प्रकार सुंदरता के साथ सुंदरता। अतः सुंदरता के आकर्षण लक्षणों के साथ ही असुंदर पात्रों और प्रसंगों के विकर्षक और विकृत लक्षणों पर भी शोधार्थी का ध्यान टिका रहना चाहिए। प्रत्येक बोध की भांति सौंदर्य-बोध भी स्थूल से सूक्ष्म की ओर उन्मुख होता है। प्रकृति सौंदर्य से मानवीय सौंदर्य और फिर कला सौंदर्य से अग्रसर होती हुई सौंदर्य साधना दिव्य सौंदर्य में परिणत होती है।

सौंदर्य साधक कवि काव्य कृति के रूप में सौंदर्य सृष्टि करता है और उसके माध्यम से अपने भाव सौंदर्य का संप्रेषण करता है। अतः यह भाव सौंदर्य प्रकृति, मानव, कला और दिव्यता के सभी माध्यमों से व्यक्त होता है। कृति में समग्र सौंदर्य-स्तरों का भाषिक संप्रेषण होता है। अतः सौंदर्यशास्त्रीय अध्ययन के

योजना सूत्र के क्रमिक सूत्र निम्नलिखित हो सकते हैं, जो विभिन्न अध्यायों का रूप ग्रहण करेंगे। प्रथम अध्याय में सौंदर्य और सौंदर्य-शास्त्र के स्वरूप पर सैद्धांतिक दृष्टि से विचार करना वांछनीय है। द्वितीय अध्याय में सौंदर्य सृष्टा कवि के परिवेश, प्रेरणा स्रोत, मानसिकता, कृतित्व आदि का निरूपण अपेक्षित है। तृतीय अध्याय में काव्य-कृति में निरूपित प्रकृति के रूप, रंग, गति, गंध, ध्वनि, रस आदि से संबंधित ऐंन्द्रिय सौंदर्य के विश्लेषण-विवेचन के उपरांत प्रकृति में भासित मानवीय सौंदर्य का विवेचन वांछित है, क्योंकि कवि की भावना से रंजित प्रकृति सौंदर्य अपनी परिणति में संस्कृति सौंदर्य में ढल जाता है। कवि को बगुला छल-छद्म का प्रतीक प्रतीत होता है और हंस विवेक का। चतुर्थ अध्याय में मानवीय सौंदर्य का विवेचन करते हुए आकृति सौंदर्य, स्वभाव सौंदर्य और शील सौंदर्य या आचार्य सौंदर्य का निरूपण अभीष्ट है। पंचम अध्याय में मानव सर्जित कला सौंदर्य के विवेचन में स्थूल से सूक्ष्म की ओर अग्रसर होते हुए वस्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, काव्य कला और संगीत कला के सौंदर्य का विवेच्य कृति में समाहित कला प्रसंगों के परिप्रेक्ष्य में पर्यालोचन अपेक्षित है। षष्ठ अध्याय में अलौकिक या दिव्य सौंदर्य का विवेचन अभीष्ट है। वास्तव में दिव्य सौंदर्य भी लौकिक अर्थात् प्राकृतिक और मानवीय सौंदर्य का ही अलौकिकीरण है। दो भुजा वाला मानव अलौकिक है, किंतु चतुर्भुज विष्णु अलौकिक हैं। कई बार कवि को लौकिकता में ही अलौकिकता के दर्शन होते हैं। सप्तम अध्याय में सौंदर्य संप्रेषण के भाषिक उपादानों सादृश्य विधान और अलंकार, मानवीयकरण, प्रतीक आदि का विवेचन वांछित है। अतः में 'उपसंहार' में समग्र अध्ययन का सार प्रस्तुत करना आवश्यक है।

आ) समाजशास्त्रीय शोध :

रचनाकार भी प्रकारांतर से एक सजग समाजशास्त्रीय ही होता है। रचनाकार और समाजशास्त्री में दृष्टिकोण और पद्धति का ही अंतर है। जहां समाजशास्त्री वस्तुनिष्ठ, वैज्ञानिक दृष्टि से समाज के व्यक्ति, परिवार, धर्म, जाति, शिक्षा, राजनीति, अर्थनीति, संस्कृति आदि से संबंधित विभिन्न घटकों का बौद्धिक विवेचन करता है। साहित्यकार सामाजिक संदर्भों और उनसे संबंध समस्याओं के परिपेक्ष में घटित मूल्यात्मक विघटन की प्रतिक्रिया स्वरूप सांस्कृतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा पर बल देता है। समाजशास्त्री व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक जीवन के वैवाहिक, शैक्षिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक आदि पक्षों का वस्तुगत, वैज्ञानिक विवेचन करता है। इनसे जुड़ी समस्याओं का मंथन करता है और उनके संभव समाधानों की ओर तर्कसंगत ढंग से संकेत करता है। साहित्य में सामाजिक जीवन का यथार्थ अपनी सारी विकृतियों और विसंगतियों के साथ प्रतिबिंबित होता है। रचनाकार सामाजिक समस्याओं के समाधानों का विवेचन नहीं करते, वरन् उनकी ओर सांकेतिक या लाक्षणिक शैली में कलापूर्ण पद्धति से दिशा-निर्देश करते हैं। समाजशास्त्री सामाजिक जीवन के विविध पक्षों का बौद्धिक दृष्टि से विश्लेषण करते हैं। किंतु साहित्यकार सामाजिक परिदृश्य का अनुभूति के स्तर पर भावन करते हैं और समाज के विकृत पक्षों के प्रति भावात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए संस्कृति मूलक सकारात्मक जीवन-दृष्टि प्रस्तुत करते हैं।

समाजशास्त्रीय अध्ययन करते समय शोधार्थी को सर्वप्रथम अपना सैद्धांतिक आधार निर्मित करना आवश्यक है। समाज और समाजशास्त्र को परिभाषित करना प्रथम आवश्यकता है। व्यक्ति को समाज का केंद्र मानकर वर्तमान संदर्भ में व्यक्ति-जीवन के परिवेश तथा संबंध तनावों-दबावों का निरूपण आवश्यक है। परिवार को सामाजिक जीवन का प्रमुख घटक मानते हुए दाम्पत्य जीवन तथा अन्य पारिवारिक संबंधों के स्वरूप पर विचार करना अपेक्षित है। इसके बाद सामाजिक जीवन की धर्म, जाति, वर्ग आदि से निर्मित संरचना के स्वरूप का अध्ययन भी अभीष्ट है। तत्पश्चात आर्थिक जीवन से सम्बद्ध विविध व्यवसायों, उद्योग धंधों तथा उनसे जुड़ी समस्याओं के विविध रूपों पर विचार वांछनीय है। इसके पश्चात राजनीतिक पक्ष और उससे सम्बद्ध पक्षों को लेना प्रासंगिक है। इसके बाद शिक्षा, संस्कृति, कला, साहित्य, चलचित्र-जगत आदि से सम्बद्ध नकारात्मक-सकारात्मक पक्षों को ग्रहण किया जा सकता है। सैद्धांतिक अध्ययन के विभिन्न घटकों वैयक्तिक जीवन, पारिवारिक जीवन सामाजिक जीवन, शैक्षिक और सांस्कृतिक जीवन को केंद्र में रखकर अध्येयकृति से तथ्यों का अध्यायगत आधार पर वर्गीकृत रूप में संकलन करना आवश्यक है। अध्यायों के लेखन में सम्बद्ध तथ्यों का विवेक पूर्वक विवेचन शोधार्थी की मनीषा और अंतर्दृष्टि पर निर्भर करेगा। मनीषा और अंतर्दृष्टि का स्तर ही शोध प्रबंध की प्रबंधात्मकता के स्तर को निर्धारित करने वाला आधारभूत तत्व है। शोधार्थी की उच्च स्तरीय मनीषा ही विवेच्य साहित्यिक कृति में निहित साहित्यकार की मनीषा के सूक्ष्म मंतव्यों का सम्यक साक्षात्कार करने में समर्थ और सफल सिद्ध होती है। इसी आधार पर समाजशास्त्रीय दृष्टि से रामचरितमानस और साकेत का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

1.3.6 अनुसंधानकर्ता के गुण :

एक अच्छे शोधार्थी को गुणात्मक, उत्तम एवं उच्च कोटि का शोध-प्रबंध लिखने के लिए शोध की सामान्य पद्धतियों एवं शोध के सामान्य नियमों का ज्ञान भी अतिआवश्यक है। वैसे प्रत्येक विषय में अपने विषय के अनुसार अनुसंधान की अलग-अलग पद्धतियों की खोज की गयी है, परंतु शोध की कुछ ऐसी सामान्य जानकारियां है। जिनका उचित ज्ञान होना प्रत्येक अनुसंधानकर्ता के लिए अति-आवश्यक है। मूलतः मनुष्य विवेकशील प्राणी होने के कारण अपनी सचेतावस्था से ही वह जिज्ञासु वृत्ति का रहा है। वह आत्मा, परमात्मा एवं जगत् को जानने के लिए अपनी प्राचीन अवस्था से ही उत्सुक रहा है। इस प्रकार के प्रश्न मनुष्य को आदिकाल से ही झकझोरते रहे हैं। मनुष्य की ज्ञान की भूख कभी शांत नहीं हुई। मनुष्य की इस अशांत पिपासा ने अनेक भौतिक एवं आध्यात्मिक रहस्यों का उद्घाटन किया और मानव की ज्ञान-संपदा में लगातार वृद्धि की है। जिनमें बहुत सा ज्ञान इंद्रिय गम्य है और जिसमें कुछ ज्ञान ऐसा भी है, जो सहज इंद्रिय गम्य नहीं है, परंतु ऐसे ज्ञान के अस्तित्व को एकदम से नकारा नहीं जा सकता। अनुसंधानकर्ता में जिन आवश्यक गुणों की आवश्यकता होती है उसका विवेचन निम्नांकित रूप में प्रस्तुत है -

1. जिज्ञासा :

अनुसंधानकर्ता में ज्ञान के प्रति अटूट जिज्ञासा का होना अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि कोई भी शोध ज्ञान की प्राप्ति के लिए ही किया जाता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जिस व्यक्ति में तथ्यों को जानने की उत्कट इच्छा हो वहीं व्यक्ति शुद्ध रूप से सच्चा अनुसंधानकर्ता हो सकता है। ज्ञान का वास्तविक जिज्ञासु विपरीत परिस्थितियों में भी विजय को प्राप्त करता हुआ, अपने लक्ष्य पर पहुंच जाता है। शोध में विषय को गहराई से समझने की अति आवश्यकता होती है। विषय के प्रति उसे अनेक प्रकार के जानकारियों का होना आवश्यक होता है। जैसे विषय से संबंधित प्रकाशित पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएँ, लेख-आलेख कब-कहाँ प्रकाशित हुए, उसकी समीक्षा कब-कहाँ प्रकाशित हुई आदि। विषय के प्रति उपरी दृष्टिकोण या सामान्य सामग्री प्राप्त कर लेने से शोधार्थी को कभी भी विषय की प्रवीणता नहीं मिल सकती। उसका शोध प्रबंध भी स्तरीय नहीं बन सकता है और न ही उल्लेखनीय निष्कर्ष दिए जा सकते हैं। अतः शोध लेखन के दौरान पुरे समय शोधार्थी को अपने शोध विषय के प्रति जिज्ञासा को जागृत रखना आवश्यक होता है। आज कई छात्र पंजीकृत होने के बाद महीनों मौन रहते हैं। पूछने पर कोई न कोई अपरिहार्य आपत्ति का वर्णन करने लगते हैं। कुछ समय बाद मिलने पर कोई दूसरी अड़चन आ जाने का उदास मुद्रा में उल्लेख करते हैं। और इस तरह महीनों वर्षो उनका शोधकार्य चलता रहता है। परंतु कागज पर नहीं उतरता। अतः जब तक अनुसंधानकर्ता में शोध एवं ज्ञान के प्रति जिज्ञासा एवं जागरूकता नहीं होगी, तब तक शोध हो ही नहीं सकता है।

2. गृहीत विषय का ज्ञान :

अनुसंधानकर्ता द्वारा शोध के लिए जो विषय लिया जाए, उसका उसे अच्छी तरह से आरम्भिक ज्ञान होना चाहिए, परंतु वर्तमान समय में स्थिति यह है कि छात्र निर्देशक के पास पहुंचता है और कहता है कि, मुझे कोई विषय दे दीजिए शोध कार्य करना है। जब अनुसंधानकर्ता से पूछा जाता है कि आप किस विषय पर अनुसंधान कार्य करना चाहते हो, तो वह तुरंत कह देता है कि, "श्रीमान, आप जो भी विषय देंगे, उस पर मैं पूरे मनोयोग से कार्य करूंगा।" इससे यह स्पष्ट होता है कि अनुसंधानकर्ता किसी एक विषय के प्रति आस्थावान नहीं है। जब तक अनुसंधानकर्ता का कोई विषय अपना नहीं होता तब तक अनुसंधानकर्ता की शोध कार्य में रूचि नहीं बढ़ सकती। इसके अलावा यह भी आवश्यक है कि जिस विषय को वह अपने अनुसंधान कार्य के लिए चुनता है, उस विषय पर कितना कार्य हो चुका है, इसका ज्ञान अनुसंधानकर्ता को होना आवश्यक है। तभी वह जान सकेगा कि उस विषय में ऐसी कौन-सी दिशा है जो अछूती रह गई है और जिस पर वह अपने कार्य से उसकी पूर्ति कर सकता है और अपने विषय से संबंधित उपलब्ध सामग्री का ज्ञान होना आवश्यक है। विषय पर उपलब्ध सामग्री का ज्ञान न होने से अनुसंधानकर्ता को कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

3. कठोर परिश्रम :

वैज्ञानिक पद्धति से शोध करने के लिए तटस्थता और धैर्य के साथ कठोर परिश्रम करना आवश्यक होता है। यह प्रक्रिया विषय चयन के साथ ही शुरू हो जाती है। पहले से उपलब्ध शोधालोचनाओं को देखना उसमे निहित शोध के पक्षों को परखना और फिर अपने लिए एक विषय चुनना मानसिक परिश्रम का कार्य है। जिसके लिए गहन अध्ययन और विश्लेषण की आवश्यकता होती है। विषय चयन करने के बाद वर्गीकरण करना आवश्यक होता है। शोधार्थी को शोधकार्य शुरू करने के लिए विषय क्रमबद्ध रुपरेखा बनानी होती है। इसी रूपरेखा के आधार पर शोध का कार्य क्रमशः पूरा किया जाता है। इस स्तर पर शोधार्थी को काफी मेहनत करनी पड़ती है क्योंकि यदि वर्गीकरण सही नहीं होगा तो प्रस्तुतिकरण बिखर जाएगा और निष्कर्ष तक पहुँचना संभव नहीं हो सकेगा। अतः शोध कार्य के लिए कठोर परिश्रम आवश्यक होता है।

4. क्षमता :

गृहीत विषय पर शोध कार्य करने की शोधार्थी में पूर्ण क्षमता होनी चाहिए। कभी-कभी ऐसा होता है कि अनुसंधानकर्ता ऐसे विषय पर शोध कार्य करने की मांग करता है, जो बहुत कठिन होता है और अनुसंधानकर्ता को उस विषय का कुछ भी ज्ञान नहीं होता। कोई अनुसंधानकर्ता यदि विश्व के सभी धर्मों पर एक साथ कार्य करने की इच्छा प्रकट करता है, तब निर्देशक ऐसे अनुसंधानकर्ता से कहता है कि आप अपने देश के धर्म के बारे में तो कुछ न कुछ जानते हो, किंतु विश्व के सभी धर्मों के बारे में कैसे जान पाओगे, तो अनुसंधानकर्ता उत्तर देता है कि पढ़कर जानकारी प्राप्त कर लेंगे, तो ऐसा उत्तर ठीक नहीं है। क्योंकि सभी देशों के धर्मों को जानने के लिए सभी भाषाओं का ज्ञान भी होना चाहिए। तभी विश्व धर्मो पर एक अच्छा शोध कार्य हो सकता है। परंतु यहां यह बात स्पष्ट है कि सभी भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करना अति कठिन एवं श्रमसाध्य है। बिरला ही होगा जो सभी देशों की भाषा का ज्ञान रखता हो। इस प्रकार अनुसंधानकर्ता को शोध का विषय चयन करते समय अपनी क्षमता और अपनी सीमाओं का ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक है। जिस भाषा का उसे ज्ञान नहीं है उस भाषा के साहित्य पर अनुवाद के सहारे शोध-कार्य नहीं हो सकता। किसी एक विषय का अनुसंधान अन्य विषयों के ज्ञान की भी अपेक्षा रखता है।

5. कार्य – संलग्नता :

अनुसंधानकर्ता को अपने कार्य में पूरे मनोयोग से लगनशील रहने की धुन होनी चाहिए। क्योंकि शोध से संबंधित सामग्री उपलब्ध करने में अनेक बाधाएं आती है। और कभी-कभी अपमानित भी होना पड़ता है। बार-बार अनुसंधानकर्ता के एक ही स्थान पर जाने से, लोग उसे संदेह की दृष्टि से देखते हैं। अतः प्रत्येक परिस्थिति से जूझने के लिए अनुसंधानकर्ता को तत्पर रहना चाहिए और अपने कार्य में तनिक भी ढिलाई आने नहीं देनी चाहिए। भारतीय दर्शन के तथागत बुद्ध, वर्द्धमान महावीर, महर्षि कणाद, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर आदि तथा वर्तमान युग के प्रसिद्ध वैज्ञानिक स्टीफन हॉपकिंस आदि ऐसे अनेक नाम हैं जिन्होंने विपरीत अवस्था में भी विश्व को नये-नये शोध करके अनेक सिद्धांत दिये हैं।

6. कृतज्ञता :

अनुसंधानकर्ता को अपने शोध कार्य संपादन में कई व्यक्तियों तथा संस्थाओं का सहयोग लेना पड़ता है। जिसके बदले में अनुसंधानकर्ता के स्वभाव में कृतज्ञता का भाव होना आवश्यक है। ऐसा भाव न होने की दशा में अनुसंधानकर्ता किसी से भी उदारतापूर्वक दुर्लभ सामग्री प्राप्त नहीं कर पायेगा। शोध कार्य एक व्यक्ति के द्वारा साध्य नहीं होता, इसमें अनेक व्यक्तियों की सहायता अपेक्षित होती है। अनुसंधान कार्य एक प्रकार का टीम वर्क है। यदि अनुसंधानकर्ता अपने मददगारों के प्रति कृतज्ञता का भाव नहीं रखता है तो उसे अपने मददगार सहयोगियों से पर्याप्त एवं उचित सहायता नहीं मिलती। कुछ ऐसे अनुसंधानकर्ता होते हैं जो जहां से और जिनके विचारों से सामग्री प्राप्त करते हैं, उनका नामोल्लेख तक नहीं करते। ऐसा करने से उनकी संस्कारहीनता का परिचय मिलता है और उनका आगामी शोध कार्य भी कष्टसाध्य हो जाता है।

7. भाषा पर प्रभुत्व :

अनुसंधानकर्ता को जब तक अपनी भाषा पर संतुलित नियंत्रण नहीं होगा, तब तक उसका शोध-प्रबंध कमजोर ही रहेगा। भाषा की उचित जानकारी न होना, उसके शोध कार्य की गरिमा को घटा देती है। और यही कारण है कि विषय-ज्ञान के रहते हुए भी भाषा-दोष के कारण कई बार शोध-प्रबंध अस्वीकृत कर दिये जाते हैं। प्रबंध की भाषा अख़बारी भाषा नहीं हो सकती। वह प्रौढ़, विषय के अनुरूप और पारिभाषिक संपन्न होनी चाहिए। अतः अच्छे एवं उत्तम शोध-प्रबंध के लिए भाषा की उचित जानकारी का होना अत्यंत आवश्यक है।

8. वैज्ञानिक दृष्टिकोण और तटस्थता :

अनुसंधानकर्ता को अपने शोध विषय के प्रतिपादन में तटस्थ और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाने की आवश्यकता होती है। तटस्थ भाव से ही सत्य का अनुसंधान किया जा सकता है। भावनाप्रधान एवं स्वमतग्रही छात्र एक अच्छा अनुसंधानकर्ता नहीं हो सकता है। जैसे यदि कोई भक्ति प्रधान अनुसंधानकर्ता केवल रामानुज के दर्शन को ही अंतिम सत्य माने तो यह बात एकदम ग़लत होगी। अतः अनुसंधानकर्ता को अपने शोध कार्य में एकदम तटस्थ भाव ही अपनाना चाहिए। तभी वह निष्पक्ष रूप से अपने शोध कार्य के द्वारा किसी नवीन विचार की स्थापना कर पायेंगा अन्यथा उसका कार्य एक पुनरावृत्ति मात्र होगा। इसके संदर्भ में अंग्रेजी का एक मुहावरा है “Researcher must possess scientific frame of mind.” वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखने वाला व्यक्ति सहज श्रद्धालु नहीं होता, वह प्रत्येक तथ्य को तर्क की कसौटी पर कसने के उपरांत ही किसी निष्कर्ष पर पहुंचता है। तटस्थता और वैषयिकता वैज्ञानिक प्रणाली के अध्ययन करने वाले अनुसंधानकर्ता के अनिवार्य गुण हैं।

9. सृजनात्मकता :

सृजनात्मकता से तात्पर्य है शोधार्थी में संवेदना और सौंदर्यानुभूति हो तथा उसकी काल्पनिक शक्ति भी उर्वर हो। साहित्यिक शोध में शोधार्थी की सृजनात्मक शक्ति का बहुत ही महत्व होता है। विशेष रूप से जब शोध साहित्यिक कृतियों पर किया जाता है, तब शोधार्थी में इस क्षमता का होना अनिवार्य हो जाता है। जिस प्रकार चूने, ईंट और गारे को जमीन पर रख देने से भवन का निर्माण नहीं होता है। भवन बनाने के लिए एक व्यवस्था की आवश्यकता होती है, ठीक उसी प्रकार अनुसंधान के लिए एकत्र की गई सामग्री को व्यवस्थित नहीं करेंगे तो वह निरर्थक हो जाएगी। इस समुचित व्यवस्था के लिए कल्पना (सृजनात्मकता) की आवश्यकता होती है। संक्षेप में शोधार्थी के लिए यह आवश्यक है कि उसकी सृजनात्मक चेतना प्रखर हो क्योंकि जबतक वह लेखक की संवेदना, रचना में छिपे सौंदर्य और रचनात्मक कल्पना को सही ढंग से ग्रहण नहीं करेगा तब तक वह कृति संबंधी शोध को सही दिशा नहीं दे पाएगा।

निष्कर्षत: एक नवीन अनुसंधानकर्ता को शोध प्रारम्भ करने से पहले उन सभी आवश्यक बातों को जान लेना आवश्यक है, जो शोध के लिए अतिआवश्यक है। प्रस्तुत शोध की जानकारियों के अभाव में अनुसंधानकर्ता एक गुणात्मक शोध कार्य नहीं कर पाता है। अतः उपर्युक्त सभी गुण एक अनुसंधानकर्ता में होने अपेक्षित है।

1.3.7 शोध निर्देशक के गुण :

वर्तमान समय में शोध - कार्य उच्च स्तर का होते जा रहा है और इसका क्षेत्र भी वृहद है। शोध कार्य को केवल शोध-छात्र स्वयं ही पूरा नहीं कर सकता। इसके लिए शोध-छात्र को निर्देशक की आवश्यकता होती है इसी कारण वह शोध निर्देशक का चुनाव करता है। शोध निर्देशक शोध-कार्य की आधारशिला होती है, बिना शोध निर्देशक के शोध-छात्र अपना शोध कार्य पूर्ण नहीं कर सकता है। अपनी भूमिका का निर्वहन करते हुए शोध मार्गदर्शक शोध - छात्र के शोध कार्य को सही दिशा प्रदान करने में सहायक होता है, विद्यमान त्रुटियों का मार्जन भी करता है किंतु शोधार्थी में जब तक स्वयं जिज्ञासा और रूचि उत्पन्न नहीं होती तब तक निर्देशक भी अच्छी रूपरेखा निर्धारण करने में असमर्थ हैं। अर्थात् निर्देशक के अभाव में शोध-कार्य संपन्न नहीं हो सकता है। शोध-निर्देशक शोध के प्रत्येक स्थल, स्तर, तथ्यों की न्यायसंगतता, उनके विश्लेषण व निष्कर्षों के खरेपन की जांच - पड़ताल में प्रेरणा और दिशा प्रदान करता है। निर्देशक शोधार्थी के मानसिक दुबर्लताओं और धैर्यहीनता पर विजय पाने के लिए प्रोत्साहित करता है। शोध निर्देशक के गुणों को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया है-

1. शोधार्थी की योग्यता की पहचान :

निर्देशक को शोध-छात्र की योग्यता की पर्याप्त जांच-पड़ताल के पश्चात् ही अपने निर्देशन में उसके पंजीकरण की सिफारिश करनी चाहिए क्योंकि सही शोध-छात्र के चयन द्वारा ही श्रेष्ठ शोध हो सकता है।

2. क्षमतावान :

शोध निर्देशक को अपनी क्षमता का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है। उसमें लालच नहीं होना चाहिए कि अधिक संख्या में पीएच.डी. कराने से उसके मान में चार चांद लग जायेंगे। कोई भी व्यक्ति साहित्य के सभी पक्षों का ज्ञाता नहीं हो सकता और न ही सभी विषयों का शोध निर्देशक। यदि शोध निर्देशक इन तथ्यों को भुलाकर धड़ाधड़ किसी भी विषय पर निर्देशन देने को तैयार हो जाता है तो भले ही उसके शोधार्थी पीएच.डी. उपाधि प्राप्त कर लें, लेकिन उसके निर्देशन में हुआ कार्य उच्च स्तरीय नहीं हो सकता है। निर्देशन क्षमता का संबंध उपाधि से न होकर विषय से होता है और विषय का सतही ज्ञान विषय का सही ज्ञान नहीं माना जा सकता। वर्तमान में विश्वविद्यालय पद पर बैठे अध्यापकों को निर्देशन का कार्य दे दिया जाता है। किंतु विश्वविद्यालय के बाहर भी स्वतंत्र रूप से श्रेष्ठ साहित्य सेवी भी मिलते हैं। जिनसे निर्देशक के निर्देशन नहीं मिलने पर साहित्य सेवी से निर्देशन प्राप्त किया जा सकता है।

3. कर्मठता, धैर्य एवं सहिष्णुता :

शोध निर्देशक को कर्मठ, धैर्यवान एवं सहिष्णु होना चाहिए। शोध-छात्र के शोध कार्य में उत्पन्न समस्याओं का सामना कर उन समस्याओं को दूर करने का कार्य शोध निर्देशक का होता है। यदि निर्देशक ऐसा नहीं करता है तो शोध-छात्र गुमराह हो सकता है। कई बार निर्देशक अपने पूर्वाग्रहों के अधीन किसी समस्या पर पुनर्विचार जरूरी नहीं समझता और शोध-छात्र का अभिमत बदलवाकर गलत कर देता है।

4. अवकाश :

शोध निर्देशक के पास निर्देशन के लिए पर्याप्त समय होना चाहिए। बहुत से निर्देशक समयाभाव की शिकायत करते हैं जबकि उनके निर्देशन में एक ही समय पर आठ से लेकर दस तक शोधार्थी शोधरत रहते हैं। शोधार्थी उनके नाम की मुहर का ठप्पा लगवाने के लिए व एक बार उनके निर्देशन में पंजीकृत होना अपना सौभाग्य समझते हैं। ऐसे शोध-छात्र को निर्देशक घिसटते हैं और बाद में या तो स्वयं या निर्देशक के निवेदन पर किसी अन्य विद्वान की शरण में चले जाते हैं या फिर शोध-छात्र कुंठित होकर बीच में ही शोध कार्य छोड़ देते हैं। विश्वविद्यालय की ओर से समय-सारिणी में कम से कम एक घंटे का शोध निर्देशन हेतु विधान होना चाहिए ताकि अलग-अलग दिनों पर अलग-अलग शोधार्थी अपनी समस्याओं का समाधान प्राप्त कर सकें।

5. निष्पक्ष :

शोध निर्देशक को सभी शोध छात्रों को निष्पक्ष रूप से मार्गदर्शन करना चाहिए। जिस प्रकार माता-पिता अपनी संतानों का भेदभाव न करते हुए पोषण करते हैं, वैसे ही निर्देशक को भी अपने अधीन कार्य करने वाले शोध-छात्रों को एक समान सहायता और निर्देशन प्रदान करना चाहिए। किसी एक शोधार्थी की प्रशंसा तो दूसरे का तिरस्कार किसी एक के प्रति सचेत दूसरे के प्रति असावधानी नहीं करनी चाहिए। उसे सभी छात्रों को निष्पक्ष होकर मार्गदर्शन करना चाहिए तथा उनके शोध कार्य को आँकना चाहिए। तात्पर्य यह

है कि निर्देशक द्वारा शोधार्थी की विषय मूलक प्रशंसा वस्तुपरक होनी चाहिए, भावनापरक नहीं। निर्देशक पक्षपात रहित होता है।

6. तटस्थता :

निर्देशक को उद्धरणों के दृष्टि से तटस्थता का परिचय देना आवश्यक है। बहुधा निर्देशक शोधार्थी को अपने मित्रों, विभागाध्यक्ष और संभावित परीक्षकों के ग्रंथों से उद्धरण लेने के लिए कभी दबी जुबान से तो कभी प्रकट रूप में कहता है, भले ही विषय से संबंध ही न हो। शोधार्थी भी दूषित राजनीति के वातावरण को देखते हुए ऐसा करना हितकारी समझता है, जो शोध दर्शन के सर्वथा प्रतिकूल है।

7. उत्साही :

शोध निर्देशक में उत्साह का गुण होना आवश्यक है। शोध निर्देशक उत्साही होगा तो वह शोधार्थी को शोधकार्य करने के लिए उत्साहित कर सकता है। शोधार्थी के सुयोग्य रचना की प्रशंसा करना, उसकी योग्यता कला को परखना एवं महत्ता को सराहने की योग्यता हो तभी तो वह शोधार्थी को सही ढंग से मार्गदर्शन कर सकता है। उत्साह वह प्रेरक तत्व है जिसके बल पर शोधार्थी को निर्देशक शोध कार्य संपन्न करने के लिए सक्षम तथा समर्थ रहता है।

8. पूर्वाग्रह से मुक्त :

निर्देशक को पूर्वाग्रह से मुक्त होना चाहिए। शोध पूर्ण होने तक वह किसी भी प्रकार के पूर्वग्रह का शिकार न हो। पूर्वग्रह से ग्रसित निर्देशक अहंकार का शिकार हो जाता है। परिणामत: निर्देशक कर्तव्यच्युत और पतन की ओर जाता है। शोध में निरंतर शोध की संभावना बनी रहती है। प्रत्येक कदम पर शोधार्थी की पहली मान्यताएं बदल सकती है, ऐसे समय पर पूर्वग्रह विरहित होकर शोधार्थी को उचित मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। ऐसी स्थिति में शोध निर्देशक ही शोधार्थी को उचित मार्गदर्शन कर सकता है।

9. कर्तव्य परायणता :

कर्तव्य परायणता जीवन जीने का मूल्य है। निर्देशक को किसी भी स्थिति में प्रमादी, लोभी या अपकारी बनकर कर्तव्य परायणता से विमुख नहीं होना चाहिए। शोधार्थी को विषय वस्तु से संबंधित शोध सामग्री की जांच-पड़ताल करने तथा उसे सुयोग्य लाभ उठाने के लिए मार्गदर्शन करना निर्देशक का परम कर्तव्य है।

10. चिंतक :

शोध निर्देशक स्वतंत्र लेखन-चिंतन-मनन करने वाला होना चाहिए। जिस विषय में वह निष्णात है उस विषय के संबंध में तथा अध्ययन-अध्यापन कार्य से संबंधित उसका चिंतन, लेखन कार्य चलता रहना चाहिए। कोई भी शोध निर्देशक साहित्य के किसी भी क्षेत्र में शोध करवा सकने में सक्षम नहीं होता है। परंतु

वह तत्सम साहित्य संबंधी चिंतन-मनन द्वारा समग्र ज्ञान की प्राप्ति कर शोधार्थी को शोध कार्य में मदद कर सकता है।

निष्कर्ष : निर्देशक के गुणों में उसकी विचारशीलता, कलाभिरूचि, स्पष्टता आदि कई गुणों का समावेश कर सकते हैं। निर्देशक इन बातों को ध्यान में रखकर एक श्रेष्ठ शोध निर्देशक बन सकता है। निर्देशक को सदैव सकारात्मक निर्देश देना चाहिए तथा आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास करना चाहिए। शोधार्थी को निर्देशन को मानने व न मानने में स्वतंत्रता देनी चाहिए तथा निर्देशन प्रक्रिया लचीली होनी चाहिए। शोधार्थी पग-पग में शोध निर्देशक से निदेश लेना उचित समझता है। शोधार्थी और शोध निर्देशक दोनों गुरु-शिष्य परम्परा को जीवित रखे हुए हैं। जब शोधार्थी गाइड को गॉड मानता और निर्देशक को सद्गुरू समझता है तभी साधना सफल एवं सार्थक होती है।

1.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

i) निम्नलिखित वाक्यों के नीचे दिए गए उचित विकल्प चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1. अनुसंधान शब्द मूलतः अंग्रेजी के.......का पर्यायवाची हैं।

   अ) रिसर्च ब) सर्च क) रिसर्चर ड) रिमार्क

2. शोध शब्द के लिए पर्यायवाची शब्द....... है।

   अ) अनुसंधान ब) गवेषणा क) अन्वेषण ड) उपर्युक्त सभी

3. अनुसंधान किसी क्षेत्र में......की खोज करना है।

   अ) विधि ब) ज्ञान क) धर्म ड) समाज

4. अनुसंधान की प्रकृति तथा उसका स्वरूप मूलतः.........रहा है।

   अ) वैज्ञानिक ब) अवैज्ञानिक क) काल्पनिक ड) पौराणिक

5. शोध शब्द........ धातु से बना है।

   अ) धत् ब) शुद्ध क) धन् ड) लोट्स

6. पीएच.डी का पूर्ण रूप........ है।

   अ) डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी ब) डॉक्टर ऑफ मार्फालॉजी

   क) डॉक्टर ऑफ मेडिसिन ड) डॉक्टर ऑफ फार्मेसिस्ट

7. 'शोध नये तथ्यों की खोज ही नहीं, उसकी तर्क सम्मत व्याख्या है।' कथन........का है।

   अ) डॉ. नगेन्द्र ब) भगीरथ मिश्र क) लउण्डबर्ग ड) विनय मोहन शर्मा

8. अनुसंधानकर्ता में ज्ञान के प्रति........का होना आवश्यक है।

अ) रूचि ब) जिज्ञासा क) विश्वास ड) इच्छा

9. शोध निर्देशक में.........गुणों का होना आवश्यक है।

अ) सहिष्णुता ब) निष्पक्षता क) तटस्थता ड) उपर्युक्त सभी

10. .... शोध का पर्यायवाची नहीं है।

अ) अनुसंधान ब) अन्वेषण क) विश्लेषण ड) ख़ोज

11. नवीन ज्ञान को प्राप्त करने के क्रमबद्ध प्रयास को..........कहा जाता है।

अ) निदर्शन ब) अनुसंधान क) उपकल्पना ड) समीक्षा

12. अनुसंधान मानव की ....प्रवृत्ति है।

अ) जन्मजात ब) अभ्यास जनित क) आनुवंशिक ड) इनमें से कोई नहीं

13. शोध का आधारभूत उद्देश्य........है।

अ) सैद्धांतिक ब) व्यावहारिक क) व्यक्तिगत ड) उपर्युक्त सभी

14. अनुसंधानकर्ता का ....पर प्रभुत्व होना चाहिए।

अ) भाषा ब) शैली क) व्याकरण ड) संस्कृति

15. अनुसंधान के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण गुण........ है।

अ) अनुसंधान में रूचि ब) अनुसंधान की विधियों का ज्ञान

क) अनुसंधान करने का अनुभव ड) संबंधित विषय में रूचि

16. इंटर डिसिप्लिनरी रिसर्च के लिए हिंदी में.......... शब्द प्रयुक्त है।

अ) अंतर्विद्याशाखीय शोध ब) अंतर अनुशासनिक शोध

क) अंतर क्षेत्रीय शोध ड) उपर्युक्त सभी

17. .... साहित्यिक शोध का स्वरूप नहीं है।

अ) काव्यशास्त्रीय शोध ब) आर्थिक शोध

क) पाठानुसंधान ड) शैली वैज्ञानिक शोध

18. साहित्यिक शोध में......... मंगल की प्रेरणा विहित रहती है।

अ) लोक   ब) जगत   क) परलोक   ड) पशु–पक्षी

19. भाषा वैज्ञानिक अध्ययन की .... प्रमुख पद्धतियां है।

अ) एक   ब) दो   क) तीन   ड) चार

20. .... विज्ञान को भाषा विज्ञान की शाखा माना जाता है।

अ) समाज   ब) शैली   क) नीति   ड) स्वरूप

ii) उचित मिलान कीजिए।

य) निम्नलिखित का मिलान कीजिए।

सूची - 1	सूची - 2
1. रिसर्च	अ) तुलनात्मक अध्ययन
2. कंपरेटिव रिसर्च	ब) अनुसंधान
3. पीएच.डी	क) उपाधि
4. डॉक्टरेट	ड) डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी

A) 1 - क,   2 - ड,   3 - ब,   4 - अ

B) 1 - ब,   2 - अ,   3 - ड,   4 - क

C) 1 - अ,   2 - ब,   3 - क,   4 - ड

D) 1 - ड,   2 - ब,   3 - क,   4 - अ

र) निम्नलिखित का मिलान कीजिए।

सूची - 1	सूची - 2
1. शोध	अ) लक्ष्य अनुगमन करना
2. अनुसंधान	ब) शुद्ध करना
3. परिशीलन	क) चिंतन के पीछे चलना
4. अनुशीलन	ड) किसी वस्तु का सर्वांगीण चिंतन

A) 1 - क,   2 - ड,   3 - अ,   4 - ब

B) 1 – अ,   2 – क,   3 - ब,   4 - ड

C) 1 - ब, 2 - अ, 3 - ड, 4 - क

D) 1 - ड, 2 - ब, 3 - क, 4 - अ

ल) निम्नलिखित का मिलान कीजिए।

सूची – 1	सूची – 2
1. इंटर डिसिप्लिनरी रिसर्च	अ) लोकसाहित्यिक शोध
2. फॉक लिटरेचर रिसर्च	ब) अंतर्विद्याशाखीय शोध
3. एस्थेटिक्स रिसर्च	क) मनोवैज्ञानिक शोध
4. साइकॉलजीकल रिसर्च	ड) सौंदर्यशास्त्रीय शोध

A) 1 - क, 2 - ड, 3 - अ, 4 - ब

B) 1 - अ, 2 - क, 3 - ब, 4 - ड

C) 1 - ब, 2 - अ, 3 - ड, 4 - क

D) 1 - ड, 2 - ब, 3 - क, 4 - अ

iii) सही गलत का निर्णय कीजिए।

1. नीचे दो कथन दिए गए हैं:

   कथन 1 - अनुसंधान कार्य एक ज्ञान साधना है।

   कथन 2 - अनुसंधान कार्य काल्पनिक होता है।

   य) कथन 1 और 2 सही है।

   र) कथन 1 और 2 गलत है।

   ल) कथन 1 सही है, लेकिन कथन 2 गलत है।

   व) कथन 1 गलत है, लेकिन कथन 2 सही है।

2. नीचे दो कथन दिए गए हैं:

   कथन 1 - नये ज्ञान प्राप्ति के व्यवस्थित प्रयास को शोध कहते हैं।

   कथन 2 - किसी तथ्य का परीक्षण करना ही अनुसंधान है।

   य) कथन 1 और 2 सही है।

र) कथन 1 और 2 गलत है।

ल) कथन 1 सही है, लेकिन कथन 2 गलत है।

व) कथन 1 गलत है, लेकिन कथन 2 सही है।

3. नीचे दो कथन दिए गए हैं :

कथन 1 - अनुसंधानकर्ता में ज्ञान के प्रति अटूट जिज्ञासा का होना आवश्यक नहीं है।

कथन 2 - अनुसंधानकर्ता के स्वभाव में कृतज्ञता भाव अपेक्षित होता है।

य) कथन 1 और 2 सही है।

र) कथन 1 और 2 गलत है।

ल) कथन 1 सही है, लेकिन कथन 2 गलत है।

व) कथन 1 गलत है, लेकिन कथन 2 सही है।

4. नीचे दो कथन दिए गए हैं :

कथन 1 - शोध निर्देशक को तटस्थ होना चाहिए।

कथन 2 - शोध निर्देशक को पूर्वग्रह से मुक्त होना चाहिए।

य) कथन 1 और 2 सही है।

र) कथन 1 और 2 गलत है।

ल) कथन 1 सही है, लेकिन कथन 2 गलत है।

व) कथन 1 गलत है, लेकिन कथन 2 सही है।

5. नीचे दो कथन दिए गए हैं :

कथन 1 - लोक की नैसर्गिक अनुभूतियों से लोक-साहित्य का जन्म होता है।

कथन 2 - शैली वैज्ञानिक साहित्य समीक्षा की नई वैज्ञानिक पद्धति है।

य) कथन 1 और 2 सही है।

र) कथन 1 और 2 गलत है।

ल) कथन 1 सही है, लेकिन कथन 2 गलत है।

व) कथन 1 गलत है, लेकिन कथन 2 सही है।

1.5 शब्दार्थ, संदर्भ, टिप्पणियां :

- शोधक – शोध करने वाला व्यक्ति
- निभ्रांत – भ्रांतियों – भ्रमों से मुक्त
- रिसर्च – शोध, अनुसंधान, खोज करना
- पीएच.डी – डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी
- डॉक्टरेट – शोध उपाधि से अलंकृत व्यक्ति
- गवेषणा – ज्ञात तथा अज्ञात तथ्यों की खोज
- अनुभूति – अनुभव, संवेदना
- लक्ष्योन्मुख – जिसका मुख लक्ष्य की ओर हो।
- डिक्शनरी – खोजपरक शब्दों – तथ्यों का संकलन
- निर्देशक – शोध मार्गदर्शक, गाइड
- निर्देशन – मार्गदर्शन करना

1.6 स्वयं – अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

उत्तर - **i)** बहुविकल्पी प्रश्नों के उत्तर।

1. (अ) रिसर्च
2. (ड) उपर्युक्त सभी
3. (ब) ज्ञान
4. (अ) वैज्ञानिक
5. (ब) शुद्ध
6. (अ) डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी
7. (ड) विनय मोहन शर्मा
8. (ब) जिज्ञासा
9. (ड) उपर्युक्त सभी
10. (क) विश्लेषण
11. (ब)अनुसंधान
12. (अ) जन्मजात
13. (ड) उपर्युक्त सभी
14. (अ) भाषा
15. (अ) अनुसंधान में रूचि
16. (ड) उपर्युक्त सभी
17. (ब) आर्थिक शोध
18. (अ) लोक

19. (ड) चार 20. (ब) शैली

उत्तर – **ii)** उचित मिलान।

य) B) 1 - ब, 2 - अ, 3 - ड, 4 - क

र) C) 1 - ब, 2 - अ, 3 - ड, 4 - क

ल) C) 1 - ब, 2 - अ, 3 - ड, 4 - क

उत्तर – **iii)** सही–गलत।

1. ल) कथन 1 सही है, लेकिन कथन 2 गलत है।

2. य) कथन 1 और 2 सही है।

3. व) कथन 1 गलत है, लेकिन कथन 2 सही है।

4. य) कथन 1 और 2 सही है।

5. य) कथन 1 और 2 सही है।

1.7 सारांश :

अनुसंधान को शोध कार्य भी कहा जाता है। मुख्यतः अनुसंधान कार्य एक ज्ञान साधना है। अनुसंधान कार्य की मूल प्रेरणा जिज्ञासा वृत्ति है। अनुसंधान का अर्थ किसी भी क्षेत्र में ज्ञान की खोज करना अथवा विधिवत गवेषणा करना है।

नए ज्ञान की खोज की दिशा में की गयी क्रमबद्धता एवं व्यवस्थित कोशिश अनुसंधान है। जिसमें अज्ञात तथ्यों का उद्घाटन, बिखरे तथ्यों का संयोजन, विषय से संबंधित सामग्री का संकलन, प्राप्त सामग्री का सुनियोजन, विश्लेषण और निष्कर्ष प्रस्तुत किए जाते हैं।

सामान्यतः शोध या अनुसंधान करने का मुख्य प्रयोजन किसी समस्या का समाधान करना होता है। अनुसंधान का उद्देश्य नये–नये विषयों की खोज करना है।

एक अच्छे शोधार्थी में जिज्ञासा, विषय का समग्र ज्ञान, क्षमता, निरंतर कार्य संलग्नता एवं लगनशीलता, कृतज्ञता भाव, भाषा पर अधिकार, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और तटस्थता का होना आवश्यक है।

शोध निर्देशक शोध–कार्य की आधारशिला होती है। बिना शोध निर्देशक के शोधार्थी अपना शोध कार्य पूर्ण नहीं कर सकता। एक अच्छे शोध निर्देशक में कर्मठता, धैर्य, तटस्थता, सहिष्णुता निष्पक्षता, कर्तव्य परायणता, सहनशीलता, विचारशीलता, स्पष्टता और सकारात्मकता का होना आवश्यक है।

साहित्य के जटिल सृजनात्मक स्वरूप के कारण साहित्यिक शोध की अभी तक कोई सुनिश्चित पद्धति विकसित नहीं हो सकी है और ना ही इसकी कोई संभावना है, क्योंकि साहित्य का सृजनात्मक स्वरूप किसी प्रकार की यान्त्रिकता को स्वीकार नहीं कर सकता। साहित्यिक शोध के लिए शोधार्थी में ज्ञान-वृत्ति के साथ ही सृजन, सौंदर्य और संस्कृति की पोषक भाव-वृत्ति का समुचित संयोग भी अभीष्ट है। शोधार्थी में बौद्धिक क्षमता के साथ ही सौंदर्यग्राही सृजनात्मक प्रतिभा का होना आवश्यक है। संक्षेप में साहित्यिक अनुसंधान के लिए भाव और अभिव्यक्ति से संबंधित काव्यशास्त्रीय अथवा साहित्यिक विधियां ही उपयुक्त है। साहित्य के किसी क्षेत्र या कृति का किसी साहित्येतर दृष्टि या शास्त्रीय दृष्टि से अध्ययन ही अंतरविद्यावर्ती अनुसंधान है।

1.8 स्वाध्याय :

अ) निम्नलिखित दीर्घोत्तरी प्रश्नों के उत्तर लिखिए।

1. अनुसंधान का स्वरूप स्पष्ट करते हुए अनुसंधान के प्रयोजन पर प्रकाश डालिए।
2. साहित्यिक अनुसंधान का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।
3. अनुसंधान के प्रकारों पर प्रकाश डालिए।
4. अनुसंधानकर्ता के गुणों पर प्रकाश डालिए।
5. शोध निर्देशक के गुणों पर प्रकाश डालिए।

ब) निम्नलिखित लघुत्तरी प्रश्नों के उत्तर लिखिए।

1. अनुसंधान का अर्थ एवं परिभाषा।
2. अनुसंधान का स्वरूप।
3. शोध निर्देशक।
4. अनुसंधानकर्ता।
5. वर्णनात्मक शोध।
6. साहित्येतिहासिक शोध।
7. तुलनात्मक अंतर्विद्याशाखीय शोध।

1.9 क्षेत्रीय कार्य :

1. हिंदी में अनुसंधान की स्थिति का अध्ययन कीजिए।
2. शोध कार्य में कंप्यूटर का उपयोग।

3. हिंदी के विकास में अनुसंधान का योगदान।

1.10 अतिरिक्त अध्ययन हेतु संदर्भ :

1. अनुसंधान प्रविधि – डॉ. विनय मोहन शर्मा, नेशनल पेपरबैक्स, नयी दिल्ली।
2. शोध एवं प्रकाशन नीतिशास्त्र – सुरेन्द्र कटारिया, श्रीराम पाण्डेय, आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स, जयपुर।
3. अनुसंधान स्वरूप और आयाम – डॉ. उमाकांत गुप्त, डॉ. ब्रजरतन जोशी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली।
4. शोध पद्धतियां – डॉ. डी. एस. बघेल, एस. बी. पी. डी. पब्लिकेशन, आगरा।
5. हिंदी अनुसंधान – विजयपाल सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

❑❑❑

इकाई –2
अनुसंधान के मूलतत्त्व शोध और आलोचना

अनुक्रम–

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 विषय विवरण

2.3.1 अनुसंधान के मूलतत्व

2.3.2 शोध और आलोचना

2.3.3 अनुसंधान के चरण

2.3.4 सामग्री संकलन

2.3.5 सामग्री संचयन की पद्धतियाँ

2.3.6 अनुसंधान की पद्धतियाँ

2.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

2.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

2.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

2.7 सारांश

2.8 स्वाध्याय

2.9 क्षेत्रीय कार्य

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

1. अनुसंधान के मूलतत्वों की जानकारी से परिचित होंगे।
2. शोध और आलोचना के साम्य और वैषम्य की जानकारी से परिचित होंगे।
3. अनुसंधान के विभिन्न चरणों की जानकारी से परिचित होंगे।

4. सामग्री संकलन की जानकारी से परिचित होंगे।

5. सामग्री संचयन की विविध पद्धतियों की जानकारी से परिचित होंगे।

6. अनुसंधान की विभिन्न पद्धतियों की जानकारी से परिचित होंगे।

प्रस्तावना :-

आवश्यकता शोध की जननी है और शोध विकास की जननी है। मन्युष्य के आत्मिक एवं भौतिक तथा बहुमुखी जीवन, ज्ञान-विज्ञान-तंत्रज्ञान, समाजविज्ञान, मनोविज्ञान, साहित्य, दर्शन, संस्कृति, कृषि, औषधि-विज्ञान, शरीर विज्ञान, जैविक विज्ञान, अर्थनीति, खगोल, भूगोल, भूगर्भ विज्ञान तथा भाषाभिव्यक्ति आदि में जो विलक्षण उन्नति हुई है, वह अनुसंधान के कारण ही। ज्ञानात्मकता शोध की अनिवार्य शर्त है। ज्ञान-पिपासा की तृप्ति, सदसद्विवेक एवं मानव क्षमता का उन्नयन अनुसंधान का मूल लक्ष्य है। ज्ञान के प्रति मनुष्य की आकांक्षापूर्ति, उसकी विवेकशक्ति का विकास और क्षमता की वृद्धी तथा अनेक प्रकार से जीवन की सुख-सुविधाओं का विस्तार अनुसंधान के प्रमुख एवं मौलिक उद्देश्य हैं। जीवन की समृद्धि और मानव के उत्कर्ष में योगदान करने में ही वास्तव में शोध की चरम सार्थकता है। इससे स्पष्ट है कि अनुसंधान का लक्ष्य स्वान्तसुखाय.

2.1 अनुसंधान के मूलतत्व:

अनुसंधान के मूल तत्व का आधार उसकी प्रक्रिया में निहित वे सारे तत्व हैं जिनसे अनुसंधान आरंभ से अंत तक जुड़ा रहता है। शोध के लिए एक दृष्टिकोण के साथ ही वह प्रक्रिया भी होती है जिससे गुजरना पड़ता है। अनुसंधान के मूल तत्वों में प्रमुख रूप से सर्वप्रथम विषय का चयन आवश्यक होता है उसके उपरांत रुपरेखा निर्माण, सामग्री संकलन, शोध प्रबंध लेखन और व्यवस्थापन इन सभी तत्वों से मिलकर अनुसंधान की संरचना होती है। जिसके लिए अन्वेषक और निर्देशक आवश्यक है। अनुसंधान के मूल तत्वों का यहाँ संक्षेप में विवेचन प्रस्तुत करेंगे।

2.1.1 विषय-चयन :-

विषय-चयन शोध प्रबंध की आधार-धुरी है। कोई भी शोध कार्य विषय निर्वाचन के बिना आरंभ ही नहीं हो सकता अतएव शोधकर्ता के सम्मुख शोध का सर्व प्रथम मूलतत्व विषय-चयन ही होता है। जिस विषय में भी शोध कार्य करना है उसका क्षेत्र अत्यंत व्यापक होता है। विषय चयन में सावधानी बरतना आवश्यक है। सर्वप्रथम किसी क्षेत्र से विषय का चयन हो यह तय करने के बाद यह देखना आवश्यक है उस विषय पर पहले उसी रूप में कोई अनुसंधान न कर लिया गया हो। अनेक शोध पत्रिकाओं को भी देखकर विषय चयन किया जाता है। इसके लिए निर्देशक से भी सलाह करना आवश्यक है। विषय-चयन में सर्व-प्रथम सामग्री की सुलभता को ध्यान में रखा जाता है। शोध छात्र को यह भी तय करना आवश्यक है कि विषय उसकी अभिरुचि या मनोवृत्ति के अनुकूल हो तथा उस क्षेत्र में संबंधित विश्वविद्यालय में उपयुक्त

निर्देशक और सामग्री सुलभ हो सके। हिंदी में विषय चयन के लिए क्षेत्र हैं जो साहित्यकार के जीवन से लेकर सामाजिक परिवेश और रचनात्मकता तक व्याप्त है।

2.1.2 अनुसंधान की संरचना और रुपरेखा निर्माण :–

रुपरेखा शोध का महत्वपूर्ण तत्व है, क्योंकि इसके बिना शोध कार्य को दिशा एवं गति प्राप्त नहीं हो सकती। रुपरेखा के बिना विषय का स्वरुप स्पष्ट नहीं हो सकता। रुपरेखा शोध की दिशा निर्देशिका है। किसी भी शोध योजना में रुपरेखा आवश्यक होती है और उसके आधार पर ही विश्वविद्यालयों में शोध कार्य का पंजीयन किया जाता है। रुपरेखा के आरंभ में एक भूमिका आवश्यक होती है साथ ही अध्यायों के शीर्षकों के साथ ही उन्हें उपशीर्षकों में भी विभाजित किया जाता है। किसी भी रुपरेखा के निर्माण में उस विषय का महत्व होना चाहिए जिस विषय पर शोध कार्य किया जा रहा हो। हिंदी साहित्य में अनेक बार यह देखा गया है कि विषय से संबंधित सामग्री को विषय से अधिक महत्व दिया जाता है जो उपयुक्त नहीं है, यह रुपरेखा पंजीयन के समय संक्षेप में प्रस्तुत की जा सकती है किन्तु शोधकार्य का अधिकांश भाग हो जाने पर विस्तार से रुपरेखा बनाकर फिर से प्रस्तुत की जा सकती है। रुपरेखा अत्यंत स्पष्ट हो यह भी आवश्यक है।

2.1.3 सामग्री–संकलन :–

सामग्री-संकलन के बिना प्रबंध-लेखन असंभव है। संकलित सामग्री वह कच्चा माल है, जिसके योग से भवन निर्माण किया जाता है। शोध की प्रमाणिकता एवं मौलिकता का निर्वाह सामग्री की उपलब्धता एवं संकलन द्वारा ही संभव हो सकता है। जिसका ध्यान विषय–चयन के समय ही रखना आवश्यक होता है। वैसे तो रुपरेखा बनाते समय हो कुछ सामग्री संकलित करना आवश्यक होता है पर शोध कार्य के लिए सामग्री का संकलन विस्तार से किया जाता है। विषय से संबंधित सामग्री वह है जिसमें कि उस विषय से जुड़े सभी तथ्य उपलब्ध हो सके। इसके लिए मूल ग्रंथों को उपलब्ध करना आवश्यक होता है, और इसमें पुस्तकालयों का सहयोग लेने के साथ ही आवश्यकता पाण्डुलिपियों का संकलन भी करना पड़ता है।

2.1.4 शोध–प्रबध लेखन :–

शोध-प्रबंध की संरचना अनुसंधान का सर्व प्रमुख तत्व है। विषय–चयन, रुपरेखा निर्माण और सामग्री संकलन किया ही जाता है कि शोध प्रबंध लिखा जा सके। इस शोध प्रबंध को लिखने में शोध के नियमों का भी पालन करना पड़ता है जिसमें शीर्षक देने के साथ ही उद्धरण और टिप्पणियाँ देना भी आवश्यक है, साथ ही संदर्भ ग्रंथों की जानकारी देना भी आवश्यक है, इसी से शोध प्रबंध लेखन में सहायता मिलती है। अनुसंधान अपने में ही एक प्रबंधात्मक व्यवस्था है जिसमें शोध प्रबंध का लेखन करते हुए क्रमबद्ध संयोजन आवश्यक होता है।

शोध प्रबंध लेखन की प्रक्रिया में आधार ग्रंथ, संदर्भ ग्रंथ और सहायक ग्रंथों की प्रमुख भूमिका होती हैं. शोध–प्रबंध के अंत में शोध–सारांश संक्षेप में लिखा जाता है। शोध प्रबंध लेखन में मूल पुस्तक के संदर्भ देना ही पर्याप्त नहीं होता बल्कि विभिन्न स्त्रोतों से भी सामग्री जुटाना आवश्यक है। यदि रचनाकार जीवित है

तो उससे साक्षात्कार को प्रश्नावली के माध्यम से प्रयोग में लाया जा सकता है। और इसके लिए वैज्ञानिक प्रणाली का उपयोग कर संबंधित विषय पर प्रश्नों की रचना की जाती है। साहित्य में भी सर्वेक्षण किया जा सकता है। इसके उपरान्त दृश्य-श्रव्य माध्यमों का भी प्रयोग करना संभव है। शोध प्रबंध में इन सभी तत्वों के आधार पर अनुसंधान होता है और यह सब उसकी संरचना का अनिवार्य भाग है।

2.1.5 शोध–व्यवस्थापन :

शोध-कार्य संपन्न होने पर निष्कर्षित तथ्यों को क्रमबद्ध रूप से संयोजित किया जाता है। यह सूत्रबद्ध शोध-व्यवस्थापन अनुसन्धान का प्रमुख तत्व है। शोध के बाह्य व्यवस्थापन के अंतर्गत और बहिरंग, दो प्रकार का होता है। शोध के बाह्य व्यवस्थापन के अंतर्गत मुखपृष्ठ पर शोध-विषय, शोधार्थी, शोध-निर्देशक, शोध केंद्र और विश्वविद्यालय का नाम अंकित किया जाता है। किस उपाधि के लिए किस विश्वविद्यालय को शोध प्रबंध प्रस्तुत किया जा रहा है। इसका उल्लेख भी मुखपृष्ठ पर विधिवत किया जाता है। फिर शोध-प्रबंध प्रस्तुति का वर्ष भी इसी पृष्ठ पर अंकित किया जाता है। अंतर्गत-व्यवस्थापन में शोध-प्रबंध के आरंभ में भूमिका, अनुक्रमाणिका एवं अध्याय-विभाजन और शोध-प्रबंध के अंत में संदर्भ सूची, आधार ग्रंथ सूची तथा परिशिष्ट आदि का समावेश किया जाता है। इसी प्रकार अंतर्गत शोध-व्यवस्थापन में अलग-अलग अध्यायों के शीर्षक, उपशीर्षक, पाद-टिप्पणियाँ आदि का अंतर्भाव होता है।

2.2 शोध और आलोचन :–

2.2.1 अनुसन्धान /शोध का स्वरुप :–

मानव अपनी मुलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए चिरकाल से प्रकृति से संघर्ष करता आया है। पृथ्वी की अतल गहराइयों से लेकर आकाश की ऊँचाइयों तक कोई क्षेत्र उससे अछूता नहीं है। चराचर प्रकृति के अंत: बाह्य नाना रहस्यों के प्रति मानव की जिज्ञासा है। अपनी इसी जिज्ञासा की पूर्ति के लिए उसने ज्ञान-विज्ञान के नये द्वारों- मार्गों का अविष्कार किया. मानव की इसी सहज जिज्ञासा का विकसित रूप अनुसंधान है .

2.2.2 अनुसंधान की परिभाषा :–

किसी महत्वपूर्ण विषय का (अल्पज्ञान, अज्ञान) या अन्यथा विवेचित का कठोर परिश्रम, विवेक एवं पूर्ण लगनपूर्वक किया गया निष्कर्ष मूलक वैज्ञानिक अध्ययन 'अनुसंधान' है।

P.M.Cook के अनुसार- ''शोध मूलत: कठोर श्रम पर आधारित प्रमाणिक तथ्यान्वेषण और अर्थान्वेषण है।''

W.S.Manroe : ''मुलभूत तथ्यों के आधार पर कठोर श्रम एवं विवेक से उपलब्ध किसी समस्या के समाधान की प्रक्रिया ही शोध है।''

2.2.3 आलोचना का स्वरुप :–

साहित्य की भांति आलोचना भी चिरकालिक है। फिर भी आलोचना सृजनात्मक साहित्य की अपेक्षा एक नवीन विधा के रूप में ही गृहीत है। आलोचक और सृष्टा का भेद होने पर भी प्रत्येक आलोचक एक सृष्टा है, प्रत्येक सृष्टा आलोचक है। सृजन कर्ता में यदि हृदय का प्राबल्य है तो आलोचक में बुद्धिपक्ष का साथ ही प्रत्येक आलोचनात्मक कृति एक विशिष्ट भावस्तर पर पहुंचकर स्वयं सृजन हो जाती है।

2.2.4 आलोचना की परिभाषा :–

केंट के अनुसार= ''आलोचना का कार्य उस सिद्धांत अथवा सामान्य धरातल की खोज है जो प्रत्येक मतभेद की रीढ़ में निहित है। ''

राबर्टसन के अनुसार :- ''मानव के ज्ञान क्षेत्र की समस्त दिशाओं में तुलना और मतवैविध्य की एक प्रक्रिया ही आलोचना है।''

2.2.5 अनुसंधान और आलोचना का परस्पर संबंध :–

अनुसंधान और आलोचना दोनों साहित्यिक विधाएं है। दोनों विधाओं में काफी हद तक समानता है। तथापि ये दोनों एक-दूसरे के पर्याय नहीं माने जा सकते, क्योंकि इन दोनों में मुलभूत तथा आधारभूत अंतर है। अनुसंधान में ज्ञानवर्धक को महत्व दिया जाता है, जब कि आलोचना में प्रभाव ग्रहण को. आलोचना और अनुसंधान का अंग-अंगों संबंध है, अर्थात अनुसंधान में आलोचना समाहित हो सकती है, जैसे-सागर में सरिता रहती है, किन्तु आलोचना में अनुसंधान नहीं रह सकता, जैसे सरिता में सागर समाहित नहीं हो सकता.

2.2.6 अनुसंधान और आलोचना में साम्य :–

1. अनुसंधान और आलोचना दोनों साहित्यिक विधाएं हैं।

2. दोनों के व्युत्पत्यर्थ में निरिक्षण, चिंतन की प्रधानता है।

3. दोनों भावयात्री प्रतिभा के फल है।

4. दोनों अध्येयता विषय के यथार्थ स्वरूप का उद्घाटन करते है।

5. दोनों में तथ्यों का संकलन तथा उनके आख्यान-विश्लेषण तथा विवेचन के आधार पर औचित्य पूर्ण निष्कर्षों की स्थापना की जाती है।

6. दोनों में वैज्ञानिक पद्धतियों को अपनाया जाता है।

7. दोनों में कल्पना की बेपर उड़ान, गप्पमार लफ्फाजी निषिदध है।

8. अनुसंधाता और आलोचक दोनों में ही विषयोचित अभिज्ञता विवेचन क्षमता, चिंतनशीलता, सत्यनिष्ठा, मौलिकता एवं प्रस्तुति-कौशल आदि पूरक गुणों की अपेक्षा होती है।

9. अपने श्रेष्ठ रूप में दोनों परस्पर पूरक हैं. अर्थात उत्तम कोटि को आलोचना में अनुसंधान की एकानेक प्रमुख विशेषताओं की उपस्थिति अनिवार्य है।

10. दोनों में अंत:साक्ष्य तथा बाह्यसाक्ष्य को प्रमाण के लिए अपनाया जाता है।

11. दोनों में कार्य-कारण संबंध तथा अर्थ-व्यंजना का उद्घाटन समान रूप से होता है।

12. दोनों में वस्तुमूलकता तथा संभावनाओं को महत्व दिया जाता है। शोधार्थी और आलोचक दोनों को भी अध्यतव्य विषय के मूल में प्रवेश करना पड़ता है।

13. दोनों की पद्धति भी समान है, उनकी प्रणालियाँ भी समान हैं, व्याख्या, विश्लेषण और निर्णय अनुसंधान में भी है और आलोचना में भी. अनुसंधान में जो तथ्याख्यान है, वही आलोचना में व्याख्या, विश्लेषण है। दोनों में विवेचन, कार्य-कारण सूत्र का अन्वेषण, परस्परसंबंध तथा अर्थ-व्यंजना आदि का उद्घाटन समान रूप से होता है। दोनों के साम्य के संदर्भ में डॉ. नगेन्द्र का यह कथन दृष्टव्य है: ''उनकी (अनुसंधान और आलोचना) जाति ही नहीं, उपजाति भी एक ही है।''

14. इसी प्रकार पक्ष: विपक्ष के संतुलन आदि के आधार पर निष्कर्ष और निर्णय की पद्धति भी दोनों में प्राय: समान है। तथ्य-विश्लेषण के पश्चात् तत्व रूप में निष्कर्ष ग्रहण करना नितांत आवश्यक होता है। अत: निष्कर्ष और निर्णय का महत्व अनुसंधान और आलोचना दोनों के लिए समान रूप से मान्य है, क्योंकि उसके बिना विचार प्रक्रिया पूरी नहीं हो सकती.

15. भाषाशैली का दोनों में समान महत्व है। दोनों भी भाषा का साहित्यिक अध्ययन करते है।

16. देशकालगत परिवेश का दोनों में समान महत्व है।

2.2.7 अनुसंधान और आलोचना में वैषम्य :-

2.2.7.1 व्युत्पत्यर्थ:

अनुसंधान (अनु+संधान) में मूल धातु 'धा' है, जिसमें सम उपसर्ग लगाकर संधान शब्द बना है। संधान से तात्पर्य है 'लक्ष्य बांधना' या निशाना साधना. अनुसंधान में 'संधान' पर विशेष बल है। उसमें निर्दिष्ट लक्ष्य पर दृष्टि को केंद्रित करके मनो योगपूर्वक सूक्ष्म अन्वेषण अनिवार्य है। 'अनु' का अर्थ है अनुसरण पुन: पुन: निरंतर या आवर्तन. 'अनु' के द्वारा अनवरत चिंतन का भी संकेत किया गया है।

आलोचना में मूल धातु 'लुच' है, जिसका अर्थ है देखना. आलोचना में 'लोचन' पर बल है, उसमें निरीक्षण, परीक्षण की प्रधानता है। इसमें 'आ' उपसर्ग व्यापकता या सर्वेक्षण का द्योतक है। इस प्रकार आलोचना का अर्थ हुआ, किसी वस्तु या रचना का सांगोपांग विवेचन.

इस प्रकार धात्वर्थ के आधार पर ही अनुसंधान और आलोचना में मूल अंतर हो जाता है। अनुसंधान अन्वेषण के निकट है, जब कि आलोचना निरीक्षण, परीक्षण तथा मूल्यांकन के निकट है। तथापि अन्वेषण और परीक्षण एक-दूसरे से भिन्न तत्व नहीं है। अन्वेषण के अभाव में निरीक्षण और निरीक्षण के बिना

अन्वेषण संभव नहीं है। तात्पर्य शोध और समीक्षा के स्वरुप में कुछ बिन्दुओं पर समानता अवश्य रहती है, क्योंकि समीक्षा दृष्टि के बिना शोध-संभव नहीं है।

2.2.7.2 स्वरुप तथा प्रविधि-प्रक्रिया :-

अनुसंधान स्वरुपत: विज्ञानप्रधान, बुद्धिप्रधान एवं चिंतनपरक प्रक्रिया है। उसकी संपूर्ण प्रविधि एवं प्रक्रिया वैज्ञानिक है। अनुसंधान को अपने मत के समर्थन में पुष्ट प्रमाण देना पड़ता है। अपेक्षित उद्धरण और संदर्भोल्लेख शोध-प्रबंध की अपरिहार्य शर्त है। संदर्भ-निर्देश रहित प्रबंध को शोध-प्रबंध कहना इस शब्द का दुरूपयोग करना है। संदर्भोल्लेख का अधूरापन भी दोष है।

अनुसंधाता को विषयांतर तथा कल्पना-विस्तार करने का कोई अधिकार नहीं हैं। अनुसंधाता को अध्यायों के विभाजन एवं उपविभाजन में भी आनुपातिक औचित्य की रक्षा करनी पड़ती है। शोध-प्रबंध में पूर्वानुबंध के रूप में संकेत-सूची, विषय-सूची और प्राक्कथन की तथा पश्चानुबंध के रुप में ग्रंथसूची और अनुक्रमणिका की योजना भी उसकी वैज्ञानिक अवस्था का अंग है।

आलोचना स्वरुपत: कलाप्रधानता है। आलोचक अपनी आलोच्य विषयक मर्मनुभूति को पाठकों द्वारा तदनुरूप ग्राह्य बनाने के लिए अपनी रचना में साहित्यिक अभिव्यक्ति की प्रभावोत्पादक विधाओं का भरपूर उपयोग करता है। उसमें रसात्मकता और भावात्मकता की विशेषता होती है।

आलोचना के लिए तथ्याधार आवश्यक है, परन्तु उसमें तथ्याशोध और वस्तुनिष्ठता के प्रति विशेष आग्रह नहीं है, वह विषयी प्रधान भी हो सकती है। असंबंध तथ्यों की शृंखला मिलाने के लिए उसमें कल्पना का स्वच्छन्दतापूर्वक उपयोग किया जाता है। उसमें तार्किक पद्धति के अवलंबन का बंधन नहीं है।अपने गृहीत प्रभावों की निर्बाध अभिव्यंजना के लिए आलोचक स्वतंत्र है। वह अपने कथनों या निष्कर्षों की प्रमाण पुष्टि के लिए उद्धरण देने या संदर्भोलेख करने को बाध्य नहीं है।जहाँ सन्दर्भ और उद्धरण दिए हैं,वहाँ भी वैज्ञानिकता का निर्वाह प्राय: नहीं होता है। हिंदी की उत्तमोत्तम आलोचनाएँ भी सत्यापित उद्धरणों एवं अधूरे संदर्भोल्लेख से भर पड़ा हैं.

इस प्रकार स्वरूप और प्रविधि-प्रक्रिया की दृष्टि से भी अनुसंधान और आलोचना में भेद है।

2.2.7.3 विषय :-

अनुसंधान और आलोचना में विषय-भेद भी है। विषयों की समष्टि रूप की दृष्टि से अनुसंधान और आलोचना में व्यापक-व्याप्य संबंध हैं। हिंदी के समीक्षा ग्रंथो तथा शोध-ग्रंथो के मिलान से यह ज्ञात होता है कि आलोचना के समस्त विषय अनुसंधान की परिधि में समाविष्ट हो सकते है; किंतु अनुसंधान के अनेक विषय आलोचना के वृत्त में नहीं आते। उदाहरण के लिए शुद्ध भाषावैज्ञानिक शोध तथा लोक संस्कृति, इतिहास, शिक्षा आदि से संबंधित विषय आलोचना की सीमा में नहीं आ सकते। तात्पर्य शोध-प्रबंध के संदर्भ में अनुसंधान अंगी है और आलोचना का सह अस्तित्व उसके अंग रूप में हैं।

व्यष्टि रूप से शोध-प्रबंध का विषय लक्षित होता है। अत: शोध-कर्ता को उसकी निर्धारित सीमा के भीतर कार्य करना पड़ता है। किंतु समीक्षा ग्रंथ में इस प्रकार भी सीमा-मर्यादा नहीं होती है। अर्थात आलोचना का विषय क्षेत्र विस्तृत एवं व्यापक होता है। वहाँ विषय (क्षेत्र) की कोई मेडबंदी नहीं होती।

2.2.7.4 प्रयोजन:-

अनुसंधान और आलोचना में प्रयोजन भेद भी है। अनुसंधान का प्रमुख प्रयोजन है- ज्ञान-विस्तार. अतएव पीएच.डी. उपाधिविषयक विश्वविद्यालय की नियमावली में ज्ञान-विस्तार की शर्त पर विशेष बल दिया गया है। आलोचना का मुख्य प्रयोजन साक्ष्यकृत साहित्य-मर्म का संप्रेषण है। आलोचना का लक्ष्य होता है, पाठकों को किसी साहित्य रचना में निहित सौंदर्य को ठीक उसी प्रकार अनुभूति कराना जैसे उसने स्वयं की है। अपने प्रयोजन के अनुरूप की गयी आलोचना भावयोग-प्रधान होती है, जब कि अनुसंधान ज्ञानयोग-प्रधान।

2.3 अनुसंधान की पद्धतियाँ :-

अनुसंधान के क्षेत्र अत्यंत व्यापक हैं। साहित्य का अनुसंधान सामाजिक और वैज्ञानिक अनुसंधान से अलग ही होता है। प्रत्येक शोध-कार्य सामान्यत:सत्य की खोज, तथ्यों का अन्वेषण और निष्कर्ष स्थापना का अनुष्ठान है। इस अनुष्ठान की सिद्धि जिन पद्धतियों से होती है उन्हें अनुसंधान की पद्धतियाँ कहा जाता है। विषय का स्वरूप एवं शोध- विषय की माँग के अनुसार अनुसंधान की सामान्यत: तीन विधियाँ कल्पित की गयी हैं।

2.3.1 वर्णनात्मक पद्धति :-

वर्णनात्मक पद्धति अंग्रेजी narrative method का हिंदी रूपांतर है। वर्णन का अर्थ प्राय: distription के अर्थ में प्रयुक्त होता है।वर्णन शब्द का अर्थ है- शास्त्रीय या सैद्धांतिक विवेचन। वर्णनात्मक पद्धति साहित्यिक शोध की ऐसी पद्धति है जिसमें शास्त्रीय दृष्टि से विवेचन किया जाता है। शोध-कर्ता सामान्यत: शोध-विषय के प्रतिपादन हेतु अधिकतर इसी पद्धति का आश्रय लेता है। इस पद्धति में तथ्य-निरूपण, चरित्र-विश्लेषण होता है। शोध-उद्देश के प्रतिपादन हेतु शोध-कर्ता के लिए यह पद्धति अधिक श्रेयस्कर होती है।शोध के विचार-सूत्र, निष्कर्ष स्थापना तथा पात्रों के मनोविज्ञान आदि का पर्याप्त वर्णन और विवेचन करने की दृष्टि से यह पद्धति अधिक उपयुक्त है। वस्तुत: विश्व का अधिकांश साहित्य वर्णनात्मक शैली में लिखा गया है। शोध प्रबंध लेखन तथा शोध-विषय प्रतिपादन तटस्थ तथा व्यक्ति-निरपेक्ष होने के कारण शोध-कर्ता 'मैं' तथा 'हम' जैसे सर्वनामों का प्रयोग न कर अन्य पुरुष के रूप में करता है। अत: अन्य पुरुष की कथन-शैली वर्णनात्मक पद्धति के लिए अधिक पूरक तथा उपयुक्त सिद्ध होती है।

इस प्रकार वर्णनात्मक पद्धति साहित्यिक शोध की ऐसी पद्धति है जिसमें शास्त्रीय दृष्टि से वर्ण्य-विषय की विस्तृत, व्यापक विवेचना होती है। इसमें लेखक वर्ण्य-विषय से संबंधित कल्पना की सहायता से भाव-प्रतिक्रिया का अंकन करता है। इस पद्धति के अंतर्गत भाषा की रचना प्रक्रिया का समकालिक,

विश्लेष्णात्मक, विवेचन किया जाता है। बोधगम्यता, सरलता, स्पष्टता, हृदयंगमता, विवरणात्मकता आदि वर्णनात्मक पद्धति की विशेषताएँ हैं।

वर्णनात्मक पद्धति के अंतर्गत तीन पद्धतियों का समावेश किया जाता है।

2.3.1.1 काव्यशास्त्रीय पद्धति :-

काव्यशास्त्रीय पद्धति के भी दो भाग किए जाते हैं। अ भारतीय काव्यशास्त्र, ब पाश्चात्य काव्यशास्त्र। उक्त दोनों (भारतीय एवं पाश्चात्य) पद्धतियों में दोनों काव्यशास्त्र के विभिन्न सिद्धांतो का जो अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है, वह वर्णनात्मक पद्धति से किया जाता है।

2.3.1.2 व्याख्यात्मक पद्धति :-

व्याख्यात्मक पद्धति में साहित्यिक कृति की दार्शनिक, समाजशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक व्याख्या की जाती है।दार्शनिक व्याख्या, साहित्य और दर्शन का घनिष्ठ संबंध है।श्रेष्ठ साहित्यिक किसी न किसी रूप में न्यूनाधिक मात्रा में दार्शनिक भी होते हैं. उनका जीवन-दर्शन साहित्य में अभिव्यक्त होता है।

उदा 'कबीर काव्य में दार्शनिकता' इस विषय पर शोध करने वाला शोध-कर्ता अपने शोध-प्रबंध में 'कबीर के राम', 'कबीर का अद्वैतवाद', 'कबीर का निर्गुण रूप', 'आत्मा-परमात्मा', जीव-जगत, ब्रहम-माया आदि बातों की मीमांसा वर्णनात्मक पद्धति से करेगा।

2.3.1.3 मूल्यांकन पद्धति :-

मूल्यांकन से तात्पर्य है कृति विशेष का मूल्य आंकना या कृतिविषयक योग्य निर्णय करना तथा उसकी समुचित व्याख्या करना। उदा. विद्यापति भक्त हैं या शृंगारी कवि? इसका दार्शनिक तथा काव्यशास्त्रीय पद्धति से विवेचन करने के उपरांत संतुलित मुल्यांकन करते हुए निष्कर्ष दिया जाता है कि विद्यापति श्रुंगारी कवि हैं।

2.3.2 ऐतिहासिक पद्धति:-

इस प्रकार के अनुसंधान के अंतर्गत ऐतिहासिक तथा पौराणिक तथ्यों का अनुसंधान होता है। ज्ञान के प्रत्येक विषय का कालक्रम से अध्ययन, तात्विक विवेचन विश्लेषण ऐतिहासिक अनुसंधान पद्धति कहलाती है। अनुसंधान की यह एक महत्त्वपूर्ण पद्धति है। मानव जीवन में इतिहास का एक विशेष महत्त्व है। मनुष्य का कार्य-व्यापार इतिहास से जुड़ा रहता है। ऐतिहासिक तथ्यों का संबंध किसी घटना, किसी देश, समाज तथा देश और समाज की सांस्कृतिक और राजनितिक स्थितियाँ, लेखक अथवा आश्रयदाता-संरक्षक की जीवनी अथवा किसी भावात्मक और विचारात्मक परंपरा के विकास से होता है। प्रत्येक विषय-वस्तु का अपना इतिहास होता है। इस दृष्टि से ऐतिहासिक ज्ञान के बिना किसी भी साहित्य का अनुसंधान असंभव है। वस्तुत: ऐतिहासिक पद्धति एक अर्थ में इतिहास दर्शन है। ज्ञान का भांडार वास्तव में इतिहास में होता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इतिहास को ज्ञान की तीसरी आँख कहा है।

ऐतिहासिक पद्धति में तथ्यों का प्रकाशन होता है, किंतु यह पद्धति तथ्यों का केवल प्रकाशन ही नहीं करती, अपितु उनका विश्लेषण विवेचन तथा मूल्यांकन को आधार भी प्रदान करती है। ऐतिहासिक शोध पद्धति के अंतर्गत साहित्यकार, साहित्य, साहित्यिक विधा, साहित्यशास्त्र, भाषा, लिपि, छंद, व्याकरण आदि का इतिहासपरक अध्ययन किया जाता है। इतिहास और साहित्यशोध के संदर्भ में डॉ. तिलकसिंह का निमस्थ वक्तव्य उल्लेखनीय है, ''साहित्य युगसापेक्ष जीवनमूल्यों की भावमयी अभिव्यक्ति है। जीवन और जगत का विकास साहित्य का विकास है। साहित्य विकास के विभिन्न सोपानों को स्पष्ट करना ऐतिहासिक शोध का अध्ययन क्षेत्र है। किसी एक साहित्यिक कृति अथवा एकाधिक साहित्यिक कृतियों का काल के विभिन्न बिंदुओं पर मूल्यांकन करना ऐतिहासिक शोध होता है। प्रत्येक युग का साहित्य एक दीर्घकालीन विकास परंपरा का परिणाम है।'' ऐतिहासिक अनुसंधान पद्धति के अंतर्गत साहित्यिक अनुसंधाता को गंभीरता और विवेकपूर्ण वस्तुपरक तथ्यों के साथ-साथ काल के अनुरूप परिवर्तित विकसित होती हुई साहित्य में निहित मानव-चेतना तथा युगचेतना के संदर्भ को लेकर चिंतन, लेखन करना पड़ता है। अंत:साक्ष्य तथा बाहयसाक्ष्य के द्वारा प्राचीन साहित्यकारों के जीवनकाल निर्धारण, साहित्य का इतिहास लेखन अथवा किसी साहित्य विधा का उद्भव और विकास आदि ऐतिहासिक अनुसंधान के अंतर्गत ही आयेंगे। किसी देश और समाज की सांस्कृतिक, राजनितिक परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में ऐतिहासिक तथ्य साहित्यिक कृतियों में देखे जा सकते हैं। किसी एक लेखक के पूर्वापार तथा समकालीन समय, समाज और उसकी जीवनी का परिचय उसी की कृतियों से संकलित किए जा सकते है। और लेखक के समकालीन तथा परवर्ती अन्य प्रमाणों से भी जाने जा सकते है, इसे अन्त:साक्ष कहते है। बाह्य साक्ष के अंतर्गत ग्रंथ, शिलालेख, ताम्रलेख, पट्टे-परवाने आदि अनेक पुराने लेख सम्मिलित है। किसी काव्य-कृति में ऐतिहासिक तथ्यों का विवरणात्मक आकलन तथा प्रमाणित ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर काव्य-कृतियों का अध्ययन ये दोनों ही अध्ययन ऐतिहासिक के प्रकार हैं. किसी काव्य-कृति में कितना इतिहास है और कितनी कल्पना है इसका निर्णय भी इसका अध्ययन क्षेत्र है।ऐतिहासिक अनुसंधान के अंतर्गत:-

हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - डॉ. रामकुमार वर्मा

हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त

हिंदी नाटक : उद्भव और विकास - डॉ. दशरथ ओझा

हिंदी काव्यशास्त्र का इतिहास - डॉ. भगीरथ मिश्र

आदि शोध ग्रंथो का समावेश किया जा सकता है।

इस पद्धति में ज्ञान-क्षेत्र के प्रत्येक विषय का कालक्रमिक विवेचन, विश्लेषण किया जाता है। कालखंड का ऐतिहासिक तत्वों के आधार पर अध्ययन किया जाता है। इसमें प्रथमत: अध्ययन की कालावधि निश्चित की जाती है। अध्ययन की सीमा निर्धारित होने के कारण अनुसंधान में गंभीरता, पूर्णता तथा एकरूपता आ जाती है।

उदा. ऐतिहासिक अनुसंधान में 'हिंदी साहित्य का अनुसंधान' इस प्रकार का विषय लिया जाने पर उसमें काल-विभाजन के अनुसार आदिकालीन साहित्य, रीतिकालीन साहित्य, भक्तिकालीन साहित्य, आधुनिककालीन साहित्य आदि विविध रूप पाए जाते हैं।

इस पद्धति में साहित्य विकास के विभिन्न सोपानों को स्पष्ट किया जाता है। इस पद्धति से यदि 'हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य' का अनुसंधान किया जाता है तो इसमें हिंदी भाषा की व्युत्पत्ति कब और कैसे हुई? हिंदी साहित्य का आरंभ कब हुआ? हिंदी साहित्य का विकास कैसे हुआ? आदि तरह से अध्ययन करना पड़ता है। तब पता चलता है कि हिंदी भाषा की व्युत्पत्ति संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश से हुई है। हिंदी साहित्य का आरंभ सातवीं शती में हुआ और उसका विकास आदिकाल भक्तिकाल रीतिकाल आधुनिक काल इस क्रम से हुआ है।

ऐतिहासिक अनुसंधान में भाषा एवं साहित्य के मूल स्त्रोत को खोजा जाता है। मूल स्त्रोत को खोज कर उसे प्रमाणित किया जाता है। उदा. आर्य और द्रविड़ भाषा के अध्ययन में उनका मूल स्त्रोत कहाँ है? उसकी उत्पत्ति कहाँ से और कैसे हुई? आदि का अनुसंधान किया जाता है। इस प्रकार इस पद्धति में कालक्रमिक अध्ययन पर ध्यान दिया जाता है।

ऐतिहासिक अनुसंधान पद्धति में कालक्रम का महत्त्व सर्वाधिक है। किसी भी साहित्य का उद्भव, विकास कैसे हुआ यह कालक्रम की दृष्टि से देखना चाहिए। कालक्रम के अंतर्गत तिथियों का क्रम, रचनाकार का समय, उनकी कृतियों का समय देखना पड़ता है। साहित्यकार के साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन करने के लिए ऐसे क्रम की आवश्यकता होती है। कभी-कभी एक ही कवि की विचारधारा में कालक्रमानुसार परिवर्तन होता है। उदा. कवि सुमित्रानंदन पंत के पहले चार काव्यसंग्रह छायावादी हैं तथा तदपरान्त प्रगतिवादी और ततपश्चात वे अरविन्द दर्शन से प्रभावित हुए।

इस प्रकार कालक्रमानुसार उनकी विचारधाराओं में परिवर्तन हुआ। ऐसी अनुसंधान पद्धति में रचे गए शोध-प्रबंध के उदाहरण हैं

1. रामभक्ति परंपरा का विकास - डॉ. कृष्णमुरारी सिंह

2. रीतिकाव्य के स्त्रोत - डॉ. रामजी मिश्र

3. छायावादोत्तर काव्य - डॉ. शिवकुमार मिश्र

2.3.3 तुलनात्मक पद्धति

किन्हीं दो युगों, दो वर्गो, दो भाषाओँ तथा दो साहित्यकारों का विशिष्ट अध्ययन, विश्लेषण और निरूपण होता है, तब उसे तुलनात्मक अनुसंधान की संज्ञा दी जाती है। जहाँ अन्य शोध पद्धतियो में एक प्रमुख आयाम रहता है, वहाँ तुलनात्मक शोध में दो या दो से अधिक आयामों की उपस्थिति आवश्यक है।

2.3.3.1 तुलनात्मक शोध का महत्व:-

अनुसंधान के क्षेत्र में तुलनात्मक अनुसंधान का विशेष महत्त्व है। तुलनात्मक अध्ययन की सार्थकता तथा उपादेयता के संबंध में विद्वानों में एकमत नहीं है।

1. तुलनात्मक अध्ययन से तुलनीय पक्षों की ऐसी विशेषताओं का उदघाटन भी हो जाता है, जो सामान्य अध्ययन के द्वारा प्रकाश में नहीं आ पाता।

2. तुलनीय कवि या कृतियाँ एक-दुसरे को नवीन संदर्भ प्रदान करते हैं. एक-दूसरे के संदर्भ में उनका नवीन रूप प्रकट होता है।

3. पारंपरिक संपर्क और आदान-प्रदान से भाषाओं और साहित्यों के क्षितिज विस्तारित होते हैं।

4. तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा समानताओं और वैषम्यों का तटस्थ अध्ययन करके भ्रम और पूर्वाग्रह से मुक्त हुआ जा सकता है।

5. एक ही देश की विभिन्न इकाइयों को परस्पर निकट आने की संभावनाओं को प्रोत्साहन मिलता है।

6. दो संस्कृतियों की शक्ति और सौंदर्य की पहचान होती है।

7. आज विभिन्न भारतीय भाषाओं एवं साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक ही नहीं अनिवार्य बन गया है। हिंदी राजभाषा घोषित होने के बाद उसका महत्व बढ़ गया है। हिंदी को परिपुष्ट करने के लिए हिंदी तथा प्रादेशिक भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन एक उत्तम साधन बन सकता है। तुलनात्मक अध्ययन मानव के सीमित ज्ञानक्षेत्र को विस्तृत करता है और भाषागत, साहित्यिक एवं प्रादेशिक बंधनों का ज्ञानार्जन में बाधा नहीं डालने देता।

8. मानवीय गुणों का विकास होता है।

9. तुलनीय भाषाओं की साहित्यिक उपलब्धियों का आकलन शोधार्थी तथा भावक को होता है।

10. वर्तमान युग में तुलनात्मक शोध की प्रधानता बढ़ रही है।

11. राष्ट्रीय एकता की भूमिका में तुलनात्मक अध्ययन स्तुत्य भूमिका निभा सकता है।

2.3.3.2 तुलनात्मक पद्धति का उद्देश:-

इस शोध-पद्धति द्वारा ज्ञान की वृद्धि, सुख-समृद्धि, उच्चतर मानवीय मूल्यों की स्थापना, दो संस्कृतियों का सम्मिलन होता है। ज्ञानवृद्धि तथा मानवीय मूल्यों की स्थापना तुलनात्मक पद्धति का उद्देश है।

2.3.3.3 तुलनात्मक अनुसंधान के भेद:-

लक्ष्य या उद्देश, विषय, कार्यप्रणाली तथा क्षेत्र के आधार पर तुलनात्मक अनुसंधान के निम्नलिखित भेद किए जा सकते हैं-

1. दो या दो से अधिक प्रतिष्ठित कृतिकारों के कृतित्व की तुलना:- एक ही भाषा के दो या दो से अधिक कृतिकारों के कृतित्व की तुलना की जाती है। यह तुलना गुणात्मक एवं विश्लेषणात्मक होती है। दो रचनाकारों की रचना-दृष्टि, वैचारिकता, सृजनात्मकता आदि विषयों का गहन अध्ययन और विवेचन कर

उसके द्वारा साम्य और वैषम्य की स्थापना एवं कारणों का विश्लेषण किया जाता है। उदा. मैथिलीशरण गुप्त एवं माखनलाल चतुर्वेदी के काव्यों में राष्ट्रीयता: एक तुलनात्मक अनुशीलन।

2. दो भिन्न युगीन साहित्यकृतियों की तुलना:- दो भिन्न युगों के साहित्य की सामाजिक, आर्थिक, नैतिक एवं सौंदर्यपरक मूल्यों की तुलना की जाती है। एक ही प्रकार के साहित्य के दो भिन्न युगों की परिस्थितियाँ, परिवर्तित वैचारिक भावभूमियों का ज्ञान ही प्राप्त नहीं होता, अपितु दोनों युगों के भिन्न रचनाकारों एवं उनकी रचनाओं का ज्ञान प्राप्त होता है। उदा. भक्तिकाल एवं रीतिकाल के प्रेमाख्यान काव्य : एक तुलनात्मक अध्ययन।

3. दो भिन्न भाषाओं के विविध संभावनाओं की तुलना :- दो भिन्न भाषाओं के सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, सौदर्यपरक मूल्यों की तुलना या विचारों, भावों तथा कलापक्ष की तुलना की जाती है। दो भिन्न भाषाओं में किए जानेवाले अनुसंधान में अनुसंधाता को कुछ विशिष्ट योग्यताएँ रखनी चाहिए. अनुसंधाता को दोनों भाषाओं का पर्याप्त ज्ञान होना आवश्यक है। साथ ही उसे सामाजिक, सांस्कृतिक, भाषिक आदि विशेषताओं की जानकारी भी होनी चाहिए. दो भिन्न भाषाओं को लेकर किया जानेवाला अनुसंधान श्रमसाध्य होता है। ऐसा अनुसंधान नए युग की आवश्यकता है। उदा. ''हिंदी और मराठी के रामकाव्य: एक तुलनात्मक अध्ययन।

4. दो क्षेत्रों का लोकविषयक सर्वेक्षण:- दो भिन्न भाषाओं या भिन्न क्षेत्रों के प्रादेशिक-विषयों, लोकगीतों, लोक-देवताओं, लोक रुढियों एवं लोक स्थितियों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। जैसे- ''राजस्थानी एवं बुंदेलखंड के लोकगीत/ एक तुलनात्मक अनुशीलन''

सर्वेक्षण पर आधारित इस विधि के द्वारा लोकजीवन की गतिविधियाँ, सांस्कृतिक विशेषताएँ, ऐतिहासिक घटनाएँ आदि का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। लोकसाहित्य क्षेत्रीय जनजीवन का प्रतिबिंब प्रस्तुत करता है।

5. भिन्न भाषा-भाषी कृतिकारों के कृतित्व की तुलना:- दो भिन्न भाषाओं के रचनाकारों या उनकी रचनाओं की तुलना इस प्रकार के अनुसंधान में की जाती है। इसके अंतर्गत कृतिकारों के विचार, उनका दृष्टिकोण, अनुभवों, रचना संस्कार आदि का तुलनात्मक अध्ययन होता है।

इसके अतिरिक्त दोनों रचनाकारों की रचनाओं में समानता की बैटन को लेकर गहरा अध्ययन किया जाता है। कलात्मक एवं भावपरक साम्य, वैषम्य का अनुशीलन कर कार्य कारणों पर विचार किया जाता है। जैसे- ''तुलसीदास एवं संत एकनाथ की भक्ति पद्धतियाँ: एक तुलनात्मक अध्ययन।''

6. दो साहित्यिक दलों के कृतित्व की तुलना:- दो साहित्यिक दलों के रचनाकारों एवं कृतियों की तुलना, एक ही साहित्य के दो भिन्न दलों की कृतिकारों एवं उनकी कृतियों, विचारधाराओं या प्रवृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन, विश्लेषण और व्याख्या प्रस्तुत की जाती है।

7. कृतिकारों अथवा युग-गत साहित्यिक प्रवृत्तियों का वैषम्यमूलक अध्ययन:- तुलनात्मक अनुसंधान के उपयुक्त सभी प्रकार अधिकतर साम्य पर आधारित हैं, पर इस विधि में वैषम्य पर अधिक बल दिया जाता है। इस प्रकार के अनुसंधान में एक ही विषय पर परस्परविरोधी दृष्टिकोण से दो साहित्यकारों द्वारा रचे गए साहित्य का वैषम्य मूलक अध्ययन किया जाता है। उदा. ''हिंदी और मराठी के व्याकरण का तुलनात्मक अध्ययन.'' ''हिंदी और मराठी के कहावतों का तुलनात्मक अध्ययन.''

2.4 अनुसंधान के चरण–

अनुसंधान में वस्तु, तथ्य या विचार सम्बन्धी ऐसे निष्कर्ष प्रस्तुत करने पड़ते हैं, जो उपलब्ध सामग्री के द्वारा प्रमाणित हों. मनन एवं प्रायोगिक कार्य संबंधी इन विभागों को 'अनुसंधान के सोपान' मान सकते हैं. इन सोपानों तथा प्रत्येक सोपान में ध्यान देने योग्य बातों का ज्ञान अनुसंधान को सरल, व्यवस्थित तथा प्रामाणिक बनाने में उपयोगी होगा।

2.4.1 विषय चयन:–

विषय चयन को ही विषय-निर्वाचन भी कहा जाता है। शोध प्रविधि एवं प्रक्रिया तथा शोध-कार्य का प्रथम चरण विषय है। विषय-चयन के बिना शोध-कार्य आरंभ नहीं हो सकता और न शोध-प्रबंध की रूपरेखा बन सकती है। वस्तुतः विषय चयन के उपरांत ही सामग्री संकलन किया जाता है। आत: विषय का चुनाव शोध-प्रक्रिया की अत्यंत महत्त्वपूर्ण सीढ़ी है और यही शोध का केंद्रबिंदू है, जिसपर शोध-प्रबंध का वृत्त आधारित होता है। अतएव शोध प्रविधि तथा शोध-कार्य में विषय-निर्वाचन का महत्व सर्वोपरि कहा जाएगा।

शोध में जो प्रतिमान आवश्यक होते हैं वे इस प्रकार:- 1. अभिरुचि, 2. अनुकूल मनोवृत्ति, 3. लगन (Devotedness), 4. क्षमता, 5. ज्ञानविस्तार, मौलिकता तथा नवीनता, 6. विषय की उपयोगिता तथा महत्व, 7. विषय की सुस्पष्टता, 8. सामग्री की उपलब्धता तथा सुलभता की गुंजाईश, 9. पूर्वज्ञान, 10. पूर्वशोध-आकलन, 11. सुयोग्य निर्देशक आदि।

इस प्रकार यह कहा जाएगा कि अनुसंधान एक धीर-गंभीर, चिंतनपरक, मौलिकताभिमुख, बुद्धिनिष्ठ, वैज्ञानिक प्रक्रिया है। अतएव विषय-चयन में 'चट मंगनी पट ब्याह' की तरह जल्दबाजी नहीं होनी चाहिए, बल्कि सोच-विचार कर उपनिर्दिष्ट प्रतिमानों को आत्मसात कर विषय-चयन की पहल करनी चाहिए।

निष्कर्षत: यह कहा जाएगा की विषय निर्वाचन एवं निर्धारण अनुसंधान-कार्य का बीज है, जिसे सही पद्धति से सुयोग्य भूमिपर आरोपण करने से सुंदर परिणाम के फूल-फल निकल सकते हैं अन्यथा बीज के निर्बल तथा निसत्व और धरती के नाउपजाऊ होने पर सारा परिश्रम व्यर्थ हो सकता है।

2.4.2 **शीर्षक निर्धारण:–**

शीर्षक निर्धारण के लिए शीर्षक-अभिधान तथा शीर्षक-संरचना आदि पर्यायवाची नाम हैं। वस्तुत: शीर्षक-निर्धारण साहित्यिक शोध-विषय का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्राथमिक चरण है।

वास्तव में शीर्षक ही शोध-कार्य की दिशा, गति एवं लक्ष्य का निर्धारक होता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि शीर्षक एक प्रकार से शोध-प्रबंध का पारदर्शक दर्पण है। शीर्षक शोध-विषय के अंतरंग का सही परिचायक होता है। शोध-विषय के शीर्षक का संरचना के दो प्रमुख तत्त्व होते हैं- 1. उपदान 2. आकृति।

शीर्षक का उपादान पदावली है और आकृति से तात्पर्य है व्यक्तित्व। यह व्यक्तित्व बनता है शीर्षक में प्रयुक्त पदावलियों के प्रयोग से. शीर्षक निर्माण में ऐसे ही पद होने चाहिए जो एक सुनिश्चित अर्थ दे सके. अर्थात क्लिष्ट, द्विअर्थक तथा अनेकार्थ पदों के प्रयोग से शोध की दिशा धुंधली हो सकती है। शीर्षक में प्रयुक्त पदावली सरल, सटीक और अभिधापूर्ण होती है। शीर्षक में अत्युक्तिपूर्ण भावुकतापूर्ण, अलंकृत पदावली का प्रयोग अग्राह्य होता है। प्रत्येक शोध-विषय का व्यक्तित्व (शीर्षक) अपने आप में अद्वितीय, अपूर्व, असाधारण, निजत्वपूर्ण, अनोखा और मौलिक होना चाहिए। शीर्षक द्वारा किसी विषय-व्यक्तित्व के समस्त समन्वित गुणों की स्पष्ट, सटीक एवं निर्दोष अभिव्यक्ति ही उसकी सार्थकता कही जाएगी।

२.४.३ प्राक्कल्पना:-

प्राक्कल्पना (Hypothesis) एक तर्कपूर्ण मानसिक सोच है, एक अनुमान है। प्राक्कल्पना अनुसंधान का एक आवश्यक अंग है, जिसके अभाव में शोध-कार्य प्राय: एक उद्देश्यहीन क्रियामात्र हो जाता है। तथ्य एवं कल्पना मिश्रित हाइपोथिसिस प्राक्कल्पना है।

2.4.3.1 **प्राक्कल्पना का महत्व:-**

अनुसंधान में प्राक्कल्पना का महत्व निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

1. प्राक्कल्पना शोध-प्रक्रिया का मार्गदर्शन करती है।
2. प्राक्कल्पना शोध-कर्ता को एक निश्चित निष्कर्ष तक पहुँचने में सहाय्यता देती है।
3. प्राक्कल्पना अनुसंधान के विस्तृत क्षेत्र को सीमित करती है।
4. प्राक्कल्पना के निर्माण से शोध की दिशा स्पष्ट एवं दीप्तिमान हो उठती है।
5. प्राक्कल्पना के कारण शोध में महत्वपूर्ण सामग्री पर ध्यान केंद्रित होता है और अनावश्यक सामुग्री के त्याग की तत्परता आ जाती है।
6. सशक्त एवं सार्थक प्राक्कल्पना के कारण शोध-विषय में अनेक मर्मस्पर्शी अर्थ-व्यंजनाओं का उद्घाटन होता है।
7. प्राक्कल्पना शोध-विषय के स्वरूपात्मक गठन के साथ-साथ उसके निष्कर्षों में भी योग देती है।
8. प्राक्कल्पना वास्तव में शोध-विषय में तीव्रता एवं विशदता के साथ मानव चैतन्य का संसार भी करती है।

इस प्रकार कहा जाएगा कि साहित्यिक अनुसंधान में मानव की चेतन अनुभूतियों की व्यापक भूमिका होने के कारण प्राक्कल्पना का महत्व निर्विवाद.

2.4.4 शोध विषय की रूपरेखा:–

'रूपरेखा' शब्द का सामान्य अर्थ है– 'किसी कल्पित या अनुभूत रूप का रेखाओं द्वारा एक सांकेतिक चित्र तयार करना अथवा किसी विषय या रूप का संभावनापूर्ण, पूर्णकार्य, स्पष्ट, संश्लिष्ट एवं व्यवस्थित रेखांकन को रूपरेखा कहा जाता है।' रूपरेखा के लिये अंग्रेजी में 'Synopsis' शब्द का प्रयोग किया जाता है। रूपरेखा के लिये अंग्रेजी मे स्केच (skech), आउटलाइन (outline) एवं प्लॅन (प्लान) आदि समवर्ती शब्द पाये जाते हैं। रूपरेखा की संतुलित, सुगठीत एवं परिपूर्ण परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है– ''ज्ञान की किसी महत्वपूर्ण एवं नवीन व्याख्या के संभावना से संपन्न विषय या रूप के प्राक्कल्पित, तर्कसंगत, संक्षिप्त, व्यवस्थित, सुस्पष्ट, आधारभूत एवं सांगोपांग रेखांकन शोध–रूपरेखा कहलाती है।'' शोध–विषय के चयन तथा निर्धारण के बाद रूपरेखा का निर्माण करना अवश्यक होता है, क्योंकि इसमें वह आधार निहित रहता है जिसके अंतर्गत शोध–कार्य किया जाता है। सामग्री संकलन के लिए भी रूपरेखा से आधार मिलता है। रूपरेखा तैयार करने से कार्य भी सुगम होता है और अंत में शोध–प्रस्तुती भी तर्कपूर्ण एवं क्रमबद्धता से प्रभावशाली बनती है। दरअसल एक उत्तम रूपरेखा, व्यापक अध्ययन एवं गहन विश्लेषण प्रवृत्ति की परिचारक है और गंभीर शोध–प्रबंध की नींव है। डॉ. राजेंद्र मिश्र जी के मतानुसार, ''रूपरेखा एक प्रकार से शरीर की रीढ की हड्डी है जिस पर सारा शोध–ग्रंथ टीका रहता है।''

2.4.4.1 रूपरेखा की महत्व एवं उपयोगिता:–

शोध–विषय चयन के पश्चात उसके रूप–गठन एवं गुण–विस्तार का मुद्दा उपस्थित होता है और यह कार्य एक व्यवस्थित एवं नियोजित रूपरेखा द्वारा ही संभव होता है। वस्तूत: रूपरेखा विषय से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि विषय के प्रति दृष्टि, उसकी महत्ता पर उससे संभावित निष्कर्ष और उपलब्धि की स्पष्ट झलक हमें रूपरेखा द्वारा ही प्राप्त होती है। निर्वाचित शोध–विषय एक दीर्घायु, श्रेष्ठ एवं सुंदर भवन के निर्माण हेतु चुनी गई भूमि के समान होता है और इस विषय की रूपरेखा, निर्माण होनेवाले उस भवन के लिए तयार सुदृढ नींव के समान होती है। इस प्रकार अनुसंधान कार्य में शोध–कार्य के दिशा–निर्धारण और लक्ष्यपूर्ति तक पहुँचने हेतु रुपरेखा की भूमिका निर्विवाद है।

2.4.4.2 शोध–रूपरेखा के आवश्यक गुण:–

रुपरेखा में विषय की सुस्पष्टता, क्रमबद्धता, पूर्णता, मौलिकता, एवं शोध–उद्देश आदि का होना आवश्यक होता है। जिस प्रकार उत्कृष्ट चित्र वही माना जा सकता है, जिसमें प्रत्येक लघुत्तम अंग–उपांग तो प्रदर्शित हो ही, साथ ही मनोभावों और क्रियाशीलता की भी स्पष्ट झलक मिलती हो। साथ ही एक श्रेष्ठ रूपरेखा में प्रत्येक अध्याय के भेद तथा प्रभेदों का स्पष्ट, पूर्ण एवं क्रमबद्ध अंकल होना चाहिए. एक योग्य रूपरेखा अपनी वैज्ञानिक, रेखांकन क्षमता द्वारा 'गागर में सागर' ही नहीं अपितु 'बिंदू में सिंधु' भर देती है।

संक्षेप में किसी विषय की संक्षिप्त एवं व्यवस्थित ऐसी रेखाकृति जिसको देखने से तुरंत विषय का सांगोपांग का चित्र दृष्टा के मन में उभर आता है, वही एक श्रेष्ठ रूपरेखा होती है।

2.4.4.3 रुपरेखा निर्माण में निम्न बातों की ओर ध्यान देना अत्यावश्यक है:–

1. रुपरेखा विषय के शीर्षक के अनुसार हो।
2. शोध–विषय का अध्याय विभाजन तर्कपूर्ण, सुसंगत एवं अर्थपूर्ण हो।
3. अध्यायों को सार्थक, उचित एवं स्पष्ट शीर्षक देने चाहिए। अध्याय केवल शीर्षक मात्र न होकर विषय–वस्तु के निर्देशक भी होने चाहिए।
4. अध्यायों के शीर्षक संक्षिप्त, सरल और संप्रेषणीय हो, जिससे शोध–प्रबंध की पूर्ण संरचना व्यक्त हो सके।
5. विषय के अनुरूप जो मुख्य बिंदु हैं, सभी के अलग–अलग अध्याय बनाने चाहिए।

अंत में शोध–विषय के निष्कर्ष एवं उपलब्धियों को समग्रता एवं सारांश रूप में रखना चाहिए। प्रमाणीकरण के लिए शोध–ग्रंथ के अंत में सहायक संदर्भ=ग्रंथ सूची देना आवश्यक होता है।

2.4.4.4 रुपरेखा के रूप:–

शोध–ग्रन्थ की रुपरेखा 1. अस्थायी (प्रारम्भिक) और 2. स्थायी (अंतिम) रूप में पाए जाते हैं।

2.4.4.5 रूपरेखा के सोपान:–

शोध–प्रबंध स्थायी हो अथवा अस्थायी इसमें निम्नांकित क्रमबद्ध सीढ़ियों का संयोजन किया जाना चाहिए।

1. भूमिका/प्रस्तावना/प्रास्ताविक/प्राक्कथन
2. विषय–चयन की प्रेरणा
3. पूर्व–शोध आकलन
4. शोध–विषय का महत्व
5. शोध–विषय का उद्देश्य
6. अध्याय विभाजन
7. शोध की नई दिशाएँ। नई संभावनाएँ
8. अनुसंधान की पद्धतियाँ
9. सामग्री संकलन के स्त्रोत

10. परिशिष्ट 1. आधार ग्रंथसूची, 2. सहाय्यक संदर्भ सूची, 3. पत्र-पत्रिकाएँ, 4. विविध कोश, 5. साक्षात्कार-प्रश्नावली.

2.4.5 सामग्री संकलनः-

शोध विषय के चयन के पश्चात सामग्री संकलन की प्रक्रिया आरंभ होती है। सामग्री संकलन एक वैज्ञानिक कार्य है। सामग्री संकलन के पूर्व शोध की रूपरेखा बनाना अधिक वैज्ञानिक नहीं है; क्योंकि केवल विषय-निर्वाचन से ही रूपरेखा निर्माण करने में कई समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं. सामग्री संकलन करने पर चयन किए गए विषय की पूरी स्थिति स्पष्ट हो जाती है। सामग्री संकलन पर विषय की रूपरेखा का निर्माण अत्यंत वैज्ञानिक पद्धति से हो सकता है।

2.4.5.1 सामग्री संकलन की दृष्टि

विचारशून्य, लक्ष्यमुक्त, दिशाहीन सामग्री संकलन व्यर्थ है। सामग्री संकलन की एक दृष्टि होती है। विषय की एकतानता अर्थात सामग्री संकलन विषयानुरूप होना चाहिए. शोध-कर्ता को सामग्री का संकलन तर्कशुद्ध, तथ्यात्मक और वैज्ञानिक दृष्टि से करना चाहिए ताकि उसे शोध-लेखन में अनावश्यक या दिशाहीन भटकना ना पडे. जिस क्रम से अध्याय बनाये गए हैं उसी क्रम से सामग्री संकलन होना आवश्यक है। इसके साथही शोध-कर्ता को शोध-विषय का क्षेत्र, प्रकृति, रूप, सीमा, कालखंड आदि को दृष्टि सम्मुख रखकर तदनुरूप सामग्री संकलन करना चाहिए. इस प्रकार निर्वाचित शोध-विषय के तथ्य एवं सामग्री संकलन परस्पर संश्लिष्ट होते है।

2.4.5.2 शोध सामग्री के रूपः-

सामान्यतः शोध-सामग्री के दो प्रकार होते है 1. मूलभूत अर्थात मौलिक सामग्री 2. सहाय्यक या पोषक सामग्री मूलभूत सामग्री के अंतर्गत वे आधार सामग्रियाँ आती हैं, जिनके बिना शोध कार्य संभव नहीं होता है। इसे आधारभूत सामग्री कहा जाता है। उदा. प्रेमचंद के उपन्यासों का विषय-चयन करने वाले शोधार्थी के पास प्रेमचंद के सारे उपन्यास मूलभूत सामग्री के रूप मे संकलित होने चाहिए सहाय्यक सामग्री वह है, जिसका उपयोग शोध-कर्ता अपने निष्कर्ष स्थापना की पुष्टि के लिये तर्क और प्रमाण आदि के रूप में प्रस्तुत करता है।

2.4.5.3 सामग्री संकलन के स्त्रोतः-

सामग्री संकलन के स्त्रोत सामान्यतः दोन प्रकार के होते हैं- 1. मौलिक 2. अनुदित. अनुसंधाता को प्रमुख रूप से मौलिक स्त्रोतों पर ध्यान देना चाहिए। सामग्री संकलन के सामान्यत: निम्नांकित स्त्रोत पाये जाते हैं-

1. प्रकाशित ग्रंथ
2. अप्रकाशित हस्तलिखित ग्रंथ (शीला, ताडपत्र, कागज आदि पर अंकित) ३. प्रतिवेदन

4. संस्मरण
5. डायरी
6. आत्मकथा
7. यात्रावर्णन
8. साहित्यकारों का पत्राचार
9. गजेटियर
10. साहित्यकारों से साक्षात्कार तथा भेंट वार्ता
11. ग्रंथालय
12. संस्था
13. पत्र–पत्रिकाएँ
14. व्यक्ति–विशेष
15. विशेषज्ञ
16. संगोष्ठी
17. दूरसंचार माध्यम (रेडिओ, दूरदर्शन, अंतर्जाल, अख़बार, हस्तपत्र, हस्त–पुस्तिका)
18. पोस्टर (भित्तिचित्र)
19. विविध कोश (ज्ञानकोश, विश्वकोश, संस्कृतिकोश, भाषाविज्ञान कोश, शब्दकोश, मानवीकी कोश, परिभाषा कोश)

2.4.5.4 सामग्री संकलन के स्त्रोतों का वर्गीकरण:–

सामग्री संकलन के स्त्रोतों का यदि वर्गीकरण करना हो तो हम तीन भागों में वर्गीकृत कर सकते हैं।

2.4.5.4.1 प्राथमिक कोटि के स्त्रोत:–

इसमें वे मूल विवेच्य ग्रंथ आते हैं जिनके संदर्भ में साहित्यिक शोध का विषय चयन किया गया हो अर्थात साहित्यकार विशेष, युग–विशेष, प्रवृत्ति विशेष, विधा–विशेष, काल–विशेष या वाद–विशेष का अध्ययन करते हुए उक्त मुक्त साहित्यकार तथा युग; वाद, प्रवृत्ति विशेष के दायरे में आने वाली सभी कृतियाँ प्राथमिक कोटी के अंतर्गत आ जाती है। उदाहरण के लिए प्रयोगवादी कवि अज्ञेय के समग्र साहित्य का अनुशीलन करते समय उनकी सभी रचनाएँ– कहानी, उपन्यास, कविता आदि विवेच्य ग्रंथ होने के कारण प्राथमिक कोटी के स्त्रोत में समाविष्ट होंगे। शोध–कर्ता को सामग्री–संकलन का आरंभ इसी स्त्रोत से करना चाहिए।

2.4.5.4.2 मध्यम कोटि के स्त्रोत:–

मध्यम कोटि के स्त्रोत के अंतर्गत शोध विषय से संबंधित समीक्षात्मक ग्रंथों का समावेश किया जाता है अर्थात ये समीक्षा ग्रंथ मूल शोध विषय और उसके अनुशीलन के बीच के अंतर को काटने का कार्य करते हैं। इन्हें सहाय्यक ग्रंथ भी कहा जाता है। मध्यम कोटि के अंतर्गत समीक्षा ग्रंथों के अतिरिक्त विविध कोश–ज्ञानकोश, विश्वकोश, साहित्यकोश, पुरातत्व, पत्र–पत्रिकाएँ एवं विशेषांक आदि भी सम्मिलित हैं। इसके अध्ययन से कभी–कभी नई उद्धावनाओं के कतिपय बिंदु उभरते रहते हैं।

2.4.5.4.3 सहाय्यक कोटि के स्त्रोत:–

इसके अंतर्गत सरकारी गजेटियर, सरकारी तथा अर्धसरकारी प्रतिवेदन, रिपोर्ताज सम्मिलित हैं। ये सारी चीजें राष्ट्रीय पुस्तकालयों में तथा हिंदी सेवा संस्थाओं तथा प्राच्य शोध संस्थाओं आदि में उपलब्ध हो सकती है। सहाय्यक स्त्रोतों में सबसे बड़ी उपलब्धि प्राचीन हस्तलिखित पांडुलिपियाँ होती हैं।

2.4.5.5 सामग्री वर्गीकरण:–

वर्गीकरण शोध–प्रक्रिया का अत्यंत महत्त्वपूर्ण अंग है। शोध–सामग्री संकलित हो जाने पर उसे व्यवस्थित रीति से संयोजित करने की आवश्यकता होती है और यह कार्य वर्गीकरण द्वारा किया जाता है। तथ्यों को सदृश्य या संबंध की दृष्टि से वर्गों में छाँटने का कार्य वर्गीकरण कहलाता है।

वस्तुत: वर्गीकरण यह वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा वस्तुओं विषयों का उनके वस्तुमूलक (रूपात्मक) या गुणात्मक लक्षणों के आधार पर कुछ निश्चित वर्गों में रखा जाता है। इस प्रकार के वर्गीकरण में 'रूप' नहीं बल्कि 'गुण' प्रधान होते हैं। वर्गीकरण में समान गुणोंवाली वस्तुएँ उनकी बहिरंग (रूपगत) भिन्नता के बावजूद एकत्रित की जाती है। इस प्रकार वर्गीकरण बिखरी हुई वस्तुओं के समान गुणों के आधार पर एकसाथ रखने की प्रक्रिया है अत: यह कहा जाएगा की वर्गीकरण वस्तुओं या विषयों की गुणात्मक परख है। तथ्य संकलन के पश्चात ही वास्तविक, प्रत्यक्ष, पूर्ण एवं वैज्ञानिक वर्गीकरण संभव होता है। प्रसिद्ध कोशकार वेबस्टर के मतानुसार, ''सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्तरगत समरूपता तथा अभिरुचि एवं जीवन पद्धति के आधार पर अथवा उच्च गुण एवं योग्यता के आधार पर वर्ग बनते हैं। इस प्रकार गुण, मात्रा, क्षमता एवं परिस्थिति के आधार पर वर्ग बनते हैं।'' इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि तथ्यों की स्वतंत्र पहचान ही वर्ग निर्माण के मूल में विद्यमान सिद्धांत है। सारांशत: यह कहा जाएगा कि शोध–प्रबंध को व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक पद्धति से शोध–प्रबंध लिखने में वर्गीकरण से सहायता मिलती है। समान तथ्यों के आधार पर विश्लेषण तथा निष्कर्ष का कार्य आसान हो जाता है। विषय–निहाय वर्गीकरण से चिंतन तथा निष्कर्ष स्थापना में स्पष्टता आ जाती है। इस प्रकार वर्गीकरण शोध–प्रक्रिया का अविभाज्य अंग है।

2.4.5.6 सामग्री का विश्लेषण–संश्लेषण:–

शोध–प्रक्रिया का सबसे विस्तृत एवं मुख्य अंग 'विश्लेषण' है। शोध– सामग्री के संचयन के पश्चात अगला कार्य विश्लेषण का होता है। शोध में अध्ययन की जो बौद्धिक प्रक्रिया है, वही विश्लेषण है।

'विश्लेषण' का सामान्य अर्थ है- पृथक करना अर्थात किसी चीज के अंगों को अलग करना. दूसरे शब्दों में कहा जाएगा कि किसी वस्तु की छान-बिन करना विश्लेषण है। विषय से संबंधित आकड़ों (Data) को एकत्रित करना फिर सूचनाओं को व्यवस्थित करना, आंकड़ों को वर्गीकृत करके उनसे प्राप्त सभी सूचनाओं का विश्लेषण किया जाता है।

विश्लेषण के बिना शोध में वैज्ञानिकता नहीं आती है। विश्लेषण का महत्व यह है कि सामग्री का विश्लेषण के बिना निष्कर्षों तक नहीं पहुँचा जा सकता। वस्तुतः शोध की श्रेष्ठता तथा कनिष्ठता की कसौटी तथ्यों या सामग्री का संकलन नहीं, अपितु विश्लेषण पर आधारित निष्कर्ष होते हैं। सुधि शोधार्थी सत्य-संस्थापन के साधन के रूप में ही तथ्यों को ग्रहण करता है और विश्लेषण द्वारा ही वह तथ्यों की निर्मिति के कारणों की तलाश करता है और फिर एक विशिष्ट सत्य उद्घाटित करता है, निष्कर्षों की स्थापना करता है।

विश्लेषण के वस्तुनिष्ठता, स्पष्टता तथा तर्कसंगतता यह महत्वपूर्ण गुण हैं. अतएव पूर्णतया वस्तुनिष्ठ एवं तर्कसंगत विश्लेषण के द्वारा शोधक को शोध-विषय या समस्या के सभी अंगो-उपांगो के स्थान, महत्व एवं गुणों का पूरा ज्ञान हो जाता है। वह सभी अंगों के मिश्रण एवं पृथक्करण की प्रक्रिया के द्वारा उनके परिणामों से भी अवगत हो जाता है।

तथ्य-विश्लेषण का अर्थ सामान्य परिगणन मात्र नहीं है। इस विश्लेषण-प्रक्रिया में तथ्य-संचयन के समय निरीक्षण, विषयानुरूप तथ्य का ग्रहण, असंबद्ध एवं अनुपयोगी तथ्यों का त्याग, लक्ष्याभिमुख परिकल्पना की पृष्ठभूमि निर्मित प्रत्येक तथ्य के मूलार्थ तथा संकेतार्थ का सुनिश्चिय, कार्यकारण की श्रृंखला में तथ्यों की आबद्धता और अनेक परिकल्पनाओं में से निष्कर्ष तक पहुँचने वाली परिकल्पना के निहितार्थ की पकड़ का कार्य विश्लेषण के द्वारा ही संपन्न होता है। तथ्य प्रयोग की विशिष्ट परिकल्पना से प्रस्तुत निष्कर्ष की सच्चाई को परखने या उसे सत्यापित करने का कार्य भी विश्लेषण द्वारा ही होता है।

तथ्य-विश्लेषण का कार्य तो तथ्य-संग्रह के समय से ही प्रारंभ होता है। विभिन्न परिस्थितियों, अवसरों और स्थानों से संश्लिष्ट तथ्यों में ऐसे तथ्य या तथ्यों का चयन किया जाता है, जिसे प्रयोग योग्य और शोध-विषय से संबदध एवं उसके अनुरूप समझा जाता है। इन संश्लिष्ट तथ्यों में से अनुपयोगी तथ्यों का परित्याग किया जाता है। इस प्रकार विश्लेषण की प्रक्रिया में संश्लिष्ट तथ्यों को तोडकर विषय से संबदध तथ्यों का ग्रहण और असंबदध तथ्यों का त्याग विश्लेषण का प्रथम चरण है।

तथ्य विश्लेषण की आवश्यकता इस समय पड़ती है जब एक प्रकरण विशेष के लिए वर्गीकरण के उपरांत गृहीत तथ्यों को विविध उपशीर्षकों के अंतर्गत विभाजित किया जाता है। वह ज्ञान, जंगल में नाचने वाले मयूर के समान होता है। अत: व्याख्या में जितना महत्व विषय के पूर्ण, स्पष्ट एवं व्यवस्थित ज्ञान का हैं, उतना ही उसके प्रतिपादन का भी। प्रतिपादन क्षमता का साहित्यिक शोध में विशेष महत्त्व है। भाषाशैली शोध में सशक्त साधन माना गया है, अत: इन सशक्त साधनों का उपयोग उसी सीमा तक करना चाहिए, जहाँ तक वे मूल स्वरूप को उजागर करने में सहाय्यक हों। अत: योग्य शोध-कर्ता में अभिव्यक्ति की पर्याप्त क्षमता होनी चाहिए। उसमें शब्द भंडार की अगाधता, वाक्यरचना का नैपुण्य तथा प्रवाहमयी किंतु संयत शैली

की दक्षता परम वांछनीय है। शोध-विषय की शोधक के मन में जो पूर्ण एवं स्पष्ट आकृति बन चुकी है, उसे उसी रूप में प्रभावाक ढंग से प्रगटित करने में ही शोध की पूर्णता है।

संश्लेषण :-

तथ्यों के विश्लेषण के पश्चात् उनका संश्लेषण अभिष्ट है। विश्लेषण की तरह संश्लेषण भी शोध-प्रक्रिया का एक मुख्य अंग है। 'संश्लेषण' शब्द से तात्पर्य है मेल, मिलान, मिश्रण आदि। 'संश्लेषण' शब्द का पारिभाषिक अर्थ है 'संलग्न करना' या 'संबद्ध करना'। इस प्रकार विभिन्न कारणों या परिणामों पर विचार करके संबंध दिखलाना 'संश्लेषण' कहलाता है। सामग्री विश्लेषण के साथ-साथ सामग्री के अंग-प्रत्यांगों का निर्णय और कार्यकारण संबंधों का निर्धारण संश्लेषण द्वारा किया जाता है। तथ्यों को क्रमबद्ध रूप देना और तर्कसंगत रीति से उन्हें प्रस्तुत करना है संश्लेषण होता है।

यह कार्य तथ्यों के विश्लेषण के उपरांत ही संभव होता है। तथ्य-संश्लेषण का विषय-प्रतिपादन में सर्वाधिक महत्त्व हैं। क्योंकि यह तथ्य-संश्लेषण ही विषय-प्रतिपादन को मूर्त करने के लिए ढाँचे का कार्य संपादित करता है। संश्लेषण की पूर्णता एवं सर्वांगीणता के लिए आवश्यक है कि उसमें अपेक्षित का त्याग और अनतेक्षित का समावेश न हो।

2.4.5.7 निष्कर्ष स्थापना:-

शोध प्रक्रिया का अंतिम सोपान निष्कर्ष है। निष्कर्ष शोध-साधना की अंतिम फल-निष्पत्ति का प्रकाशन है। शोध का लक्ष्य विषयगत चरम निष्कर्ष को उजागर करना है, यही उसका प्रमेय है। शोध-प्रबंध के अंतिम अध्याय 'उपसंहार' में शोध निष्कर्ष की प्रतिष्ठा की जाती है। निष्कर्ष अभी तक की मान्यता पर एक नया आलोक उंडेलता है।

शोध कार्य के अंत में किसी ना किसी निष्कर्ष एवं निर्णय पर पहुँचा जाता है। इससे ज्ञान के क्षेत्र में कितनी वृद्धि हुई और जनमानस को बुद्धि, भाव तथा जीवन को विकसित करने में कितनी सहाय्यता मिलेगी; इन प्रश्नों के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक एवं मनोवैज्ञानिक परिवेशों की पृष्ठभूमि के साथ विषय का अध्ययन करने पर सही निष्कर्षों की अधिक संभावना बनती है। मौलिक निष्कर्ष के अभाव में किसी शोध-प्रबंध को अपूर्ण ही नहीं, सारहीन एवं व्यर्थ भी कहा जाएगा। अनुसंधाता को उनका निष्कर्ष तथा तत्व-सार देना होता है और तत्पश्चात उस विषय की उपयोगिता, महत्ता, विशिष्टता, वैज्ञानिकता एवं समाज सापेक्षता आदि के आधार पर निष्पक्ष, वस्तुमूलक, तर्कसंगत एवं सहज निर्णय देना होता है। शोध में वस्तुमूलक एवं ज्ञानमूलक ठोस निर्णयों की महत्ता होती है। किसी अनुसंधान की महत्ता या लघुता की कसोटी तथ्य या सामग्री का संकलन नहीं अपितु उनके विवेचन-विश्लेषण के आधार पर प्रस्तुत निष्कर्ष ही हैं।

2.4.5.7.1 निष्कर्ष प्रस्तुति की शर्तें:–

ज्ञानवर्धक–पूरक एवं मौलिक तथा औचित्यपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुति हेतु निम्नलिखित शर्तों की ओर ध्यान देना आवश्यक होता है।

1. प्रमाण सामग्री होने पर ही निष्कर्ष प्रस्तुत करना चाहिए।

2. प्रमाण–सामग्री प्रासंगिक और औचित्यपूर्ण होने पर निष्कर्ष किया जाना चाहिए।

3. निष्कर्ष पक्षपातरहित हो।

4. निष्कर्ष निर्वैयक्तिक और वस्तुनिष्ठ हो।

सारांशत: शोध के निष्कर्ष तभी महत्वपूर्ण हो सकते हैं, जब वे नए तथ्यों, नए विचारों तथा मौलिक सिद्धांतों की स्थापना कर सके। निष्कर्ष ज्ञानोपलब्धि संपन्न होने चाहिए। उचित एवं पर्याप्त प्रमाणभूत सामग्री का संकलन, निरीक्षण–परीक्षण, विश्लेषण और विशद अध्ययन करने के बाद ही निष्कर्ष प्रस्तुति होनी चाहिए।

2.4.5.6 सामग्री संचयन की पधातियाँ:–

साहित्य जैसे विषय में विभिन्न स्त्रोतों से विशाल सामग्री संचयन की आवश्यकता होती है। इस सामग्री संचयन की अनेक पद्धतियाँ हैं जैसे–

2.4.5.6.1 अध्ययन पद्धति:–

अनेक प्रकार के शोधों में कई तरह के ग्रंथों, दस्तावेजों तथा अन्य लिखित सामग्री की आवश्यकता होती है। ये सामग्री निम्न प्रकार की होती हैं–

(अ) दस्तावेजी सामग्री:– सरकारी, गैर सरकारी, व्यक्तियों के पत्रों तथा प्रतिवेदन में वास्तविक घटनाओं और अन्य तथ्यों से संबंधित सामग्री मिलती है, जिनका प्रामाणिकता की दृष्टि से विशेष महत्त्व है।

(आ) ग्रंथ समग्री:– सर्वथा नविन तथ्यों की खोज तथा पांडुलिपियों पर आधारित विषयों के लिए सामग्री मूल ग्रंथ, आधारभूत सैद्धांतिक ग्रंथ, टीकाएँ, आलोचनाएँ शोध प्रबंध, कोश आदि से प्राप्त कर सकता है जो प्राचीन ग्रंथालयों, व्यक्तिगत संग्रहालयों, देवस्थानों, पुराने खंडहरों में उपलब्ध हैं।

(इ) आनुकालिक प्रकाशन :– शोध–पत्रिकाएँ, वार्षिक रिपोर्ट, बुलेटिन निर्देशन ग्रंथ, संगोष्ठियों, अधिवेशनों में प्रस्तुत निबंध या उनके संग्रहों से भी शोध सामग्री इकटठा की जा सकती है। यदि शोध का विषय प्राप्त सामग्री की नई व्याख्या अर्थात तथ्याख्यानपरक है, तो इनमें प्राप्त शोध सामग्री का विशेष महत्व है।

(ई) सूचियाँ :– विशेष विषयों की ग्रंथ सूचियाँ, शोध ग्रंथों में दी गयी सहायक ग्रंथ सूचियाँ तथा प्रकाशकों की प्रकाशन सूचियाँ आदि शोधार्थी के लिए विशेष उपयोगी हैं। गिरिराज शरण अग्रवाल द्वारा

सम्पादित 'शोध संदर्भ' शोधार्थियों के लिए अत्यंत उपयोगी है। प्रत्येक विषय पर निकलने वाले नए ग्रंथों और मुख्य लेखों की सूची प्रतिवर्ष प्रकाशित करने की परिपाटी विदेशों में हैं, पर भारत प्राय: नहीं हैं. इसके आलावा माइको फिल्म, टेप, कैसेट तथा सी.डी.आदि से भी सामग्री प्राप्त की जा सकती है।

2.4.5.6.2 साक्षात्कार पद्धति:–

इतिहास के विस्तृत तथ्य, भाषा की प्रकृति तथा वर्तमान समस्याओं पर विशिष्ट व्यक्तियों के विचारों को जानने का साधन सम्बन्धित व्यक्तियों का साक्षात्कार है। समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, शिक्षा–विज्ञान, सामाजिक स्वास्थ्य आदि से सम्बन्धित शोध विषयों में साक्षात्कार पद्धति विशेष अपेक्षित है। इस पद्धति से केवल विषय ही नहीं, अपितु विषय से सम्बन्धित व्यक्ति को भी जाना जा सकता है। जिससे विषय और अधिक गहराई से समझने में सहायता मिलती है। साथ ही विषय के प्रति अभिरुचि बढ़ती है और कार्य में आनन्द प्राप्त होता है।

2.4.5.6.2.1 साक्षात्कार करने की रीति:–

जिस व्यक्ति से साक्षात्कार करना हो उसे अपने आने की पूर्व सूचना देनी चाहिए। उन्हें साक्षात्कार के उद्देश्य से अवगत करने के साथ–साथ अपने प्रमुख प्रश्नों की प्रति उसे भेज देनी चाहिए, जिससे वे अपने प्रश्नों का उत्तर तैयार कर सकें। साक्षात्कार के दौरान पूछे गये प्रश्नों का उत्तर स्मरण रखना चाहिए या कागज में लिख लेना चाहिए और उसे लेखक के सामने पढ़कर हस्ताक्षर ले लेना चाहिए या फिर संलाप टेप में भर लिया जाए तो वह शत–प्रतिशत प्रामाणिक होगा। यह संपूर्ण साक्षात्कार योजनाबद्ध होना चाहिए। तभी शोधकर्ता को अपने कार्य में सफलता मिलेगी। सर्वेक्षण साक्षात्कार का उदाहरण 'अवारा मसीहा'–जीवनीपरक उपन्यास है।

यहाँ नमूने के रूप में एक लेखक के सृजन की भूमिका तथा सृजन सम्बन्धी मान्यताओं के अध्ययन के लिए उपयुक्त साक्षात्कार प्रश्नावली प्रस्तुत की जाती है।

साक्षात्कार प्रश्नावली में सर्वप्रथम विषय लिखकर व्यक्तिगत विवरण, लेखन कार्य का प्रारंभ कब हुआ, किसने प्रेरणा दी या कोई पूर्वज या परिवार का सदस्य साहित्यकार था, इसके अलावा उनकी रुचियाँ, प्रकाशित कृति का विवरण, लेखन विधा, उद्देश आदि के विषय में प्रश्न पूछकर उसका उत्तर अपने कागज में नोट कर लेना चाहिए।

2.4.5.6.3 प्रश्नावली पद्धति:–

प्रश्नावली पद्धति में लिखित या मुद्रित प्रश्नावली को ही सामग्री दाता के हाथ में देकर उसमें लिखित रूप में उत्तर प्राप्त किये जाते हैं। किसी प्रदेश के लोगों की आर्थिक दशा या जीवन स्तर के अध्ययन में या गाँव से शहर में बसे लोगों के प्रवास कारणों या जीवन स्थितियों के अध्ययन में, शोधकर्ता हजारों लोगों के पास जाकर सामग्री प्राप्त नहीं कर सकता। ऐसे में पहले तैयार करके मुद्रित की हुई प्रश्नावली व्यक्तियों के पास स्वयं या दूसरों के द्वारा पहुंचाकर प्रश्नों के उत्तर लिखित रूप में प्राप्त किए जाते हैं तथा ये प्रश्न शोध

विषय के स्वरूप और उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए भी, जिन व्यक्तियों से सामग्रीसंचय करना है, उनके बौध्दिक, मानसिक और शैक्षिक स्तर को तथा ज्ञान के स्तर को ध्यान में रखकर तैयार किया जाना चाहिए. प्रश्नावली के प्रश्न क्रम में, स्पष्ट, सरल एवं सीधे होने चाहिए।

साधारणत: किसी समूह में प्रश्नावली द्वारा सामग्री संचय करने पर कम से कम 50 प्रतिशत उत्तर मिले तभी कार्य को सफल माना जाएगा। इससे कम उत्तर देनेवाले उदासीन समूहों से अन्य उपायों से सामग्री-संचय करना उचित होगा। यहाँ एक प्रश्नावली का नमूना प्रस्तुत किया जा रहा है।

यदि विषय दिल्ली नगर के प्रांत में प्रवास करने वाले जनों का सर्वेक्षण हो तो प्रश्नावली इस प्रकार होनी चाहिए. सर्वप्रथम नाम, प्रेक्षक, शिक्षा, अवस्था, आमदनी पूछकर किस प्रांत से आये हो, किस वर्ग से और क्यों आये हो. निवास कैसा है, नौकरी कैसी, निवास स्थान में सारी सुविधाएँ प्राप्त हैं और सड़क कैसी तथा मुहल्ले के निवासी कैसे है आदि प्रश्नों के अलावा अनुसंधान के अनुसार इस प्रश्नावली में अन्य प्रश्न भी पूछे जा सकते है।

2.4.5.6.4 सर्वेक्षण पद्धती:-

सर्वेक्षण का तात्पर्य 'सब कुछ देखना है' अर्थात जिस विषय को आधार बनाकर सर्वेक्षण किया जा रहा है। विषय पर उपलब्ध सामग्री को देखना ही सर्वेक्षण है। सर्वेक्षण कार्य में प्रकाशित सामग्री के साथ-साथ अप्रकाशित अर्थात ऐसी सामग्री को प्रकाश में लाना जिसे पुस्तकों में जगह नहीं मिली है। इसके अलावा बिखरे हुए तथ्यों को समेटना और क्रम देना और उन तथ्यों के आधार पर व्यक्ति को पहचान बढ़ाना भी सर्वेक्षण का ही काम है। सर्वेक्षण का उद्देश्य किसी एक व्यक्ति या वस्तू का अध्ययन न करके विशिष्ट सामान्य तत्वों के आधार पर व्यक्तियों या वस्तुओं के समूहों का अध्ययन है। सामाजिक महत्त्व रखने वाले या अनेक विषयों के अध्ययन के लिए सर्वेक्षण पद्धति उपयोगी है।

किसी प्रदेश के विभिन्न वर्गों के लोगों की आर्थिक दशा, किसी कालावधि में प्रदेश में विकास योजनाओं के परिणाम, नशीली चीजों के उपयोग की व्यापकता एवं परिणाम, किसी भाषा की बोलियों का प्रचलन तथा साथ ही शिक्षा, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान आदि में व्यापक रूप से इस पद्धति का उपयोग होता है।

संग्रहणीय सामग्री तथा अध्येय सामग्री के आधार पर सर्वेक्षण दो प्रकार के होते है। (1) वस्तुनिष्ठ सर्वेक्षण, (2) जनमनोवृत्ति।

वस्तुनिष्ठ सर्वेक्षण में तत्वों का प्रचलन या विवरण की गणना की जाती है। जिन पर जनमनोवृत्ति का प्रभाव नहीं पड़ता, जैसे किसी प्रदेश की जनता की साक्षरता का सर्वेक्षण आदि।

जनमनोवृत्ति-परक सर्वेक्षण में राजनीतिक दलों या विचारों के प्रति जन दृष्टि, परिवार-आयोजन के संबंध में जनमत, साक्षरता प्रसार में जन-मनोवृत्ति का सर्वेक्षण आदि।

2.4.5.6.5 प्रेक्षण पद्धति:-

प्रेक्षण पद्धति को चक्षु पद्धति भी कहा जा सकता है। क्योंकि इसका माध्यम 'चक्षु' हैं। इस पद्धति में शोधार्थी को समाज के अनुसंधेय अंग के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित करना पड़ता है। समाजशास्त्र, भूतत्वविज्ञान, व्यावहारिक भाषाविज्ञान, लोक-साहित्य आदि से संबंध विषयों में शोध के लिए इस पद्धति का प्रयोग किया जाता है।

प्रेक्षण दो प्रकार के होते हैं- 1. अनियंत्रित 2. नियंत्रित एक में तो शोधार्थी समाज के बीच रहकर क्रिया-कलाप का समभोगी बनता है। भारत में अमेरिका के कई समाजशास्त्र शोधकर्ता भारतीय परिवारों में महीनों रुककर उनके सामाजिक जीवन के प्रत्येक अंग से परिचित होकर अपने विषय की प्रमाणिक सामग्री इकठ्ठा करते हैं। दूसरे प्रकार में शोधार्थी अध्येय समाज के साथ सम्पर्क तो स्थापित करता है, पर कार्यकलाप में सहभागी नहीं होता। वह समाज के व्यक्तियों का तटस्थ भाव से अध्ययन करता है। जीवित भाषा के अध्ययन में प्रेक्षण पद्धति का अच्छा उपयोग होता है।

2.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :-

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए.

   1. अनुसंधान के मूलतत्व का प्रथम चरण........ है।

      1. शीर्षक निर्धारण 2. विषय-चयन 3. रुपरेखा निर्माण 4. सामग्री संकलन

   2. अनुसंधान और आलोचना .... विधाएं है।

      1. राजनीतिक 2. साहित्यिक 3. सांस्कृतिक 4. आर्थिक

   3. ''शोध मूलत: कठोर श्रम पर आधारित प्रामाणिक तथ्यान्वेषण और अर्थान्वेषण है।'' यह परिभाषा .... की है।

      1. स्वीट 2. नगेन्द्र 3. पी.एम. कुक 4. डब्लू. एस.मनरॉय

   4. वर्णनात्मक पद्धति अंग्रेजी .... का हिंदी रूपांतर है।

      1. Narrative method 2. Historical method

      3. Comparative method 4. Assessment method

   5. .... के अंतर्गत पौराणिक तथ्यों का अनुसंधान होता है।

      1. तुलनात्मक पद्धति 2. ऐतिहासिक पद्धति

      3. वर्णात्मक पद्धति 4. विवेचनात्मक पद्धति

   6. .... में दो या दो से अधिक आयामों की उपस्थिति आवश्यक होती है।

1. तुलनात्मक शोध पद्धति 2. ऐतिहासिक शोध पद्धति

3. वर्णात्मक शोध पद्धति 4. विवेचनात्मक शोध पद्धति

7. .... ही शोध-कार्य की दिशा, गति एवं लक्ष्य का निर्धारक होता है।

1. विषय 2. शीर्षक 3. रुपरेखा 4. सामग्री

8. रुपरेखा के लिए अंग्रेजी में .... शब्द का प्रयोग किया जाता है।

1. study 2. research 3. sruvey 4. synopsis

9. सामग्री संकलन के स्त्रोत सामान्यत: ...... प्रकार के होते है।

1. एक 2. दो 3. तीन 4. चार

10. लेखक की मूल रचनाएँ सामग्री संकलन के .... कोटि के स्त्रोत के अंतर्गत आती है।

1. प्रथम 2. मध्यम 3. दुय्यम 4. सहायक

11. शोध प्रक्रिया का अंतिम सोपान .... है।

1. विषय चयन 2. प्रबंध लेखन 3. निष्कर्ष 4. सामग्री संकलन

12. .... का तात्पर्य 'सब कुछ देखना है'.

1. प्रश्नावली 2. साक्षात्कार 3. प्रेक्षण 4. सर्वेक्षण

2. उचित मिलन कीजिए.

1. अ. तुलनात्मक पद्धति — 1. शास्त्रीय विवेचन

ब. ऐतिहासिक पद्धति — 2. दो युगों की तुलना

क. वर्णात्मक पद्धति — 3. पौराणिक तथ्यों का शोध

पर्याय 1. अ-2, ब-3, क-1 2. अ-3, ब-2, क-1

3. अ-1, ब-3, क-2 4. अ-3, ब-2, क-1

2. अ. प्राथमिक कोटि के स्त्रोत — 1. समीक्षात्मक ग्रंथ

ब. मध्यम कोटि के स्त्रोत — 2. मूल विवेच्य ग्रंथ

क. सहायक कोटि के स्त्रोत — 3. रिपोर्ताज

पर्याय 1. अ- 2, ब- 3, क-1 2. अ-3, ब-2, क-1

3. अ-1, ब- 3, क-2 4. अ-2, ब-1, क-3

3. सही गलत की पहचान कीजिए.

1.

कथन 1. शोध प्रविधि एवं प्रक्रिया तथा शोध-कार्य का प्रथम चरण विषय-चयन है।

कथन 2. शोध प्रक्रिया का अंतिम चरण निष्कर्ष है।

पर्याय 1. दोनों सही है।

2. दोनों गलत है।

3. कथन 1 सही और कथन दो गलत है।

4. कथन 1. गलत और कथन दो सही है।

2.

कथन 1. साक्षात्कार पद्धति एवं प्रश्नावली पद्धति यह अनुसंधान की पद्धतियाँ है।

कथन 2. वर्णनात्मक पद्धति एवं तुलनात्मक पद्धति सामग्री संकलन की पद्धतियाँ है।

पर्याय-1. दोनों सही है।

2. दोनों गलत है।

3. कथन 1 सही और कथन दो गलत है।

4. कथन 1. गलत और कथन दो सही है।

3.

कथन 1. साहित्यकार की मूल रचनाएँ प्राथमिक कोटि के स्त्रोत में आती है।

कथन 2. मध्यम कोटि के स्त्रोत के अंतर्गत समीक्षा ग्रंथों का समावेश नहीं होता.

पर्याय-1. दोनों सही है।

2. दोनों गलत है।

3. कथन 1 सही और कथन दो गलत है।

4. कथन 1. गलत और कथन दो सही है।

4.

कथन 1. शोध-कार्य के दिशा-निर्धारण और लक्ष्यपूर्ति तक पहुँचने हेतु रुपरेखा की भूमिका निर्विवाद नहीं होती है।

कथन 2. प्राक्कल्पना एक तर्कपूर्ण मानसिक सोच है, एक अनुमान है।

पर्याय-1. दोनों सही है।

2. दोनों गलत है।

3. कथन 1 सही और कथन दो गलत है।

4. कथन 1. गलत और कथन दो सही है।

2.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

अनुसंधान : शोध, खोज, अन्वेषण,

तथ्यान्वेषण : मीमांसा, खोजबीन, पूछताछ, विचार

प्राक्कल्पना : एक धारणा, एक विचार है, जो तर्क के लिए प्रस्तावित किया गया है जिससे कि यह परीक्षण किया जा सके कि क्या तर्क सत्य हो सकता है। पूर्वानुमान, आकलन, अंदाजा

सर्वेक्षण : परिदर्शन, आधिकारिक निरीक्षण.

साक्षात्कार : प्रत्यक्ष भेंट, मुलाकात.

प्रेक्षण : देखने की क्रिया, नजारा, दृश्य.

निष्कर्ष : किसी चीज का अंतिम भाग, उपसंहार, समाप्ति, परिणाम, समापन.

स्त्रोत : भंडार, आगार, उद्भव, धारा, झरना,

कोटि : वर्ग, समूह, समुदाय, कक्षा, दर्जा होना.

2.6 स्वयं अध्ययन के प्रश्नों के उत्तर.

उत्तर 1) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. विषय-चयन 2. साहित्यिक 3. पी.एम.कुक 4. Narrtive Method

5. एतिहासिक पद्धति 6. तुलनात्मक 7. शीर्षक 8. Synopsis

9. दो 10. प्रथम 11. निष्कर्ष 12. सर्वेक्षण

2. उचित मिलान

1. पर्याय- 1 2. पर्याय- 4

3. सही गलत

1. पर्याय 1 दोनों सही

2. पर्याय- 2 दोनों गलत

3. पर्याय- 3 कथन 1 सही और कथन 2 गलत

4. पर्याय- 4 कथन 1 गलत और कथन 2 सही

2.7 सारांश :-

1. अनुसंधान के मूल तत्व का आधार उसकी प्रक्रिया में निहित वे सारे तत्व हैं जिनसे अनुसंधान आरंभ से अंत तक जुड़ा रहता है। अनुसंधान के मूल तत्वों में प्रमुख रूप से सर्वप्रथम विषय का चयन आवश्यक होता है उसके उपरांत रुपरेखा निर्माण, सामग्री संकलन, शोध प्रबंध लेखन और व्यवस्थापन इन सभी तत्वों से मिलकर अनुसंधान की संरचना होती है। जिसके लिए अन्वेषक और निर्देशक आवश्यक है।

2. **शोध और आलोचन :-** चराचर प्रकृति के अंत: बाह्य नाना रहस्यों के प्रति मानव की जिज्ञासा है। अपनी इसी जिज्ञासा की पूर्ति के लिए उसने ज्ञान-विज्ञान के नये द्वारों- मार्गों का अविष्कार किया। मानव की इसी सहज जिज्ञासा का विकसित रूप अनुसंधान है। किसी साहित्यिक कृति का परीक्षण करके उसके गुण-दोषों एवं उस रचना का सांगोपांग विवेचन करते हुए मूल्यांकन करना आलोचना है। अनुसन्धान और आलोचना दोनों साहित्यिक विधाएं है। दोनों विधाओं में काफी हद तक समानता है। तथापि ये दोनों एक-दूसरे के पर्याय नहीं माने जा सकते, क्योंकि इन दोनों में मुलभूत तथा आधारभूत अंतर है। अनुसंधान में ज्ञानवर्धक को महत्व दिया जाता है, जब कि आलोचना में प्रभाव ग्रहण को. आलोचना और अनुसंधान का अंग-अंगों संबंध है, अर्थात अनुसंधान में आलोचना समाहित हो सकती है किन्तु आलोचना में अनुसंधान नहीं रह सकता.

3. **अनुसंधान की पद्धतियाँ :-** अनुसंधान के क्षेत्र अत्यंत व्यापक हैं। साहित्य का अनुसंधान सामाजिक और वैज्ञानिक अनुसंधान से अलग ही होता है। प्रत्येक शोध-कार्य सामान्यत: सत्य की खोज, तथ्यों का अन्वेषण और निष्कर्ष स्थापना का अनुष्ठान है। इस अनुष्ठान की सिद्धि जिन पद्धतियों से होती है उन्हें अनुसंधान की पद्धतियाँ कहा जाता है।

वर्णनात्मक पद्धति:- वर्णनात्मक पद्धति साहित्यिक शोध की ऐसी पद्धति है जिसमें शास्त्रीय दृष्टि से विवेचन किया जाता है। वर्णनात्मक पद्धति के अंतर्गत तीन पद्धतियों का समावेश किया जाता है। 1. काव्यशास्त्रीय पद्धति 2. व्याख्यात्मक पद्धति ३. मूल्यांकन पद्धति आदि। ऐतिहासिक पद्धति में अनुसंधान के अंतर्गत ऐतिहासिक तथा पौराणिक तथ्यों का अनुसंधान होता है। तुलनात्मक पद्धति- किन्हीं दो युगों, दो वर्गों, दो भाषाओं तथा दो साहित्यकारों का विशिष्ट अध्ययन, विश्लेषण और निरूपण होता है, तब उसे तुलनात्मक अनुसंधान की संज्ञा दी जाती है। तुलनीय कवि या कृतियाँ एक-दुसरे को नवीन संदर्भ प्रदान करते हैं। एक-दूसरे के संदर्भ में उनका नवीन रूप प्रकट होता है। वर्तमान युग में तुलनात्मक शोध की प्रधानता बढ़ रही है। राष्ट्रीय एकता की भूमिका में तुलनात्मक अध्ययन स्तुत्य भूमिका निभा सकता है। इस

शोध-पद्धति द्वारा ज्ञान की वृद्धि, सुख-समृद्धि, उच्चतर मानवीय मूल्यों की स्थापना, दो संस्कृतियों का सम्मिलन होता है। ज्ञानवृद्धि तथा मानवीय मूल्यों की स्थापना तुलनात्मक पद्धति का उद्देश है।

4. **अनुसंधान के चरण :-** शोध प्रविधि एवं प्रक्रिया तथा शोध-कार्य का प्रथम चरण विषय-चयन है। विषय निर्वाचन एवं निर्धारण अनुसंधान-कार्य का बीज है। दूसरा चरण है शीर्षक. शीर्षक ही शोध-कार्य की दिशा, गति एवं लक्ष्य का निर्धारक होत है। शीर्षक एक प्रकार से शोध-प्रबंध का पारदर्शक दर्पण है। प्राक्कल्पना (Hypothesis) एक तर्कपूर्ण मानसिक सोच है, एक अनुमान है। प्राक्कल्पना अनुसंधान का एक आवश्यक अंग है, जिसके अभाव में शोध-कार्य प्राय: एक उद्देश्यहीन क्रियामात्र हो जाता है। तथ्य एवं कल्पना मिश्रित रूप प्राक्कल्पना है। प्राक्कल्पना शोध-प्रक्रिया का मार्गदर्शन करती शोध-विषय के चयन तथा निर्धारण के बाद रूपरेखा का निर्माण करना अवश्यक होता है, क्योंकि इसमें वह आधार निहित रहता है जिसके अंतर्गत शोध-कार्य किया जाता है। सामग्री संकलन के लिए भी रूपरेखा से आधार मिलता है। ''रूपरेखा एक प्रकार से शरीर की रीढ की हड्डी है जिस पर सारा शोध-ग्रंथ टीका रहता है।''

रुपरेखा में विषय की सुस्पष्टता, क्रमबद्धता, पूर्णता, मौलिकता, एवं शोध-उद्देश आदि का होना आवश्यक होता है।

5. **सामग्री संकलन:-** शोध विषय के चयन के पश्चात सामग्री संकलन की प्रक्रिया आरंभ होती है। सामग्री संकलन एक वैज्ञानिक कार्य है। शोध-सामग्री के दो प्रकार होते है 1. मूलभूत अर्थात मौलिक सामग्री 2. सहाय्यक या पोषक सामग्री।

मूलभूत सामग्री को आधारभूत सामग्री कहा जाता है। सामग्री संकलन के स्त्रोत सामान्यतः दोन प्रकार के होते हैं- 1. मौलिक 2. अनुदित. सामग्री संकलन के स्त्रोतों को तीन भागों में वर्गीकृत कर सकते हैं। १. प्राथमिक कोटि के स्त्रोत, 2. मध्यम कोटि के स्त्रोत, 3. सहाय्यक कोटि के स्त्रोत, सहाय्यक स्त्रोतों में सबसे बड़ी उपलब्धि प्राचीन हस्तलिखित पांडुलिपियाँ होती हैं।

6. **सामग्री वर्गीकरण:-** वर्गीकरण शोध-प्रक्रिया का अत्यंत महत्त्वपूर्ण अंग है। शोध-सामग्री संकलित हो जाने पर उसे व्यवस्थित रीति से संयोजित करने की आवश्यकता होती है और यह कार्य वर्गीकरण द्वारा किया जाता है। तथ्यों को सदृश्य या संबंध की दृष्टि से वर्गों में छाँटने का कार्य वर्गीकरण कहलाता है। निष्कर्ष शोध प्रक्रिया का अंतिम सोपान है। शोध का लक्ष्य विषयगत चरम निष्कर्ष को उजागर करना है, यही उसका प्रमेय है। शोध-प्रबंध के अंतिम अध्याय 'उपसंहार' में शोध निष्कर्ष की प्रतिष्ठा की जाती है। निष्कर्ष अभी तक की मान्यता पर एक नया आलोक उंडेलता है।

7. सामग्री संचयन की पधातियाँ:-

साहित्य जैसे विषय में विभिन्न स्त्रोतों से विशाल सामग्री संचयन की आवश्यकता होती है। इस सामग्री संचयन की अनेक पद्धतियाँ हैं जैसे-

1. **अध्ययन पद्धति :**–अनेक प्रकार के शोधों में कई तरह के ग्रंथों, दस्तावेजों तथा अन्य लिखित सामग्री की आवश्यकता होती है। ये सामग्री निम्न प्रकार की होती हैं–

2. **साक्षात्कार पद्धति:**– इतिहास के विस्तृत तथ्य, भाषा की प्रकृति तथा वर्तमान समस्याओं पर विशिष्ट व्यक्तियों के विचारों को जानने का साधन सम्बन्धित व्यक्तियों का साक्षात्कार है। समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, शिक्षा–विज्ञान, सामाजिक स्वास्थ्य आदि से सम्बन्धित शोध विषयों में साक्षात्कार पद्धति विशेष अपेक्षित है। प्रश्नावली पद्धति :- प्रश्नावली पद्धति में लिखित या मुद्रित प्रश्नावली को ही सामग्री दाता के हाथ में देकर उसमें लिखित रूप में उत्तर प्राप्त किये जाते हैं. सर्वेक्षण पद्धती :- सर्वेक्षण का तात्पर्य 'सब कुछ देखना है' अर्थात जिस विषय को आधार बनाकर सर्वेक्षण किया जा रहा है। सामाजिक महत्त्व रखने वाले या अनेक विषयों के अध्ययन के लिए सर्वेक्षण पद्धति उपयोगी है। संग्रहणीय सामग्री तथा अध्येय सामग्री के आधार पर सर्वेक्षण दो प्रकार के होते है। (1) वस्तुनिष्ठ सर्वेक्षण, (2) जनमनोवृत्ति प्रेक्षण पद्धति :- इस पद्धति में शोधार्थी को समाज के अनुसंधेय अंग के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित करना पड़ता है। समाजशास्त्र, भूतत्वविज्ञान, व्यावहारिक भाषाविज्ञान, लोक–साहित्य आदि से संबंध विषयों में शोध के लिए इस पद्धति का प्रयोग किया जाता है। प्रेक्षण दो प्रकार के होते हैं– 1. अनियंत्रित 2. नियंत्रित

2.8 टिप्पणियाँ लिखिए।

1. अनुसंधान और आलोचना साम्य
2. अनुसंधान और आलोचना वैषम्य
3. सामग्री संकलन के स्त्रोत
4. तुलनात्मक पद्धति
5. अनुसंधान की पद्धति
6. अनुसंधान के चरण
7. अनुसंधान के तत्व

2.8.1 दिर्घोतरी प्रश्न

1. अनुसंधान के मूलतत्वों की जानकारी दीजिए।
2. शोध और आलोचना के साम्य और वैषम्य पर प्रकाश डालिए।
3. अनुसंधान के विभिन्न चरणों की जानकारी विशद कीजिए।
4. सामग्री संचयन की विभिन्न पद्धतियों को विशद कीजिए।
5. अनुसंधान की विभिन्न पद्धतियों की जानकारी दीजिए।

2.9 क्षेत्रीय कार्य :–

1. किसी साहित्यकार का साक्षत्कार लीजिए।
2. पुरातत्व पत्र–पत्रिकाओं की जानकारी प्राप्त कीजिए।
3. प्राचीन हस्तलिखित पांडुलिपियाँ प्राप्त करने जानकारी प्राप्त करने हेतु राष्ट्रीय संस्थाओं को भेट दीजिए।
4. छात्र गजेटियर से ऐतिहासिक, सामाजिक, साहित्यिक सामग्री प्राप्त कर सकता है।

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :–

❑❑❑

इकाई –3
शोधप्रबंध शिर्षक निर्धारण

अनुक्रम–

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 विषय विवरण

3.3.1 शीर्षक निर्धारण।

3.3.2 रुपरेखा–निर्माण।

3.3.3 शोध–प्रबंध लेखन प्रणाली।

3.3.4 शोध प्रबंध टंकन।

3.3.5 वर्तनी सुधार।

3.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

3.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

3.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

3.7 सारांश

3.8 स्वाध्याय

3.9 क्षेत्रीय कार्य

3.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

1. शोध प्रबंध के शीर्षक निर्धारण की जानकारी से परिचित होंगे।
2. रुपरेखा निर्माण से परिचित होंगे।
3. शोधप्रबंधलेखन प्रणाली से परिचित होंगे।
4. शोध टंकन प्रणाली से परिचित होंगे।
5. वर्तनी सुधार या भाषा–शुद्धिकरण से परिचित होंगे।

3.2 प्रस्तावना:–

शोध–प्रबंध की संरचना अनुसंधान का सर्व प्रमुख तत्व है। विषय–चयन, रुपरेखा निर्माण और सामग्री संकलन किया ही जाता है कि शोध प्रबंध लिखा जा सके। इस शोध प्रबंध को लिखने में शोध के नियमों का भी पालन करना पड़ता है. जिसमें शीर्षक देने के साथ ही उद्धरण और टिप्पणियाँ देना भी आवश्यक है, साथ ही संदर्भ ग्रंथों की जानकारी देना भी आवश्यक है, इसी से शोध प्रबंध लेखन में सहायता मिलती है। अनुसंधान अपने में ही एक प्रबंधात्मक व्यवस्था है जिसमें शोध प्रबंध का लेखन करते हुए क्रमबद्ध संयोजन आवश्यक होता है।

शोध प्रबंध लेखन की प्रक्रिया में आधार ग्रंथ, संदर्भ ग्रंथ और सहायक ग्रंथों की प्रमुख भूमिका होती हैं। शोध–प्रबंध के अंत में शोध–सारांश संक्षेप में लिखा जाता है। शोध प्रबंध लेखन में मूल पुस्तक के संदर्भ देना ही पर्याप्त नहीं होता बल्कि विभिन्न स्त्रोतों से भी सामग्री जुटाना आवश्यक है। यदि रचनाकार जीवित है तो उससे साक्षात्कार को प्रश्नावली के माध्यम से प्रयोग में लाया जा सकता है। और इसके लिए वैज्ञानिक प्रणाली का उपयोग कर संबंधित विषय पर प्रश्नों की रचना की जाती है। साहित्य में भी सर्वेक्षण किया जा सकता है. इसके उपरान्त दृश्य–श्रव्य माध्यमों का भी प्रयोग करना संभव है। शोध प्रबंध में इन सभी तत्वों के आधार पर अनुसंधान होता है और यह सब उसकी संरचना का अनिवार्य भाग है।

3.3 विषय विवेचन

3.3.1 शीर्षक निर्धारण :–

विषय का चयन होने पर उसका शीर्षक भी आवश्यक होता है। सही शीर्षक का निर्धारण विषय को गति प्रदान करता है। इसमें एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण निहित होता है। विषय के सही शीर्षक निर्धारण के लिए तीन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है–

i) शीर्षक स्पष्ट हो,

ii) उसका क्षेत्र और सीमा विशिष्ट रुप से निर्धारित हो,

iii) अध्ययन की दृष्टि से वह व्यंजित होता है।

कहना होगा कि शीर्षक जब तक स्पष्ट नहीं होगा तब तक विषय भी स्पष्ट नहीं होता। किसी कवि के व्यक्तित्व और कृतित्व जैसे शीर्षक अस्पष्ट ही होते हैं। कृतित्व में इतना सीमा विस्तार है कि, एक शोध ग्रंथ में वह समा नहीं सकता। मुझे लगता है कि व्यक्तित्व और कृतित्व विषय लेने का कोई अर्थ नहीं है। इसमें शोध की गहराई नहीं आ सकती। उपयुक्त शीर्षक होगा निराला व्यक्ति और साहित्य, दिनकर के काव्य में राष्ट्रीयता इस तरह के विषय उपयुक्त होते हैं और उस क्षेत्र में विस्तार और गहराई से कार्य किया जा सकता है। स्पष्टता के साथ आज यह मांग भी जरुरी है कि शीर्षक आकर्षक भी हो। जैसे निराला के काव्य का अनुशीलन वैसे ठीक शीर्षक है पर इसकी जगह यदि निराला के काव्य में विविध आयाम शीर्षक आकर्षक

होगा। डॉ. इंद्रराज सिंह का शोध ग्रंथ निराला के काव्य में विविध आयाम प्रकाशित भी हुआ है। इसी प्रकार अज्ञेय का गद्य साहित्य शीर्षक की जगह अज्ञेय गद्य रचना के विविध आयाम जैसा शीर्षक अधिक आकर्षक और सुंदर होगा। इस शीर्षक का डॉ. पुष्पा शर्मा का शोध ग्रंथ प्रकाशित हुआ है। कहने का तात्पर्य यह है कि शीर्षक निर्धारण में स्पष्टता के साथ आकर्षकता भी हो। कई बार शीर्षक में परंपरावादी भाषा का प्रयोग किया जाता है। आजकल तो प्रकाशन के समय अधिकांश शोध ग्रंथों के शीर्षक बदलने पड़ते हैं जिससे कि पाठकों का रुझान उन विषयों की ओर हो सके।

शीर्षक निर्धारण में क्षेत्र और सीमा का निर्धारण भी आवश्यक है। एक उदाहरण दिया गया है **जिसमें तीन शीर्षक प्रस्तुत किये गये** हैं-

1. हिंदी प्रेमाख्यानक काव्य
2. हिंदी के सूफी प्रेमाख्यानक काव्य, और
3. हिंदी के प्रेमकाव्य

पहले के दो शीर्षकों में अध्ययन का क्षेत्र आख्यानपरक काव्यों तक ही सीमित है जबकि तीसरे में आख्यानक एवं मुक्तक सभी काव्यरूपों में प्रणीत प्रेमकाव्यों का अंतर्भाव है। सीमा की दृष्टि से पहला शीर्षक अधिक व्यापक है जबकि दूसरा केवल सूफी काव्यों तक सीमित है. यदि 'दक्खिनी' को भो हिंदी माना जाए तो दूसरा शीर्षक और भी परिमित हो जाएगा। अवधि, ब्रजभाषा में लिखे गए सूफी काव्य प्रेमाख्यानक ही हैं, जबकि 'दक्खिनी' में मुक्तक रूप में भी रचित है। अत: 'दक्खिनी' के सभी सूफी काव्यों को समेटने के लिए सीमा का विस्तार 'हिंदी के सूफी प्रेमकाव्य' शीर्षक द्वारा किया जा सकता है।

शीर्षक निर्धारण में शोध की दिशा और दृष्टि की व्यंजना का भी व्यापक महत्व होता है जब तक विषय के संबंध में दृष्टि स्पष्ट नहीं होगी तब तक अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। सूर की भाषा या तुलसी की भाषा जैसे शब्दों में कोई समस्या नहीं है किन्तु इसे विशेष रुप देने के लिए यदि लिखा जाता है, तुलसी काव्य में सांस्कृतिक शब्दावली तब यह दृष्टि-व्यंजना के संदर्भ में उपयुक्त होगा। इसी प्रकार तथ्यानुसंधान और तथ्याख्यान परस्पर जुड़े रहते हैं। जैसे हिंदी काव्यरूपों का उद्भव और विकास अथवा सिद्ध साहित्य, इन शीर्षकों में भी अलग से दृष्टि व्यजक शब्द आवश्यक नहीं है। कुछ शोध कार्य इस प्रकार रहते हैं जिसमें दृष्टि व्यंजना रहती है जैसे हिंदी काव्य में शृंगार परम्परा अथवा हिंदी काव्य में रहस्यवाद। इन तीन प्रकारों में अधिक समस्याएँ नहीं हैं। पर जब शोध कार्य कुछ इस प्रकार का हो जिसमें आख्यान के साथ ज्ञान-विज्ञान के अन्य अनुशासनों को भी आधार बनाए जाए तब उनमें दृष्टि व्यंजना आवश्यक है जैसे- उदाहरण दिया जा सकता है कि- आधुनिक हिंदी कविता में मनोविज्ञान। इसमें मनोविज्ञान दृष्टि व्यंजक है अथवा हिंदी साहित्य पर तांत्रिक प्रभाव इसमें भी तांत्रिक दृष्टि व्यंजक है।

विषय का निर्वाचन व्यापक रूप से अनेक क्षेत्रों में होता है। इसमें पाठानुशीलन का भी महत्व है. पाठ को पढ़ना और उसे समझना तथा प्रकाश में लाना एक अत्यंत उपयोगी शोध कार्य है। इसी प्रकार कई

रचनाकारों का जीवन अँधेरे में रहा है। जिन कवियों ने अपनी रचनाओं में नाम का प्रयोग नहीं किया है उनका पता लगाना बड़ा कठिन है। कवियों की न केवल जीवनी बल्कि उनकी संख्या भी संदेह के घेरे में है। अभी तक इस दृष्टि से कार्य नहीं किया गया है। इसलिए इस दिशा में भी विषयों का शीर्षक निर्धारण करना आवश्यक है।

शीर्षक निर्धारण के लिये तुलनात्मक क्षेत्र भी अत्यंत व्यापक है। समकालीन कवियों और साहित्यकारों का तुलनात्मक विवेचन किया जा सकता है। इस प्रकार समकालीन अलग-अलग भाषाओं के कवियों का जो एक ही युग के हो तुलनात्मक विवेचन संभव हो सकता है। तुलना का क्षेत्र अत्यंत व्यापक होता है और तुलनात्मक अनुसंधान के अंतर्गत तुलनात्मक क्षेत्र का विस्तार हो रहा है। सभी भारतीयों का एक दूसरे से जुड़ना और उन भाषाओं से विशेषकर तुलनात्मक कार्य व्यापक रूप से हो रहा है। हिंदी के साथ दक्षिण भारतीय भाषाओं की तुलना की जा रही है। एक अंतर्भाषीय अनुसंधान क्षेत्र बन रहा है। अनुवाद की भी इसमें प्रमुख भूमिका होने लगी है।

शोध का विषय व्यापक होने के बजाए विशिष्ट होना चाहिए। युग की काव्य प्रवृत्तियों का भी अध्ययन किया जाता है और इससे संबंधित विषय लिये जाते हैं। काव्य रूपों का विवेचन भी विषय निर्वाचन का क्षेत्र है। वादों और विचारधाराओं का विवेचन भी विषय का महत्वपूर्ण भाग हो सकता है। इन वादों के माध्यम से विदेशी साहित्य को भी परखा जा सकता है। समकालीन विचारधाराओं विभिन्न वादों को लेकर विषय का शीर्षक निर्धारण किया जाना चाहिए। शीर्षक निर्धारण का एक अन्य क्षेत्र साहित्य के सिद्धांतों का विवेचन भी है। भाषा संबंधी मौलिक शोध की भी आज आवश्यकता है। भाषा और बोली संबंधी मौलिक विषय भी लिये जा सकते है। भाषा के अध्ययन में अंगों का अलग-अलग विवेचन किया जा सकता है। जन-साहित्य भी विषय निर्वाचन का व्यापक क्षेत्र है। जन-साहित्य या जन-भाषा का अध्ययन किया जा सकता है। इसमें लोक-संस्कृति का व्यापक रूप मिलता है और आजकल अनेक शोध ग्रंथ इन विषयों पर लिखें जा रहे हैं। प्रादेशिक साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन भी विषय निर्वाचन का व्यापक क्षेत्र है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि; शीर्षक निर्धारण के अनेक क्षेत्र हैं जिन्हें अंकित करना संभव नहीं है। साहित्य में शोध के अंतर्गत संवेदना, शिल्प, अनुभूति, प्रतीक, बिंब, मिथक, इतिहास, पुराण, दर्शन, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र के अनेक क्षेत्र हैं जिनका गहराई से अन्वेषण किया जाता है। यह गहरी त्रासदी है कि, कुछ सीमित विषयों को लेकर ही अनेक बार उन पर शोध की जा रही है और अनेक विषय अब तक अछूते पड़े हैं. विषय निर्वाचन में केवल शोधार्थी और निर्देशक को ही शामिल नहीं किया जाना चाहिए बल्कि एक शोध समिति बनायी जानी चाहिए।

जब शोध पंजीकरण के समय साक्षात्कार लिया जाता है तो उस बात को गंभीरता से लिया जाना चाहिए। विषयों की सामान्य शब्दावली का परिवर्तन शीर्षक में कर दिया जाता है। शोध साक्षात्कार के समय विषय को उपयुक्त रूप में देख पाना संभव भी नहीं होता है। अत: शोध पंजीयन के पूर्व शोध की व्यापक छानबीन किया जाना आवश्यक है। यह समिति अब तक हुए शोध की सूची को सामने रखकर जो अछूते विषय हैं, उनकी तलाश करें और निर्देशक और शोधार्थी को मिलकर किसी एक विषय का शीर्षक निर्धारण

करें फिर उसे शोध समिति की सामने रखा जाए और वह विषय को स्वीकृत करें। इस प्रकार विषय स्वीकृत हो जाने के बाद पंजीयन के लिये परीक्षण किया जाना उपयुक्त होगा। इस समय पंजीयन समिति केवल इतना परीक्षण करेंगी की शोधार्थी इस विषय पर शोध कर सकता है या नहीं। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को गंभीरतापूर्वक विषय निर्वाचन और शीर्षक निर्धारण की इस समूची प्रक्रिया पर विचार करना चाहिए और इसके लिए आवश्यक निर्देश विश्वविद्यालय को भेजना चाहिए। तभी यह संभव होगा कि शोध स्तर ऊँचा उठे। यह प्रक्रिया केवल साहित्य के लिये की नहीं अनुसंधान के लिए भी सामान्य रूप से आवश्यक हो। अन्यथा शोध विषय पर चर्चा करना अप्रासंगिक ही बना रहेगा और इस प्रकार शोध ग्रंथ अप्रकाशित रहकर पांडुलिपियों के रूप में ग्रंथालयों में जगह घेरने के अलावा और कुछ नहीं कर सकेंगे।

3.3.2 रूप रेखा निर्माण : (शोध कार्य का विभाजन, अध्याय, उपशीर्षक और अनुपात)

शोध विषय का चयन करने के उपरांत रूपरेखा का निर्माण करना आवश्यक होता है क्योंकि इसमें वह आधार निहित रहता है, जिसके अंतर्गत शोध कार्य किया जाना है और सामग्री संकलन के लिए भी इसे आधार मिलता है। सामग्री संकलन करने के बाद भी रूपरेखा बदलनी पड़ सकती है। कई विश्वविद्यालयों में शोध पंजीयन के समय रूपरेखा के साथ उसे प्रस्तुत करना अनिवार्य है पर अब इस दृष्टिकोण में परिवर्तन हो रहा है। यह विचार है कि रूपरेखा पहले बनाने से वैज्ञानिकता नहीं रहती क्योंकि शोध कार्य करते समय यह संभव है कि जो रूपरेखा बनाई गई है उसमें शोध की दृष्टि से परिवर्तन करना आवश्यक है।

अनेक विश्वविद्यालयों में इस बात का अनुभव करने के बाद अब यह परिवर्तन भी किया गया है कि शोध पंजीयन के समय केवल विषय का शीर्षक दिया जाये या अधिक से अधिक संक्षिप्त रूपरेखा दे दी जाये और विस्तार से रूपरेखा शोध प्रबंध लिखने के उपरांत और उसे विश्वविद्यालय में प्रस्तुत करने के पहले विस्तार से रूपरेखा बनाकर दी जाये। क्योंकि रूपरेखा शोध कार्य का विभाजन करती है उसे अध्याय और उपशीर्षक में बाँटती है। अध्याय और उपशीर्षक का वैज्ञानिक अनुपात भी निर्मित करती है।

रूपरेखा निर्माण एक अत्यंत आवश्यक प्रक्रिया है जिसमें अध्ययन करने के उपरान्त ही एक मानसिक पृष्ठभूमि के अंतर्गत इसका निर्माण किया जा सकता है। विषय के निर्वाचन के उपरांत उससे जुड़ी सामग्री की जांच परख कर शोध प्रबंध की एक परिकल्पना की रचना करना आवश्यक होता है। तभी वह तथ्यों का क्रमबद्ध रूप से अध्यायों में विभाजित कर रूपरेखा की आकृति का निर्माण करता है जिसमें मौलिकता की पर्याप्त रूप से आवश्यकता रहती है। इस संबंध में डॉ. राजेंद्र मिश्र ने विस्तार से विचार किया है-

रूपरेखा निर्माण की अनेक प्रविधियाँ हैं-

रूपरेखा का आरंभ भूमिका से किया जाता है।

रूपरेखा भूमिका से आरंभ न कर विषय से ही प्रारंभ की जाती है।

रूपरेखा में केवल स्थूल रूप से अध्याय ही दे जाते हैं और बहुत संक्षिप्त होती है।

रूपरेखा विस्तृत होती है और अध्ययों को उपशीर्षकों में भी विभाजित किया जाता है।

इन सारी प्रविधियों में कोई भी प्रविधि अपने आप में पूर्ण नहीं मानी जा सकती। वस्तुतः रूपरेखा के आरंभ में भूमिका देना इसलिए उचित है क्योंकि वह रूपरेखा के आधार को स्पष्ट करती है, इस कारण रूपरेखा में भूमिका होते हुए भी भूमिका को रूपरेखा से अलग माना गया है।

रूपरेखा को विषय से आरंभ करते हुए अनुसंधाता को यह विचार करना चाहिए की रूपरेखा संक्षिप्त ही हो क्योंकि शोध के आरंभ में विस्तृत रूपरेखा देना वैज्ञानिक नहीं हो सकता। विस्तृत रुपरेखा शोध ही है। अतएव शोध के आरंभ में शोध के समग्ररूप का आकलन करना शोधार्थी के लिए संभव नहीं है।

रूपरेखा के अंत में कुछ संदर्भ ग्रंथों की सूची लगाना आवश्यक है जिससे पंजीयन के समय विशेषज्ञ समिति रुपरेखा की रचना में उस विषय से संबंद्ध संदर्भ ग्रंथों की सूची देख कर शोध की सही दिशा का अनुमान लगा सके। इस परिशिष्ट सूची में विवेच्य और सहायक ग्रंथों की सूची अलग-अलग दी जा सकती है।

रूपरेखा तयार करने के उपरांत निर्देशक से परामर्श लेना उचित है। रूपरेखा भी स्थायी नहीं हो सकती क्योंकि शोध प्रबंध लेखन की प्रक्रिया में रूपरेखा में अनिवार्य रूप से परिवर्तन होता ही रहता है, इसी कारण कुछ विश्वविद्यालयों में तो विषय के साथ रूपरेखा भेजना अनिवार्य नहीं है क्योंकि इसमें विषय के संबंध में शोधार्थी एक प्रकार का पूर्वाग्रह लेकर चलता है।

फिर भी रूपरेखा शोध प्रबंध की प्राथमिक आवश्यकता है जिसके अंतर्गत शोधार्थी शोध योजना के लेखन के लिए एक प्रकार की योजना निर्धारित कर सकता है।

रूपरेखा निर्माण के लिए जिन सिद्धांतों की आवश्यकता है उनमें मूलत: अध्यायों की रूपरेखा सम्मिलित है जिसमें एक शोध प्रबंध को रूपरेखा के माध्यम से विशिष्ट अध्यायों में क्रमबद्ध कर लिया जाता है। इसीलिए रूपरेखा को शोध-प्रबंध की योजना का मार्गदर्शन कहा गया है।

सिद्धांत पक्ष के अतिरिक्त रूपरेखा का एक प्रायोगिक पक्ष भी है, रूपरेखा निर्माण में जो प्रायोगिक कठीनाइयां आती हैं उन्हें ध्यान में रखकर किस प्रकार वैज्ञानिक ढंग से रूपरेखा का निर्माण किया जाय, यह एक वास्तविक प्रश्न है। यह कठिनाइयाँ इस प्रकार है-

कभी-कभी रूपरेखा विषय से संबंद्ध अध्यायों को भी जोड़ देती है।

यह स्पष्ट नहीं होता कि रूपरेखा का विषय के प्रतिपादन से किस प्रकार का संबंध है। तात्पर्य यह कि रूपरेखा अस्पष्ट होती है।

विषय के शीर्षक से रूपरेखा का पूर्ण संबंध व्यक्त नहीं होता तात्पर्य यह है कि रूपरेखा के अनुरूप शीर्षक का परिवर्तन आवश्यक हो जाता है।

कभी-कभी एक ही अध्याय में एक शोध-प्रबंध के समान रूपरेखा निर्मित कर दी जाती है जिससे एक ही अध्याय इतना व्यापक हो जाता है कि उसी पर एक शोध-प्रबंध लिखा जा सकता है।

शोध-प्रबंध का शीर्षक कभी-कभी अभिधापरक न होकर लक्षणापरक या व्यंजना परक रख दिया जाता है जिससे वह रूपरेखा शोध का नहीं किसी साहित्यिक रचना का अभास देने लगती है।

अतएव रूपरेखा निर्माण की योजना में कुछ बातों को ध्यान में रखना अत्यंत आवश्यक है-

रूपरेखा विषय के शीर्षक के अनुसार हो।

विषय के शब्दों का अर्थ स्पष्ट करते हुए उसे अध्यायों में विभाजित किया जाये।

अध्याय केवल शीर्षक मात्र न होकर विषय वस्तु का निर्देश भी हो।

रूपरेखा तैयार करने से पूर्व विषय पर प्रकाशित आलोचनात्मक या शोधपरक साहित्य का भी अध्ययन कर लिया जाय जिससे उस विषय पर हुए कार्य का ज्ञान हो सके और उस संदर्भ में शोध के लक्ष्य को स्पष्ट करते हुए रूपरेखा कर रचना की जा सके।

रूपरेखा निर्माण में सबसे बड़ी समस्या यह है कि वह स्पष्ट या प्रामाणिक नहीं बन पाती और अनेक प्रकार से अस्पष्ट रूपरेखा बना दी जाती है जिससे अनेक प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं और शोधकर्ता यह नही समझता की वह किस उलझन में फंस रहा है। डॉ. विनयमोहन शर्मा ने एक अस्पष्ट रूपरेखा प्रस्तुत कर उसकी कमियों को निम्न प्रकार अंकित किया है-

सूर का व्यक्तित्व और कृतित्व

रुपरेखा

अध्याय पहला- सूरकालीन स्थिति।

अध्याय दूसरा- सूर का व्यक्तित्व-जीवन-चरित्र।

अध्याय तीसरा- सूर का कृतित्व।

अध्याय चौथा- सूर के काव्य की आलोचना।

अध्याय पांचवा- उपसंहार।

उपर्युक्त रूपरेखा से यह स्पष्ट नहीं होता की शोधार्थी सूर के अध्ययन से क्या प्रतिपादित करना चाहता है। आपके विषय का शीर्षक तो सूर के जीवन और काव्य की पूरी विवेचना चाहता है। इस प्रकार की तार-शैली की अधूरी रूपरेखा से आपका अध्ययन कैसे सीधी रेखा में आगे बढ़ सकता है? पहले अध्याय को ही लें। उसका आपने शीर्षक मात्र 'सूरकालीन स्थिति' दिया है। पाठक को यह ज्ञान नहीं होता कि आप किन स्थितियों की चर्चा करना चाहते है। आपको सूरकालीन स्थिति के आगे ही लिखना चाहिए- 'राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक साहित्यिक' इससे आप आलोच्य काल के इतिहास ग्रंथों को पढ़ेंगे जिनमें सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक आदि परिस्थितियों का वर्णन मिलेगा। आप भक्तमाल और वैष्णवन की वार्ताएं भी पढेंगे जिनसे तत्कालीन धार्मिक विश्वासों का परिचय हो सकेगा। दूसरा

अध्याय बहुत ही अस्पष्ट है। व्यक्तित्व के क्या उपादान होते हैं, इसका भी उल्लेख करना चाहिए. क्योंकि उन्हीं को आप 'सूर' के जीवन से खोजना चाहेंगे. व्यक्ति समाज का एक घटक है। अत: जब हमने सूरकालीन समाज का रूप प्रथम अध्याय में प्रस्तुत कर दिया तब हमें सूर के व्यक्तित्व को स्पष्ट करने में अधिक कठीणाई नहीं होगी। व्यक्तित्व का अध्ययन गुणात्मक प्रविधि का अंग है। अत: अध्याय का शीर्षक मात्र देने से काम नहीं चलेगा। हमें 'सूर का व्यक्तित्व- जीवन चरित्र' के आगे लिखना होगा- व्यक्तित्व की परिभाषा, पारिवारिक पृष्ठभूमि, अर्थात सूर की जन्मतिथि, जन्म-स्थान तत्संबंधित भिन्न-भिन्न मत और उनकी आलोचना, 'सूर को प्रभावित करने वाली पारिवारिक घटनाएँ, जीवन को प्रभावित करने वाले व्यक्ति (उनके दीक्षा-गुरु आदि) जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण उनकी प्रयाण-स्थिति-विविध मतों की समीक्षा। अध्याय की रूपरेखा शीर्षक मात्र न होकर जब तनिक वर्णनात्मक बन गई तब आपको सूर के जीवन से संबंद्ध सामग्री के स्त्रोत खोजने में सहायता मिल जाएगी। आप उन प्रलेखों की खोज करेंगे जिनमें सूर का उल्लेख संभव होगा। सूर अकबर-काल में हुए थे। अत: आप उस काल के सरकारी कागजातों की तलाश करेंगे। उनकी वंशावली प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगे, भक्त चरित्रों की खोज करेंगे, ब्रजभूमि में सूर संबंधी किवदंतियों को एकत्र करने का प्रयास करेंगे और उनके समसामायिक भक्त-कवियों की रचनाओं में उनका उल्लेख ढूंढेंगे। (यदि आप किसी आधुनिक व्यक्ति के जीवन को खोजना चाहेंगे तो आपको उसके लिये अधिक भटकना नहीं पड़ेगा। शासकीय-अशासकीय प्रलेख, प्रकाशित साहित्य आदि व्यक्ति का चरित्र प्रकाश में आ जाएगा। कठीनाई प्राचीनकालीन कवियों के जीवन-सूत्र एकत्र करने में होती है। पर जहाँ कवि अपनी रचनाओ में अपना परिचय दे देता है वहां शोध की कठीनाई कम हो जाती है) तीसरे अध्याय में सूर का कृतित्व लिखने मात्र से काम नहीं चलेगा। आपको उनकी कृतियों का यथा संभव रचनाकाल क्रम से उल्लेख करना होगा। चौथे अध्याय में सूर के काव्य की आलोचना शीर्षक से यह ज्ञान नहीं होता कि आप किस दृष्टि से आलोचना करना चाहते हैं। क्या आप इस अध्याय में सूर की समस्त काव्य-कृतियों का अध्ययन करना चाहेंगे? ऐसी स्थिति में यह अध्याय बहुत बड़ा हो जाएगा। एक पुस्तक का ही रूप धारण कर लेगा। आपको इस अध्याय में केवल सूरसागर का ही मूल्यांकन करना होगा, अत: इस अध्याय का संक्षिप्त विवरण होगा।

सूर सागर प्रबंध अथवा गीत-काव्य प्रबंध अथवा गीत-तत्वों के आधार पर उसका मूल्यांकन-उसका भावपक्ष अथवा कलापक्ष (भाषा, अलंकार, छंद आदी) की दृष्टि से परीक्षण सूरसागर पर श्रीमद्भागवत तथा अन्य ग्रंथों के प्रभाव का पृथक अध्याय बनाना होगा, जिसे हम पांचवा अध्याय कहेंगे पर यह अध्याय स्वयं स्वतंत्र प्रबंध का रूप धारण कर सकता है।

छठे अध्याय में सूर की अन्य कृतियों- सूर सारावली आदि की विवेचना उनकी प्रामाणिकता पर विचार तथा काव्यगत वैशिष्ट्य की परीक्षा। सातवें अध्याय सूर के काव्य में दर्शन- 'वल्लभ मत' और उनका सूर की कृतियों पर प्रभाव वर्णित होगा। अंतिम अध्याय उपसंहार के अंतर्गत प्रबंध की मुख्य-मुख्य प्रस्थापनाओं का सिंहावलोकन होगा।

इस प्रकार अस्पष्ट रूपरेखा अनेक समस्याएं उत्पन्न करती है। कभी-कभी किसी शोध ग्रंथ में एक अध्याय इतना बड़ा हो जाता है कि उसका वर्णन एक हजार पृष्ठ तक में किया जा सकता है। इस तरह की

रूपरेखा का कोई अर्थ नहीं है जिसमें व्यापक असंतुलन हो, अत: शीर्षक में सावधानी बरतने के साथ ही विषय के शब्दों को स्पष्ट करते हुए उसे अध्यायों में विभाजित करना चाहिए यह आवश्यक है। डॉ. विनयमोहन शर्मा ने डॉ. प्रभात के शोध प्रबंध 'मीराबाई' की रूपरेखा आदर्श रूप रेखा के रूप में प्रस्तुत की है। इसे विस्तार से न देकर केवल मुख्य शीर्षक रखकर एक संकेत प्रस्तुत किया जा रहा है कि आदर्श रूपरेखा किस प्रकार बन सकती है–

1. पृष्ठभूमि
2. जीवनवृत्त– अध्ययन के आधार
3. जीवनवृत्त रूपरेखा
4. रचनाएँ, साहित्यिक कृतित्व
5. साधना–पथ
6. काव्य–अनुभूती और अभिव्यक्ति
7. तीन परिशिष्ठ

इस प्रकार शोध प्रबंध का शीर्षक संक्षिप्त मीराबाई रखा गया है किंतु, रूपरेखा से स्पष्ट है कि इसमें मीरा का व्यक्तित्व और कृतित्व शामिल है। इस प्रकार आदर्श रूपरेखा में अध्ययों का संतुलन होता है और विषय को क्रम से रखा जाता है। इसे उपशीर्षकों को में भी विभाजित किया जाता है और इन शोध ग्रंथों में भी उपशीर्षकों में विभाजित किया गया है। विस्तार से दो शोध ग्रंथों के उदाहरण दिये जा रहे हैं, जिसमें एक में संक्षिप्त अनुक्रम में आदर्श रुपरेखा है और दूसरे में विस्तार से आदर्श रूपरेखा दी गयी है।

डॉ. इंद्रराज सिंह का शोध ग्रंथ 'निराला काव्य के विविध आयाम' की रूपरेखा इस प्रकार है–

अध्याय 1– निराला की काव्य साधना एवं रचनाओं का सजन क्रम

अध्याय 2– निराला के काव्यगत सिद्धांत और सृजन प्रेरणाएँ

(अ) निराला के काव्यगत सिद्धांत, काव्य का स्वरूप, काव्य की आत्मा, काव्य हेतु, काव्य प्रयोजन, काव्य के तत्व, काव्य के भेद, काव्य का वर्ण्यविषय, काव्य भाषा छंद, राष्ट्र भाषा, निराला का मुक्ति दर्शन।

(ब) सृजन प्रेरणाएँ

अध्याय 3– निराला काव्य साधना के विविध आयाम

(1) लघु प्रगीत, भक्ति परक रचनाएँ, दर्शन परक रचनाएँ, मातृ–परक रचनाएँ, सरस्वती से संबंधित रचनाएँ, कविता को संबोधित रचनाएँ, सामाजिक (करुणा–परक) रचनाएँ, नवचेतना परक

रचनाएँ, मृत्यु दर्शन परक रचनाएँ, जीवन दर्शन और संकल्प संबंधित रचनाएँ, सौंदर्य और प्रेम मूलक रचनाएँ, व्यंग रचनाएँ,

(2) दीर्घ प्रगीत

(3) प्रबंध रचनाएँ

(4) प्रकृति चित्रण

अध्याय 4- काव्य शिल्प-

काव्य भाषा, प्रतीक-विधान, बिम्ब-विधान, छंद-विधान, अलंकार-विधान. अध्याय ५- निष्कर्ष एवं मूल्यांकन

छायावादी प्रवृत्तियों और निराला काव्य

परवर्ती काव्य प्रवृत्तियां और निराला

यह रूपरेखा अत्यंत वैज्ञानिक है और संक्षेप में भी है। इसमें विषय स्पष्ट हैं और विवेचन संतुलित है।

इस प्रकार रूपरेखा की दृष्टि से यह एक आदर्श रूपरेखा है और शोध प्रबंध के लेखन में इस तरह की रूपरेखा का निर्माण करना वैज्ञानिक है। इसी प्रकार शोधग्रंथ का शीर्षक संक्षिप्त, स्पष्ट और सीधा है जिसमें संप्रेषणीयता का व्यापक स्वरूप उपलब्ध है।

अत: रूपरेखा निर्माण के लिए आवश्यक है कि-

- विषय स्पष्ट हो और शीर्षक संक्षिप्त संप्रेषणीय जिससे की शोध प्रबंध की सारी संरचना व्यक्त हो सके।
- रूपरेखा में विषय केंद्रित आधार को ही महत्व उपलब्ध हो इसका अभिप्राय यह है कि विषय के केंद्र में रूपरेखा निर्माण हो जिससे की रूपरेखा के शीर्षक विषय का ही विवेचन उपलब्ध करे।
- रूपरेखा को मुख्य शीर्षक और उपशीर्षकों में विभाजित करना चाहिए और यथासंभव शीर्षकों का अनुपात व्यवस्थित और संतुलित हो, कोई अध्याय न अधिक छोटा हो और न अधिक बड़ा। छोटे और बड़े अध्याय में अधिक से अधिक पचास पृष्ठों का ही अंतर हो इससे अधिक लंबा होने पर बड़े अध्याय को एक से अधिक उपशीर्षकों में विभाजित करना वैज्ञानिक रहेगा।
- विषय के अनुरूप जो भी मुख्य बिंदु हैं, सभी के अलग-अलग अध्याय बनाना आवश्यक है।
- आवश्यकता होने पर ही भूमिका जा सकती है अन्यथा सीधे विषय पर भी आना गलत नहीं होगा।
- अंत में समस्त शोधग्रंथ का निष्कर्ष भी वैज्ञानिक प्रणाली के अनुसार देना उपयुक्त है जिसमें कि विषय में जो भी विवेचन और समस्याएं हैं सबको अपने मत के साथ समग्ररूप से रखा जा सके।

- प्रामाणिकता के लिए अंत में सहायक ग्रंथ सूची देना आवश्यक है। यदि आवश्यकता हो तो संदर्भ सूची भी जोड़ी जा सकती है।

इस प्रकार रूपरेखा का निर्माण सतर्कता से करना उपयुक्त है। रूपरेखा का निर्माण करते समय यदि एक औपचारिकता का निर्वाह किया गया है तो बाद में शोध प्रबंध लेखन में अनेक प्रकार की कठीनाइयों का सामना करना पड़ता है। एक समस्या यह भी है कि रूपरेखा शोधग्रंथ लेखन के बाद ही बनाई जाये या उसके पहले। वास्तविकता यह है कि संक्षिप्त रूपरेखा शोध परिकल्पना के अनुरूप पहले बनती है और विस्तार से रूपरेखा का निर्माण शोधग्रंथ लेखन के उपरान्त ही होता है।

शोध प्रबंध लेखन में विषय से संबंधित सामग्री का उपयोग करने से प्रामाणिक और मौलिक शोध ग्रंथ की रचना होती है। अनेक बार शोध ग्रंथ में पहले और बाद में जो सामग्री ली जाती है वह अनेक पुस्तकों में पुनरावृत्ति होती है, जैसे छायावाद पर लिखे हर शोध ग्रंथ में छायावाद का इतिहास लिखना आवश्यक नहीं है यदि किसी कवि पर शोधग्रंथ है तो उस कवि पर ही उसे केंद्रित करना आवश्यक है। अभिप्राय यह है कि अनेक शोधग्रंथों में शोध विषय पर कम लिखकर जो अनावश्यक सामग्री अनेक पुस्तकों से लेख लेकर रख दी जाती है, उससे शोध ग्रंथ का आकार बढ़ता है और मूल शोधग्रंथ पर बहुत कम सामग्री रहती है। इस प्रकार अनेक बार रूपरेखा बदलनी पड़ती है। अत: व्यापक रूपरेखा पहले प्रस्तुत नहीं करनी चाहिए विश्वविद्यालय भी शोधग्रंथ प्रस्तुत करते समय केवल उसका शीर्षक ही देखते हैं कि उस विषय पर पंजीयन हुआ था उसी शीर्षक में प्रस्तुत किया जा रहा है या नहीं। पर वे रूपरेखा नहीं मिलाते। आजकल स्थिति यह है कि जिस रूपरेखा का पंजीयन हुआ है उसे अगर शोधप्रबंध प्रस्तुत करते समय मिला लिया जाये तो अनेक शोधग्रंथ प्रस्तुत करते मिला जाये तो अनेक शोधग्रंथ उपाधि के लिए स्वीकार ही नहीं किये जा सकेंगे। अत: शोध पंजीयन शोध ग्रंथ प्रस्तुत करने के केवल एक वर्ष पूर्व ही किया जाना चाहिए। शोधार्थी कार्य करना आरंभ करे इसके लिये किसी न किसी प्रक्रिया की आवश्यकता है। अत: पहले उसका शीर्षक स्वीकार कर लिया जाय और एक पत्र जारी किया जाये जिसमें स्पष्ट हो कि यह विषय स्वीकृत कर लिया गया है और इसके एक वर्ष उपरांत शोध कार्य कर लेने पर जब विस्तार से रूपरेखा प्रस्तुत की जायेगी तभी पंजीयन होगा अथवा संक्षिप्त रूपरेखा पर पंजीयन होगा, किंतु शोध ग्रंथ प्रस्तुत करने के ६ महा पूर्व विस्तार से रूपरेखा प्रस्तुत करना आवश्यक होगा और केवल विषय या शीर्षक नहीं उस संपूर्ण रूपरेखा का पंजीयन किया जायेगा जिसके आधार पर शोध ग्रंथ प्रस्तुत करते समय रूपरेखा के अनुसार ही शोध ग्रंथ है, जब एक समिति इसे प्रमाणित करेगी तभी विश्वविद्यालय में वह ग्रंथ शोध उपाधि के लिए मूल्यांकन हेतु स्वीकृत किया जायेगा।

शोध ग्रंथ की प्रक्रिया में इन आवश्यक बातों को शामिल किया जाये तभी शोध के स्तर की गिरावट को रोका जा सकता है। रूपरेखा निर्माण अत्यंत कठीण और व्यावहारिक कार्य है, और इसे गंभीरता से लिया जाना चाहिए विषय का शीर्षक इस प्रकार का हो जिसे प्रकाशित करते समय बदलने की आवश्यकता न हो। इसके साथ ही लंबे विषय लेने की बजाय जिनमें सतही सामग्री का समावेश होता है, संक्षिप्त विषय लेना वैज्ञानिक रहता है। किसी रचना या साहित्यकार के किसी एक मुख्य पक्ष को लेकर शोध ग्रंथ में गहनता

से उसका विश्लेषण करना ही प्रासंगिक होगा, साथ ही शोध ग्रंथ का आकार बहुत अधिक बड़ा न हो। आधुनिक समय में जब बहुत तेज रफ्तार है, किसी के पास कितना समय नहीं है कि उपाधि प्राप्त करने के बाद शोध ग्रंथ को प्रकाशन के योग्य बनाये, साथ ही प्रकाशक भी यह नहीं चाहेगा कि जो सामग्री प्रासंगिक नहीं हो वह उसे शोध ग्रंथ के साथ प्रकाशित करे। इसके साथ ही यदि शोध ग्रंथ प्रकाशित नहीं होता तो उसकी प्रासंगिकता भी उतनी नहीं हो सकती जितनी आवश्यक है।

अत: रूपरेखा को शरीर की रीढ़ की हड्डी भी कहा जा सकता है जिस पर सारा शोध ग्रंथ टीका रहता है। बहुत सा शोध औपचारिक रूपरेखा के निर्माण के आधार पर ही किया जा रहा है शोध ग्रंथ प्रस्तुत करते समय अधिकांश रूपरेखा बदल जाती है, यह चिंताजनक स्थिति है। रूपरेखा का निर्माण एक वैज्ञानिक प्रयोग है और आदर्श रूपरेखा बनाते समय एक वैज्ञानिक के समान ही अनुसंधाता को शोध की प्रयोगशाला में अपने निर्देशक के साथ संवाद स्थापित कर रूपरेखा का निर्माण करना चाहिए, तभी उसके अध्याय, शीर्षक और उपशीर्षक का निर्माण होगा और उसका अनुपात भी वैज्ञानिक रहेगा। क्योंकि शोध कार्य के विभाजन का वैज्ञानिक आधार रूपरेखा प्रबंधन में ही निहित है।

3.3.3 शोध प्रबंध लेखन प्रणाली

प्रस्तावना:

विषय चयन सामग्री संकलन और रूपरेखा निर्माण के उपरांत शोध प्रबंध लेखन की प्रक्रिया का आरंभ होता है। विषय की सूची में से किसी विषय का चयन करने के उपरान्त उसकी रूपरेखा बनती है, जब शोध प्रबंध लेखन आरंभ होता है तब प्रस्तावना या भूमिका की समस्या आती है इसके साथ ही अनुक्रमणिका, अध्याय विभाजन, उपसंहार, संदर्भ, पाद-टिप्पणी, उद्धरण और उसके उपरान्त सहायक ग्रंथों की सूची जिसे संदर्भ भी कहा जाता है की आवश्यकता होती है। इस संपूर्ण प्रक्रिया को समग्र रूप से व्यवस्था देना आवश्यक है। शोध प्रबंध लेखन एक वैज्ञानिक तकनीक है, अत: साहित्य में भी इसके लेखन में वैज्ञानिक प्रक्रिया का ही निर्वाह करना आवश्यक है।

3.3.3.1 भूमिका लेखन:-

भूमिका के लिये सामान्यतः प्रस्तावना, प्रास्ताविक, प्राक्कथन, वक्तव्य, पृष्ठभूमि, पूर्वपिटिका आदि पर्यायवाची शब्द प्रचलित है। शोध प्रबंध में सर्वप्रथम स्थान भूमिका का होता है वैसे संपूर्ण शोध प्रबंध तयार होने के पश्चात ही भूमिका लिखी जाती है प्रबंध लेखन प्रक्रिया में प्रथम स्थान भूमिका का आता है किंतु प्रबंध लेखन की सामग्री अलग होती है। भूमिका मूल प्रबंध से अधिक संबद्ध नहीं होती। इस कारण भूमिका के स्थान के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। भूमिका में शोधार्थी को अपने विषय पर किये पूर्ववर्ती कार्यों का आलोचनात्मक ढंग से विवेचन करने के उपरांत वांछित दिशा का उल्लेख करना चाहिए। भूमिका में ही यह विदित हो जाता है कि शोधार्थी का उद्देश्य क्या है और वह प्रस्तावित विषय के क्षेत्र में ज्ञान का किस प्रकार विस्तार कर रहा है।

भूमिका को मूल प्रबंध का अध्याय बनाना उचित नहीं है। भूमिका प्रबंध का भाग नहीं होती है बल्कि प्रबंध की दिशा का निर्देश होती है। उसमें शोध के अन्य अध्यायों के साथ-साथ क्रम का निर्वाह नहीं होता है। अतएव विषय की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करती है और शोध-प्रबंध के सभी अध्यायों को आत्मसात करने का काम भी करती है। इसी प्रकार यह कहा गया है कि जब तक शोध प्रबंध का लेखन समग्रता की ओर नहीं बढ़ता तब तक भूमिका नहीं लिखी जा सकती।

वास्तव में भूमिका मूल शोध-प्रबंध से अधिक संबंधित नहीं होती या वह शोध का अंग भी नहीं होती है, किंतु शोध-प्रबंध की दिशा का निर्देश करती है और शोध विषय की पृष्ठभूमि भी प्रस्तुत करती है। इस दृष्टि से भूमिका का शोध-प्रबंध में अपना विशिष्ट महत्त्व होता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जाएगा की भूमिका शोध- प्रबंध का प्रतीतिमूलक आईना है।

भूमिका में सामान्यतः निम्नांकित मुद्दों का समावेश अपेक्षित होता है -

- विवेक शोध- विषय के प्रेरणास्त्रोत एवं उनके कारणों की मीमांसा करना।
- शोध विषय की उपयुक्तता तथा महत्व का प्रतिपादन करना।
- शोध विषय का उद्देश एवं आवश्यकता को उजागर करना।
- शोध विषय से संबंधित पूर्ववर्ती शोध कार्यों का आकलन प्रस्तुत करना।
- शोध विषय की मौलिकता को अधोरेखित करना।
- शोध विषय की उपलब्धियां तथा निष्कर्ष का प्रकाशन करना।
- शोध अध्ययन द्वारा संपन्न ज्ञान-क्षेत्र के क्षितिज का विस्तार तथा ज्ञानोपलब्धि को उजागर करना।
- शोध अध्ययन की दिशा और विषय व्याप्ति एवं सीमा को प्रकाशित करना।
- शोध के सामर्थ्य बिंदुओं तथा दुर्लभ पहलुओं को उजागर करना।
- शोध प्रबंध की भूमिका घनिष्ठ रुपेण विषय से संबंद्ध होनी चाहिए।
- हिंदी साहित्य से संबंधित शोध-क्षेत्र में प्रदत्त योगदान पर दृष्टिपात करना।
- शोध विषय से संबंद्ध शोध की नयी संभावनाओं तथा दिशाओं का उल्लेख करना।
- सामग्री संकलन के विविध स्त्रोतों का निर्देश करना।
- प्रबंध लेखन में अपनायी गयी विभिन्न शोध-पद्धतीयों का उल्लेख करना।
- शोध विषय में अन्वेषित समस्या के संदर्भ में यह निर्देशित किया जाता है कि संबंधित शोध-विषय पर इसके पूर्व किया गया शोध-कार्य किन रूपों में अपर्याप्त पाया गया है और विवेच्य शोध-प्रबंध अस्पर्शित उन अभावों की किस तरह पूर्ति करता है।

- भूमिका शोध-विषय की पृष्ठभूमी प्रस्तुत करती है और साथ ही शोध-प्रबंध के सभी अध्यायों को आत्मसात करने का काम भी करती है।
- भूमिका में शोध-प्रबंध में समाहित अध्यायों का क्रमागत संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जाता है।

भूमिका लेखन की शर्तें:-

- भूमिका संक्षिप्त एवं सारगर्भित अर्थात 'गागर में सागर' भरने वाली होनी चाहिए।
- समग्रता भूमिका का उल्लेखनीय वैशिष्ट्य है।
- भूमिका सर्वसमावेशक और परिपूर्ण होनी चाहिए।
- भूमिका का संतुलित एवं समन्वित होना उसका सौष्ठव होता है।
- भूमिका सहज बोधगम्य होनी चाहिए।
- भूमिका में शोध-विषय की संप्रेषणीयता होनी चाहिए।
- भूमिका सोउद्देश्य एवं दिशायुक्त होनी चाहिए।
- भूमिका सुरुचिपूर्ण होनी चाहिए ताकि भूमिका पढ़ने पर पाठक के मन में संबंधित पूर्ण शोध-प्रबंध पढने की रूचि एवं उत्सुकता निर्माण हो सके।

सारांशतः भूमिका के द्वारा किसी शोध-प्रबंध की पृष्ठभूमि, उद्देश्य, महत्त्व, विषयवस्तु, उसके महत निष्कर्ष, उपलब्धियां, मौलिकता, ज्ञान-क्षितिज की समृद्धि, और कुल मिलाकर समग्र योगदान विषयक सांकेतिक परिचय मिलना चाहिए। अतएव सतर्कता और दक्षतापूर्वक लिखी गयी भूमिका का शोधार्थी, परीक्षक और पाठक इन तीनो के लिए मूल्य बहुत अधिक होता है।

3.3.3.2 अनुक्रमणिका:-

अनुक्रमणिका एक वैज्ञानिक प्रविधि का प्रारंभिक सोपान है। स्वाभाविक रूप से शोधग्रंथ की अनुक्रमणिका भी एक स्वीकृत वैज्ञानिक पद्धति है, अत: कोई भी शास्त्रीय ग्रंथ अनुक्रमणिका के बिना पूरा नहीं समझा जा सकता। अनुसंधान प्रविधि के जो क्रमबद्ध विविध सोपान है, उन्हें तर्कसंगत क्रमानुसार अनुक्रमणिका में पृष्ठांकनसहित दर्ज करना पडता है। शोध-प्रबंध में समाविष्ट विभिन्न अध्यायों तथा अंतिम उपसंहार, अध्यायों के शीर्षक समेत क्रमबद्ध रूप में अनुक्रमणिका में प्रस्तुत किए जाते हैं। इस तर्कसंगत व्यवस्थापन तथा सूक्ष्म-बद्धता के कारण अनुक्रमणिका को वैज्ञानिकता प्राप्त होती है। प्राय: पाठक हर समय समूचा प्रबंध एक साथ या एक बैठक में नहीं पढ़ सकता। वह अपने तत्कालीन उपयोग की वस्तु को शोध-प्रबंध में त्वरित देखना चाहता है। इस कार्य के लिए अनुक्रमणिका उसकी सहायता करती है। अपेक्षित अध्याय का शीर्षक तथा पृष्ठांकन देखकर वह तुरंत अपेक्षित वस्तु को पढ़ लेता है। अत: यह कहा जा सकता है कि अनुक्रमणिका संपूर्ण शोध-प्रबंध की अंतरंग परिचयिका होती है।

अनुक्रमणिका में संपूर्ण शोध-प्रबंध का पर्यवेक्षण हो जाता है। अतएव उसमें शोध-प्रबंधो के अध्यायों के संकेत के साथ-साथ अतिरिक्त संदर्भिका और परिशिष्ट का भी समावेश किया जाता है।

3.3.3.3 अध्याय विभाजन:-

अध्ययन की सुविधा तथा शोध-विषय के सुचारु प्रतिपादन और विषय के क्रमबद्ध एवं प्रभावशाली निरूपण के लिए शोध-प्रबंध का उचित अध्यायों तथा अध्यायों का खंडो-उपखंडो में विभाजन और संख्याकन (क्रमांकन) वैज्ञानिक पद्धति से होना चाहिए।

शोध प्रबंध को प्रथम अध्याय से अंतिम अध्याय तथा उपसंहार तक उपक्रमित रखना शोध-प्रबंध को वैज्ञानिकता प्रदान करता है। अध्याय मुख्य शीर्षकों तथा उपशिर्षकों में निर्धारित करने चाहिए. प्रत्येक अध्याय के पृष्ठ पर उसके मुख्य शीर्षक अंकित किए जा सकते हैं। अध्यायों के क्रम में संगति, संबंद्धता तथा सुसूत्रता होनी चाहिए। किसी भी क्रम से और तर्कसंगति का पालन न कर विषय को प्रस्तुत करने से विषय निरूपण शिथिल हो जाता है और शोध-प्रबंध का प्रभाव भी प्राय: कम हो सकता है। अतएव 'रूपरेखा' में अध्याय विभाजन एवं तर्कसंगत अध्ययन का निर्धारण आवश्य किया जाता है। अध्यायों के आयोजन के अभाव में शोध का मूल उद्देश्य भी स्पष्ट नहीं हो सकता।

सारांशतः अनुसंधान एक वैज्ञानिक प्रविधि एवं प्रक्रिया है, अत: विषय के सुव्यवस्थित एवं सुनिश्चित अध्ययन हेतु अध्याय-विभाजन अत्यावश्यक है। वह शोध अध्ययन को एक सुनिश्चित एवं सुव्यवस्थित दिशा प्रदान करता है। तात्पर्य, अध्याय विभाजन शोध-व्यवस्थापन कौशल्य तथा वैज्ञानिक प्रविधि का एक महत्त्वपूर्ण एवं अनिवार्य अंग है।

3.3.3.4 उपसंहार:-

उपसंहार शोध-प्रबंध का अंतिम अध्याय होता है। हालाँकि उसे अध्याय क्रमांक के रूप में संख्याबद्ध नहीं किया जाता। उपसंहार एक प्रकार से पूरे शोध प्रबंध का समापन अध्याय माना जा सकता है। उपसंहार में शोध अध्ययन से प्राप्त शोध के निष्कर्षों को सार-संक्षेप में तथा स्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया जाता है। शोध-प्रबंध में जिन प्रतिभासों तथा तथ्यों को प्रस्तुत किया जाता है, उनका सारांश उपसंहार में संश्लिष्ट रूप में शब्दबद्ध किया जाता है। इस प्रकार 'उपसंहार' में शोध-प्रबंध के अध्ययन का निचोड़ रुप में समाहार होता है। उपसंहार में प्रस्तुत शोध-निष्कर्षों से शोधार्थी की विश्लेषण बुद्धि, विवेचन क्षमता, समाहार शक्ति और संतुलित दृष्टि का सही परिचय प्राप्त होना चाहिए।

उपसंहार में शोध के उद्देश्यों या समस्याओं का सारभूत रूप में पुन: प्रतिपादन करके उपलब्ध सामग्री के विश्लेषण से प्राप्त निर्णय और उठाई गई समस्याओं के समाधान दिए जाते हैं। इसी प्रकार उपसंहार में प्रस्थापना के मुख्य निष्कर्ष-बिंदुओं का एक बार निरीक्षण, मूल्यांकन आवश्यक होता है।

इस प्रकार 'उपसंहार' संपूर्ण शोध-अध्ययन का लाघवपूर्ण परिचय होता है। समग्रत: यह कहा जाएगा कि वस्तुनिष्ठता, निपक्षता, स्पष्टता, सुबोधता, सारगर्भिता उत्तम उपसंहार के गुण और वैज्ञानिक दृष्टि के प्रमाण होते हैं।

3.3.3.5 शोध की नई दिशाएँ :-

शोध-प्रक्रिया की क्रमबद्ध सीढ़ियों में एक महत्वपूर्ण सीढ़ी है। शोध की नई दिशाएँ, इसे 'शोध की नई संभावनाएँ' भी कहा जाता है। शोध-कर्ता अपने शोध-प्रबंध में शोध की नई दिशाओं में सामान्यतः अपने विवेच्य शोध विषय से संबंधित कुछ नये, मौलिक विषयों को अधोरेखित करता है। अर्थात विवेच्य शोध-विषय से संबंधित अन्य कौन-कौन से नये संभाव्य विषय हो सकते हैं, उस पर प्रकाश डालता है। इस प्रकार नये शोधेच्छुक शोधकर्ताओं के लिए शोध की नई दिशाएँ पथ-प्रदर्शक होती है।

शोध प्रक्रिया के अंतिम पड़ाव पर शोध की नव्यतम दिशाओं अर्थात शोध के नये एवं मौलिक विषयों को उजागर करना आगामी शोध-कर्ताओं के लिए आवश्यक एवं उपयुक्त होता है। इससे अन्य शोधेच्छुक अध्येताओं के समक्ष नव्यतम विषय दयौतित हो जाते हैं। शोधेच्छुक शोध-कर्ताओं को विषय-चयन एवं विषय निर्धारण करते समय शोध-विषय की नई दिशाएँ उद्घाटित होने से भली-भांति मार्गदर्शन हैं। शोध-प्रबंध में शोध की नई दिशाओं को उजागर करने से अन्य शोधेच्छुक अध्येताओं के लिए वह संदर्भ ग्रंथ या सहाय्यक ग्रंथ के रूप में भी सहायक एवं दिशा निर्देशक हो सकता है. और हाँ, शोध की नई संभावनाओं को देखकर अन्य शोधेच्छुक व्यक्ति को कदाचित और भी नये विषय सूझ सकते हैं।

3.3.3.6 संदर्भ उल्लेख:-

शोध प्रबंध लेखन में संदर्भ का उल्लेख करना अत्यंत आवश्यक होता है। क्योंकि संदर्भ शोध-प्रबंध की सामग्री को प्रमाणित करते है। संदर्भ की प्रामाणिकता के कारण ही शोध-प्रबंध किसी सामान्य ग्रंथ से भिन्न होता है। संदर्भ का संबंध उस प्रकाशित और अप्रकाशित सामग्री से आता है जो संदर्भिका में भी संकलित की जाती है। संदर्भिका के कुछ प्रकार निम्नलिखित हैं-

- शोध प्रबंध की पाद-टिप्पणी के रूप में अथवा उसके पाठ में संदर्भित सामग्री की सूची।
- व्यापक प्रकार के संदर्भ जिन्हें शोध-प्रबंध लेखन के समय सहयोग के रूप में प्रयुक्त किया है और जो शोध के विषय से आवश्यक रूप से संबंद्ध नहीं है।
- चयन सामग्री की सूची जिससे उद्धृत स्रोत और विषय से संबंध व सामग्री जिसका प्रबंध लेखन की प्रक्रिया में प्रयोग किया गया है।
- एक संक्षिप्त संदर्भिका जिसमें उन ग्रंथों की सूची है जिन्हें पाद-टिप्पणी के रूप में जिससे संबंद्ध और उपयोगी संदर्भ के रूप में प्रयुक्त किया गया है।

संदर्भिका के मुख्य भाग में अधिकतर उन ग्रंथों की सूची दी जाती है, जिनका शोध प्रबंध में उपयोग किया गया है और वही संदर्भिका का मुख्य भाग है। अंतिम अध्याय की बात ही संदर्भ ग्रंथों की सूची लगा

देनी चाहिए किंतु कुछ लेखक संदर्भ ग्रंथों की सूची परिशिष्ट के बाद भी लगाते हैं। प्रत्येक ऐसा ग्रंथ लेख, शोध-प्रबंध अथवा पांडुलिपि जिसे शोध-प्रबंध में संदर्भ के रूप में प्रयुक्त किया गया है, संदर्भ सूची में लिखा जाना चाहिए। संदर्भिका आकारादि क्रम में होना चाहिए। अब अधिकतर लेखक एक व्यापक सूची के पक्ष में है जिसमें मूल और सहायक स्त्रोतों का भेद न कर व्यवस्थित रूप से एक ही क्रम में संदर्भिका दी जाती है।

संदर्भ देने के कोई विशेष नियम नहीं है। शोध प्रबंध में पाद-टिप्पणी देने की प्रविधि ही संदर्भ देने की प्रविधि को प्रभावित करती है। मुख्य बात यह कि संदर्भिका में संगति और स्पष्टता होनी चाहिए।

संदर्भिका में विराम चिन्हों और व्यवस्था का उपयोग पाद टिप्पणी से भिन्न रूप में किया जाता है। पाद टिप्पणी में लेखक का नाम उसी क्रम में दिया जाता है, किन्तु संदर्भिका में उपनाम मुख्य नाम से पूर्व दिया जाता है। यह इनकी व्यवस्था का ही अंतर है। पाद-टिप्पणी का मुख्य उद्देश्य वक्तव्य के स्त्रोत के विशिष्ट स्थान को बताना है जिसमें ग्रंथ का सही पृष्ठ भी दिया जाता है, जिसे सूचना की विश्वसनीयता की जांच पड़ताल की जा सके किंतु संदर्भिका में समूह ग्रंथ को ही अंकित किया जाता है, उसके किसी विशेष भाग को नहीं जिसे संदर्भ के रूप में उद्धरत किया गया है। अतएव संदर्भिका में पाद-टिप्पणी में दिये गये संदर्भ की पुनरावृत्ति आवश्यक नहीं है।

संदर्भ में जो आवश्यक सूचनाएं दी जानी चाहिए वे इस प्रकार हैं-

- लेखक का नाम
- पुस्तक का शीर्षक
- प्रकाशन का विवरण- दिनांक, स्थान व प्रकाशक का नाम।

यदि किसी पत्रिका के लेख का उदाहरण दिया गया है। तो उसमें उसके प्रकाशक का नाम और प्रकाशन का स्थान देने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि इस प्रकार की महत्त्वपूर्ण पत्रिकाओं की जानकारी पहले से ही रहती है।

संपादित ग्रंथों के संदर्भ देने में विधि के अंतर्गत सर्वप्रथम लेख शीर्षक और उसके लेखक का नाम दिया जाता है। संदर्भ सूची में उस पुस्तक की अन्य जानकारी और संपादक का नाम लिखा जा सकता है। एक दूसरी विधि यह भी है कि दोनों सूचनाओं को अलग-अलग कर दिया जाये जिससे एक में अध्याय की और दूसरे में पुस्तक की सूचना दे दी जाये और इसे ही आकारादिक्रम में दे दिया जाय। इस दूसरी पद्धति को ही स्वीकार किया जाना वैज्ञानिक है। क्योंकि यदि एक ही संपादित ग्रंथ में एक से अधिक लेखक के लेख उद्धरत किये गये हैं तो उनका सारा संदर्भ बिना पुनरावृत्ति के एक ही स्थान पर अंकित किया जा सकता है।

इसी प्रकार अन्य संदर्भ में ग्रंथों के अनुवाद ही आते हैं। अनूदित ग्रंथों को स्पष्ट अंकित करना चाहिए। जिसमें मूल ग्रंथ का नाम भी दिया गया हो। अप्रकाशित ग्रंथों का भी स्पष्ट उल्लेख किया जाना चाहिए और

उनके स्त्रोत भी अंकित कर देना आवश्यक है। इसी प्रकार यदि किसी अन्य शोध प्रबंध से भी संदर्भ ग्रहण किये गये हैं तो उसे भी स्पष्ट अंकित करना आवश्यक है।

संदर्भ शोध-प्रबंध का आवश्यक अंग हैं क्योंकि यही उसकी प्रामाणिकता का भी प्रतीक है, अतएव इसमें एकरूपता और वैज्ञानिकता का ध्यान रखना आवश्यक है।

सहाय्यक ग्रंथ-

शोध कार्य के लिए ग्रंथों की खोज भी अपने आपने महत्वपूर्ण एवं उपयोगी है। शोधार्थी को कार्य आरंभ करने के पूर्व ऐसी संभावित सूची तैयार कर लेना आवश्यक है जिसके आधार पर शोध कार्य व्यवस्थित एवं परिमार्जित रूप ले सकें।

ग्रंथों का अध्ययन करते समय लेखकों, प्रकाशकों आदि के संस्करण के साथ ही साथ लिखते जाना चाहिए. ऐसा करने से बाद में शोधार्थी को अंत में किसी भी समस्या का सामना नहीं करना पड़ता।

शोधार्थी को पाठकों की समस्या को भी ध्यान में रखना चाहिए, जो शोध ग्रंथ का अनुशीलन करते समय उस सामग्री का विषय अध्ययन करना चाहते हैं।

सहाय्यक ग्रंथ सूची शुद्ध होनी चाहिए क्योंकि इसे परवर्ती अनुसंधाता को सामग्री-संकलन में सुविधा रहती है।

अपने निष्कर्षों को संपादित करने हेतु उच्चस्तर की सामग्री शोध-ग्रंथ में प्रतिपादित करना चाहिए।

आज कल शोधार्थी में एक गलत धारणा बन गई है कि सहायक ग्रंथों की सूची विशाल होनी चाहिए, जो उचित नहीं है।

शोध को प्रमाणित करने के लिए अधिकाधिक ग्रंथों से उदाहरण देने चाहिए, किन्तु सहायक ग्रंथों की संख्या में अनावश्यक बहुलता नहीं होनी चाहिए। चुने हुए ग्रंथों का ही उल्लेख होना चाहिए।

शोधार्थी को ऐसी प्रति से ही उदाहरण देने चाहिए जो नवीनतम हो तथा उपलब्ध हो सकती हो, जिससे सामग्री की प्रस्तुति का आधार सत्यतापूर्ण एवं वैज्ञानिक रहता है।

कुछ अनुसंधाता शोध-कार्य करते समय जितनी भी पुस्तके देखते हैं, उन सभी का उल्लेख करने का मोह छोड़ नहीं पाते यह उचित नहीं है। उचित यह होगा कि शोधार्थी प्रत्येक अध्याय पूर्ण होने के बाद ही सहाय्यक ग्रंथों की सूची तयार कर लें जिससे अलग-अलग अध्ययों की सूचियाँ तैयार होने के बाद पुनरावृत्ति होने वाले नामों को हटाया जा सकता है।

सामान्यतः संदर्भ सूचियों को निम्नलिखित तीन रूपों में प्रस्तुत किया जा सकता है- विषयानुसार, ग्रंथानुसार, लेखकानुसार, सूची आकारादि क्रम में होना चाहिए।

सहायक ग्रंथ सूची में अप्रकाशित या प्रेस में मुद्रित हो रहे प्रबंध का भी समावेश किया जा सकता है। किंतु ऐसे ग्रंथों को अलग से लिखना चाहिए तथा उनकी प्राप्ति के विवरण का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए।

सूची में पुस्तकों का भी उल्लेख किया जा सकता है जिसका अध्ययन शोधार्थी ने किया है, किंतु उदाहरण नहीं दिये हैं। इस हेतु एक सूची पृथक से बनानी चाहिए तथा सूची के आरंभ में एक अनुच्छेद में उसके औचित्य को व्यक्त कर देना चाहिए। इस कार्य से भावी शोधार्थी संभावित सहाय्यक ग्रंथों से अवगत हो सकेंगे और शोधार्थी पर यहा आरोप न लग पायेगा कि उसने प्रबंध लेखन के समय अनेक ग्रंथों को छोड़ दिया है।

सूची में उल्लेखित सभी पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं आदि पर क्रमांक संख्या लिखना चाहिए, जिससे यह स्पष्ट हो सके कि किस वर्ग में कुल कितनी कृतियों का अध्ययन किया गया है।

सहायक ग्रंथ सूची में पुस्तक और प्रकाशन तथा लेखक रहता है किंतु सूची अपूर्ण ही रहेगी जब तक उसमें पुस्तक के संस्करण और प्रकाशन वर्ष का उल्लेख न हो। अनुदित ग्रंथों के नाम के साथ अनुवादक का नाम भी देना आवश्यक है।

3.3.3.7 पाद टिप्पणी :-

शोध-प्रबंध लेखन में पाद टिप्पणियों का प्रयोग भी परंपरागत विश्वसनीयता और विश्लेषणात्मक प्रक्रियाओं के संदर्भ में तब किया जाता है जबकि विषय के संबंद्ध सामग्री के लिए इसके उपयोग की आवश्यकता हो। नाम के आधार पर पाद टिप्पणी का प्रयोग पृष्ठ के नीचे के भाग में किया जाता है। कभी-कभी अध्यायों के बाद या प्रबंध के बाद भी ये टिप्पणियां दे दी जाती हैं, किंतु पाद टिप्पणी देना तभी उचित है जबकि यह शोध-प्रबंध के मुख्य भाग के लिए आवश्यक हो। शोध प्रबंध में पाद टिप्पणी देने के लिए अनेक प्रकार के निर्देश हैं। वास्तव में-

- पाद टिप्पणी का उपयोग किसलिए किया जाए।
- इन्हें किस स्थान पर अंकित किया जाये।
- इसके गठन का प्रकार क्या हो।
- इसके लिए किन प्रविधियों का प्रयोग किया जाये।

पाद टिप्पणियों का प्रयोग कुछ आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया जाता है-

- सामान्यतः इसका उपयोग निम्न कारणों से होता है, किसी कथन, तर्क या विचार बिंदु की विश्वसनीयता के लिए जिससे कि प्राविधिक ईमानदारी और अधिकाधिक स्त्रोतों का पता लग सके।
- शोध विषय की सामग्री से संबंधित तथ्यों की व्याख्या और पूर्णता के लिए जिससे की अनावश्यक सामग्री को पृथक किया जा सके।
- परस्पर संदर्भों को जो विभिन्न अनुच्छेदों में व्यक्त हुए हैं व्यक्त करने के लिए अथवा प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष उद्धरण जिस स्थान से लिया गया है उसकी सूचना देने के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है।

- पाद टिप्पणियाँ पाठक को पर्याप्त सूचना प्रदान कर देती है, जिससे वह शोध प्रबंध में आए विभिन्न स्त्रोतों का स्वतंत्र रूप से अध्ययन कर सके।

पाद टिप्पणियाँ देते समय जो बातें इसमें सम्मिलित की जाती हैं ये इस प्रकार हैं-

- टिप्पणी के स्त्रोत की सूचना जिसमें ग्रंथ के लेखक का नाम दिया जाता है।
- मूल ग्रंथ का नाम जिससे उद्धरण लिया गया है।
- उसका वही पृष्ठ जिससे संदर्भ लिया गया है।
- प्रकाशन का दिनांक।
- प्रकाशक और प्रकाशन के स्थान का नाम भी दिया जा सकता है किंतु यह आवश्यक नहीं है।

  पाद टिप्पणियाँ प्रबंध में किस स्थान पर रखी जायें, यह भी एक महत्वपूर्ण समस्या है। सामान्यतः इन्हें तीन स्थानों पर रखा जा सकता है-

- प्रत्येक पृष्ठ के नीचे जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है क्योंकि जहाँ पृष्ठ पर उद्धरण होता है, इस उद्धरण के अंत में ही संदर्भ की संख्या दी जाती है और इस संदर्भ के क्रम से ही नीचे पाद टिप्पणी दे दी जाती है, पृष्ठ के नीचे पाद टिप्पणी देते समय मूल प्रबंध से नीचे कुछ स्थान छोडकर पाद टिप्पणी दी जानी चाहिए।
- टंकण व्यवस्था की दृष्टि से पाद टिप्पणियाँ अध्याय के अंत में भी दी जा सकती है, किंतु प्रत्येक उद्धरण के संदर्भ का क्रम पूर्ण अध्याय में रखना आवश्यक है जिससे उसके आधार पर अध्याय के अंत में पाद टिप्पणियाँ दी जा सकें।
- शोध प्रबंध के अंत में भी उद्धरणों का संदर्भ क्रम संपूर्ण शोध प्रबंध में रखकर उसी आधार पर अंत में पाद टिप्पणियाँ दी जा सकती है।

आधुनिक शोध लेखन की प्रक्रिया के संदर्भ में प्रथम और तृतीय पद्धति की तुलना में पाद-टिप्पणी देने की दूसरी विधि वैज्ञानिक है जिसमें पहिली विधि की टंकन व्यवस्था और तीसरी विधि की संदर्भ अव्यवस्था का निराकरण हो जाता है. अतएव पाद टिप्पणियाँ प्रत्येक अध्याय में देना अधिक वैज्ञानिक है।

पाद टिप्पणियों की संख्या संपूर्ण अध्याय में क्रमबद्ध रूप से रखना चाहिए। कुछ शोध प्रबंधों में पाद टिप्पणियाँ पृष्ठ के नीचे देने पर प्रत्येक पृष्ठ के आधार पर होती है अथवा कहीं-कहीं संख्या के स्थान पर कुछ अन्य चिन्हों का प्रयोग भी किया जाता है। पाद टिप्पणियाँ देने की अनेक विधियाँ प्रचलित है-

- पाद-टिप्पणी में प्रत्येक स्त्रोत का संदर्भ देते समय लेखक का पूरा नाम दिया जाता है जिसमें नाम पहले उपनाम बाद में आता है।

- संदर्भ का विस्तार देते समय परिशिष्ट पूर्ण प्रक्रिया अपनाई जाती है जिसमें पूर्ण संदर्भ दिया जाता है इसके अंतर्गत मूल ग्रंथों का रेखांकन और लेखों का नाम भी दिया जाता है।
- पृष्ठ पर पहला संदर्भ देने के बाद अगर उसी लेखक और ग्रंथ का दूसरा संदर्भ दिया गया हो तो उसे अलग से लिखने के स्थान पर वही और पृष्ठ क्रमांक लिख देना ही पर्याप्त है।

पाद टिप्पणियाँ देने के समय कुछ विशेष समस्याएं भी उत्पन्न हो जाती है–

- पाद–टिप्पणी कभी–कभी एक पृष्ठ से अधिक की होती है जिससे पाठक को यह अनुभव हो कि पृष्ठ के नीचे अतिरिक्त सामग्री दी गई है।
- तालिका और चित्र के नीचे दी गई पाद–टिप्पणी में विभाजन रेखा खींचना आवश्यक नहीं।
- एक ही पृष्ठ पर कई छोटी पाद टिप्पणियाँ एक ही पंक्ति में भी उद्धरत की जा सकती है, किन्तु उस पंक्ति में पाद टिप्पणी की संपूर्ण जानकारी आ जानी चाहिए और वह दूसरी पंक्ति तक नहीं जाना चाहिए इससे स्थान की बचत होती है।
- किसी सहाय्यक स्रोत को उद्धरत करने वाली पाद–टिप्पणी में उद्धरण के मूल ग्रंथ और जिस सहाय्यक ग्रंथ के मूल उद्धरण उद्धरत किया गया है, उनकी सूचना आ जानी चाहिए जिसमें स्पष्ट रूप से ग्रंथ से उद्धरत लिखा गया हो।

पाद–टिप्पणी लेखन में बरती जाने वाली सावधानियां इस प्रकार हैं–

- पाद टिप्पणी शोध–प्रबंध के किसी विचार–बिंदु को विश्वसनीयता प्रदान करती हो।
- उसे शोध प्रबंध के प्रबंध लेखन में ही सम्मिलित कर लिया गया हो।
- उसकी प्रामाणिकता और तथ्यात्मकता की जांच कर लेनी चाहिए।
- पाद–टिप्पणी अंकित करने की जिस प्रविधि को शोधार्थी ने अपनाया है, वह शोध प्रबंध के प्रारंभ से अंत तक उसी प्रविधि का प्रयोग करे जिससे उसमें वैज्ञानिकता और एकरूपता रहे।
- पाद–टिप्पणी संक्षिप्त, किंतु स्पष्ट हो। संक्षिप्तता के लिए उसकी स्पष्टता समाप्त नहीं की जाने चाहिए.
- पाद–टिप्पणी में एक पृष्ठ के नीचे जिसप्रकार उन्हें स्थान देकर अंकित किया गया है उसी तरह सारे शोध प्रबंधों में रखना चाहिए तथा अंत में ही एक पूर्ण विराम का उपयोग पर्याप्त नहीं है। अंग्रेजी में पाद टिप्पणी एक टंकित अंतराल से देने की सुविधा रहती है, किन्तु हिंदी में अक्षरित विधि के कारण यह संभव नहीं है।
- एक पाद–टिप्पणी एक पृष्ठ के बाद आने वाले पृष्ठों पर भी चलती रह सकती है किन्तु इस प्रकार की लंबी पाद–टिप्पणी देने के स्थान पर इसे एक अलग परिशिष्ट में देना उचित है।

3.3.3.8 परिशिष्ट :-

परिशिष्ट से तात्पर्य है विशिष्ट छूटा हुआ अंश। विमर्श या टिप्पणी जिसका अंशतः उपयोग शोध-प्रबंध में क्रम के बीच में हुआ हो किंतु स्थानाभाव या प्रबंध के प्रवाह में अवरोध उत्पन्न होने के कारण पूरे न दिए गए हो, 'बाद में शोध ग्रंथ के अंत में परिशिष्ट के रूप में दिये जाते हैं। परिशिष्टों की संख्या शोध-प्रबंध की विषय व्यापकता, प्रबंध का स्वरूप तथा आवश्यकता पर निर्भर होती हैं। शोध प्रबंध में उन्हीं तर्कों तथा प्रमाणों का समावेश करना चाहिए जो वैज्ञानिक, उपयुक्त और साथ ही शोध-विषय से संबद्ध हो। कभी-कभी संबंद्ध सामग्री मूल शोध को जटिल भी बना सकती है, अतएव उसे जटिल बनाने वाले सहायक तथ्यों को परिशिष्ट के रूप में रखना उपयुक्त होता है, क्यों कि इससे शोध प्रबंध में जटिलता भी नहीं आती और तर्क की दृढता भी बनी रहती है।

पाठक परिशिष्ट का वह विशेष पृष्ठ अवलोकन कर सकता है जिससे उसकी जिज्ञासा पूर्ण हो सके तथा उसकी जटिलता का निराकरण हो सके। शोध-प्रबंध में प्रत्येक परिशिष्ट का संदर्भ देना चाहिए। इसके अतिरिक्त कुछ तकनीकी शब्दों की व्याख्या भी परिशिष्ट में दी जा सकती है। इसी प्रकार अ, ब, क, ड, आदि नामों तथा 1, 2, 3, 4 संख्याओं से परिशिष्टों को क्रमबद्ध रूप से दिया जा सकता है। परिशिष्ट देने के स्थान :-

परिशिष्ट देने के सामान्यतः दो स्थान होते है। जैसे-

1. अंतिम अध्याय और संदर्भ सूची के बीच में रखना।
2. संदर्भ-सूची के उपरांत रखना।

अर्थात परिशिष्ट के स्थान के संबंध में कोई विशेष नियम नहीं है, शोध-कर्ता अपनी सुविधा के अनुसार उपरोक्त में से किसी एक स्थान पर परिशिष्ट रख सकता है।

प्रत्येक परिशिष्ट को एक नए पृष्ठ से ही आरंभ करना चाहिए और परिशिष्ट का शीर्षक उससे विहित सामग्री से संबंद्ध होना चाहिए।

इस प्रकार शोध-प्रबंध में परिशिष्ट का उपक्रम रखना शोध-प्रविधि एवं प्रक्रिया का आवश्यक अंग है।

3.3.3.9 संदर्भसूची :-

शोध में जिन पुस्तकों, को शोध-पत्रिकाओं से सामग्री संग्रहीत की जाती है उसे ग्रंथ सूची या संदर्भ सूची में देते हैं। उपसंहार के ठीक बाद दी जाती है। यह शोध- प्रबंध का एक आवश्यक अंग है। इसके उपर 'ग्रंथ सूची' या 'संदर्भ सूची' शीर्षक डालते हैं तथा इसका पृष्ठांकन अंतिम अध्याय अर्थात उपसंहार के अंतिम पृष्ठ से आगे चलता है।

ग्रंथ सूची कई प्रकार की हो सकती है। एक वह जिसमें केवल वे ही ग्रंथ सम्मिलित हों जिनमें शोध के लिए सामग्री ली गई है और दूसरी वह जिसमें वे सभी ग्रंथ उल्लेखित हों जिनसे साक्षात या असाक्षात रूप से

सहायता ली गई है। यह प्रथम प्रकार की ग्रंथ सूची से अधिक विस्तृत होगी। तिसरी चुने हुए ग्रंथों की सूची। इसमें केवल वही ग्रंथ सम्मिलित होंगे जो साक्षात रूप से शोध-कार्य से संबंधित हैं। ग्रंथ सूची का एक और भी प्रकार है। इसमें न केवल ग्रंथ की सूची होती है बल्कि उन पुस्तकों आदि की विषय-वस्तु पर संक्षिप्त टिप्पणी भी दी जाती है जो शोध कार्य में सहाय्यक हुई है। इसे सटिप्पणी ग्रंथ सूची कह सकते हैं।

ग्रंथ सूची के लिए 'संदर्भ सूची' 'संदर्भिका' आदि शीर्षकों का प्रयोग हो सकता है। कोई भी शीर्षक क्यों न हो इसे पृष्ठ के ऊपरी भाग के मध्य में रखते हैं, अन्य शीर्षक की तरह इसे रेखांकित नहीं करते।

ग्रंथ सूची में ग्रंथ, शोध-प्रबंध पाण्डुलिपि आदि सभी दिए जाते हैं जो शोध- कार्य मे सहायक हुए हैं। इन विभिन्न प्रकार के सामग्री स्रोतों को कोटिबद्ध करके दर्शाना चाहिए। उदाहरण के लिए, पुस्तकों को एक स्थान पर, लेखों आदि को एक जगह। ग्रंथ सूची का एक और तरीके से विभाजन किया जा सकता है। वे ग्रंथ जिनसे प्रमुख रूप से सामग्री ली गई है या जो मूल आधार हैं अनुसंधान के, उन्हें 'मूलग्रंथ' उपशीर्षक के अंतर्गत रखा जा सकता है या 'उपजीव्य ग्रंथ' उपशीर्षक के अंतर्गत रखा जा सकता है. अन्य ग्रंथों को 'सहायक ग्रंथ' या 'उपकारक ग्रंथ' उपशीर्षक के अंतर्गत।

ग्रंथ सूची में ग्रंथों को उनके लेखकों के कुल नामों के वर्णक्रम से रखते हैं। कुल नाम के बाद मुख्य नाम आता है। पाद टिप्पणी से यहाँ भेद है। पाद टिप्पणी में लेखक का मुख्य नाम पहले और कुल नाम बाद में आता है। इसका कारण यह है कि पाद-टिप्पणी का प्रयोजन विशेष स्थल को सूचित करना है। जहाँ से कोई विचार आदि लिया गया है। जबकि ग्रंथ सूची का उद्देश्य संपूर्ण ग्रंथ की ओर संकेत करना है।

ग्रंथ सूची तैयार करते समय निम्न जानकारी देना आवश्यक है- लेखक का नाम, ग्रंथ का नाम, प्रकाशन वर्ष, प्रकाशन स्थान तथा प्रकाशन। जैसे- अंतोनोवा, को. अ. भारत का इतिहास, 1984 प्रगति प्रकाशन, मास्को. कविराज, गोपीनाथ, भारतीय संस्कृति और साधना, 1963, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना।

यदि शोध-पत्रिका के लेख से सहायता ली गई है उसे ग्रंथ सूची में देना है तो प्रकाशन स्थल देने की आवश्यकता नहीं। हां, शोध-पत्रिका की खंड संख्या और उन पृष्ठों को देना जरुरी है जहाँ वह लेख आया है। जैसे-

शर्मा. आर. के. धर्म और विज्ञान विश्वभारती, खंड-5,1968 पृ-75-82

यदि सभी लेखिका हो तो उसका पूरा नाम पहले दिया जाएगा, बाद में कुल नाम।

संदर्भ पुस्तक के खण्डों से संबंधित हो तो पुस्तक के सभी खंड ग्रंथ सूची में देने चाहिए। ग्रंथ और शोध-पत्रिकाओं के नाम रेखांकित करने चाहिए।

पुस्तक के दो लेखक होने पर प्रमुख लेखक का नाम पहले आयेगा। लेकिन यदि एक ही लेखक की कई कृतियों को ग्रंथ सूची में देना है तो उन्हें प्रकाशन वर्ष के क्रम से देना चाहिए। यथा-

अवस्थी. एस. एन. तथा शुक्ला. पी. एच. भारत की सांस्कृतिक धरोहर, 1975 चौखंबा प्रकाशन विद्याभवन, वाराणसी।

तिवारी आर. एस. काव्यचिंता, 1955, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

तिवारी आर. एस. काव्य दर्शन, 1962 चौखंबा विद्याभवन, वाराणसी।

एक ही वर्ष में प्रकाशित होने वाली कृतियों को ग्रंथ सूची में देना है तो प्रकाशन वर्ष के साथ-साथ अ, ब, स उसी क्रम से डालना चाहिए जिस क्रम से ग्रंथों का उल्लेख मूलभाग में हुआ है।

यदि किसी लेखक की स्वतंत्र रचनाएँ भी हैं और किसी अन्य के साथ भी हैं तो ऐसी स्थिति में स्वतंत्र रचनाएँ पहले ग्रंथ सूची में आयेगी। बाद में अन्य लेखक के साथ वाली रचना। जैसे-

माथुर, एस. भारतीय मुद्रा स्फीति, 1980 चौखंबा विद्याभवन, वाराणसी।

माथुर.एस. तथा शर्मा, बी. भारतीय अर्थशास्त्र, 1985, मोतीलाल, बनारसीदास, दिल्ली।

जहाँ प्रमुख लेखक के साथ अलग-अलग सहलेखक हो वहाँ पुस्तकों की प्रविष्टि करते समय सहलेखकों के कुल नाम को वर्णक्रम से रखना चाहिए। यथा-

माथुर, एस. ..., तथा शर्मा, आर. ... भारतीय अर्थशास्त्र, 1985, चौखंबा विद्याभवन, वाराणसी।

माथुर, एस. तथा त्रिवेदी, बी. भारतीय अर्थशास्त्र के सिद्धांत, 1987, चौखंबा विद्याभवन, वाराणसी।

संपादित लेख यदि स्वयं लेखक द्वारा लिया गया है या किसी अन्य के द्वारा, ऐसी स्थिति में दो तरीके अपनाए जा सकते हैं- पहला जहाँ लेखक और उसके लेख तथा संपादक और संग्रह की जानकारी दी जाये, दूसरे लेखक तथा लेखकों तथा संपादक और उसके संग्रह को दो पृथक प्रविष्टियों द्वारा ग्रंथ सूची में दर्शाया जाये। इसमें इसका तरीका अधिक मान्य है, क्योंकि यदि उसी संग्रह के एक से अधिक लेखों की ओर संकेत करना है तो बार-बार संग्रह तथा तत्संबंधित जानकारी बार-बार नहीं देना पड़ती. साथ ही सभी लेखकों को वर्णक्रम से रखा जा सकता है। नमूना नीचे प्रस्तुत है-

शास्त्री चतुरसेन, धर्म और मानवता

(चतुर्वेदी, एस. द्वारा सं.1965, पृष्ठ- 15-20)

यदि कृति का लेखक अज्ञात हो तो उसे ग्रंथ सूची में कृति के वर्ण क्रम से रखा जायेगा। यदि कोई लेखक अपने कत नाम से रचना करता है तो उसे कत नाम से ही वर्णक्रम में सम्मिलित करना चाहिए। किसी समिति या संस्था की कार्यवाही में छापे लेख को ग्रंथ सूची में देते समय समिति या संस्था को रेखांकित कर देना चाहिए।

3.3.4 शोध प्रबंध टंकन :-

शोध प्रबंध लेखन पूरा हो जाने के बाद नियमतः वह टंकित रूप में प्रस्तुत किया जाता है। विश्वविद्यालय के पीएच.डी. विभाग तथा बाह्य परीक्षकों के पास परीक्षणार्थ शोध-प्रबंध की प्रतियाँ प्रस्तुत करते समय विधिवत उसको टंकित किया जाता है। अतएव शोधार्थी को टंकन की तकनीक और औपचारिकता से भली-भान्ति परिचित होना चाहिए।

वास्तव में शोध प्रबंध का टंकन एक विशेषज्ञ का काम है। प्रबंध का टंकन बड़ी सतर्कता और दक्षतापूर्वक करना चाहिए। शोधार्थी की जिम्मेदारी है कि टंकन के लिए शोध-प्रबंध टंकक के पास देते समय हस्तलिखित प्रति पूर्णतया शुद्ध और सुस्पष्ट हो। प्रबंध लेखन में अध्ययों के शीर्षकों तथा उपशीर्षकों के स्थान, उद्धरण, पाद-टिप्पणियाँ, विरामचिन्ह, संदर्भिका आदि में विशेष सतर्कता बरतनी चाहिए, जिससे टंकक को कोई दुविधा का या संदेह न रहे।

शोध प्रबंध के टंकन में त्रुटियाँ या अशुद्धियाँ रह जाने पर प्राय: शोधार्थी टंकन पर इसका दोषारोप मढ़ देते हैं, जो सर्वथा गलत है। शोध-लेखन टंकन में होने वाली वर्तनीगत अशुद्धियों की जिम्मेदारियाँ सर्वथा शोधार्थी की होती है। वास्तव में एक तो व्यावसायिक वृत्ति का होता है और दूसरे यदि वह हिंदीतर भाषी हो तो टंकन की वर्तनीगत अशुद्धियों से वह अनुभिज्ञ होता है। अतएव वर्तनीगत तथा व्याकरणगत अशुद्धियाँ होगी ही। इसके लिए शोधार्थी को सावधान रहना चाहिए।

इस संदर्भ में शोधार्थी को चाहिए कि शुद्धरूप में मूल हस्तलिखित प्रति टंकित हो जाने पर वह टंकित की गयी प्रति और हस्तलिखित मूल प्रति को मिलाकर स्वयं अवधानपूर्वक पढ़े और लक्षित अशुद्धियों को उसी पन्ने पर दुरुस्त कर फिर से लिखे। उसके बाद दुरुस्त की गई या परिकृत की गई टंकित प्रति के आधार पर नयी शुद्ध प्रति टंकित की जाए। फिर वह शुद्ध प्रति स्वयं एक बार जाँच ले और साथ ही अपने शोध-निर्देशक तथा भाषातज्ञ से भी अवलोकित करा ले। व्याकरण एवं वर्तनीगत अशुद्धियाँ परिनिष्ठित या सौष्टवपूर्ण भाषा का दूषण माना जाता है और यह दूषण भाषा-विषय तथा निष्कर्षों को हृदयंगम करने में बाधा पहुँचा सकता है।

वर्तमान युग ज्ञान, विज्ञान और तंत्रज्ञान का है। अत: अध्येता, शोधार्थी या ज्ञानार्थी को स्वयं संगणक परिचालन, संगणक टंकन (डी. टी. पी.) का भली-भान्ति पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए। कई ऐसे शोधार्थी हैं, जो स्वयं अपना अध्ययन-लेखन या शोधलेखन संगणक पर टंकित करते हैं। टंकनविषयक स्वयंपूर्णता से व्याकरण-निरक्षर टंकक पर निर्भर रहने की कोई आवश्यकता नहीं होगी।

प्रबंध टंकन के लिए 22 सें.मी. 28 सें. मी. आकार के बॉण्ड पेपर का उपयोग करना उत्तम होता है। यह कागज पर्याप्त सफेद और टिकाऊ होना चाहिए।

मुख्य लेखन में दो पंक्तियों के बीच दोहरी जगह (डबल स्पेस) छोड़कर टंकन करना चाहिए। कागज के उपरी भाग पर 03 सेंटीमीटर, कागज के निम्न भाग पर 03 सेंटीमीटर बायी ओर 04 सेंटीमीटर और दाहिनीओर 2.5 सेंटीमीटर 1 हाशिया छोड़कर टंकन करना चाहिए।

नए परिच्छेद का आरंभ 9 स्पेस छोडकर करना चाहिए। यथा संभव पंक्ति के अंत में आने वाले शब्दों को तोड़ना नहीं चाहिए। पंक्ति के अंत में कोई शब्द पूरा न बैठने पर उसे निम्न पंक्ति में टंकित करना चाहिए। पंक्ति के अंत में आने वाले संयुक्त शब्दों को भी बीच में नहीं काटना चाहिए।

किसी अध्याय या मुख्य शीर्षक या उपशीर्षक का आरंभ पृष्ठ की अंतिम कुछ पंक्तियों में करना असंगत एवं असुंदर दिखता है। इसी तरह किसी अध्याय का अंत भी पृष्ठ की पहली पंक्ति में करना अनुचित है।

मुख्य शीर्षकों को सामान्यतः पंक्ति के मध्य में और उपशीर्षकों को पृष्ठ के बाएँ किनारे से (हाशिया छोड़कर) टंकित किया जाना चाहिए।

वस्तुत: टंकनविषयक उपरोक्त संकेतों एवं सुझावों का पालन करने पर वह शोध-प्रबंध पढ़नीय होगा और उसका रूप भी रोचक होगा।

3.3.5 वर्तनी-सुधार या भाषा-शुद्धिकरण :-

वर्तनी सुधार को वर्तनी-संस्कार या भाषा-शुद्धीकरण कहा जा सकता है। वास्तव में शुद्ध भाषा लेखन किसी भी पाठ की जान होता है। शुद्ध भाषा आदर्श, परिनिष्ठित, साधु या सुष्ठु भाषा का आत्म-तत्त्व कहा जा सकता है। अशुद्ध लेखन से बड़ा अन्य कोई दोष नहीं होता। वर्तनीगत अशुद्धियों से रहित शोध-प्रबंध अपनी वैज्ञानिक सूक्ष्मता या सुव्यवस्था तथा कलात्मक सौष्ठव के कारण विशेष महत्त्व प्राप्त करता है। भाषा, अभिव्यंजना तथा उपस्थापन कला का महत्त्वपूर्ण और प्रभावी माध्यम है। अशुद्ध भाषा अर्थाकलन और सुस्पष्टता में बाधक होती है।

अनुसंधान के मूल तत्वों में से एक महत्वपूर्ण तत्व है, सुष्ठु अर्थात सौष्ठवपूर्ण प्रस्तुति शैली। अनुसंधान यद्यपि मूलत: एवं स्वरूपतः विज्ञान है, फिर भी सुगम्य, सुस्पष्ट, अर्थवाही तथा विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से कला भी है। अर्थात शोध-प्रस्तुति की शैली सौष्ठवपूर्ण होनी चाहिए। सौष्ठव तात्पर्य है सुंदर, सुबोध, सरल, परिनिष्ठित, सशक्त, व्याकरणशुद्ध एवं कसावपूर्ण भाषाशैली। इस दृष्टि से शोध की भाषा साफ सुथरी होनी चाहिए। वस्तुतः 'शोध' की व्युत्पत्ति 'शुध' धातु से हुई है। 'शुध' का अर्थ स्वच्छ, साफ-सुथरा अर्थात परिष्कृत, विकार-रहित है। इस प्रकार 'शोध' शब्द के उपर्युक्त व्युत्पत्यर्थ को स्वीकार करने पर शोध-भाषा का व्याकरण शुद्ध या वर्तनी शुद्ध होना नितांत आवश्यक है।

व्याकरण भाषा का नियामक, संस्कारक, तथा संशोधक होता है। ज्ञान-विस्तार तथा ज्ञानोपलब्धि शोध की सर्वप्रमुख शर्त है। अतएव शोध की भाषा अर्थसमृद्ध, अर्थवाही एवं अर्थग्राही होनी चाहिए। भाषा में व्याकरणगत अशुद्ध या वर्तनी की गलतियों की भरमार होने पर अर्थग्रहण में व्यवधान आता है। संप्रेषण की दुर्बलता के कारण शोध-निष्कर्षों तथा विवेचित विषय वस्तु का वांछित प्रभाव नहीं पड़ सकता। भाषा केवल

भावों एवं विचारों की प्रकाशिका ही नहीं है, अपितु वह अनुसंधेय सत्य, मौलिकता एवं नए सिद्धांतों की स्थापना का प्रभावी औजार भी है। इस दृष्टि से शोध-प्रबंध की भाषा व्याकरण शुद्ध तथा वर्तनीगत भ्रांतीयों मुक्त होनी चाहिए। तभी शोध-प्रबंध साध्य तक पहुँचने में वह सफल सिद्ध होता है। अत: शोध विषय की स्पष्टता, प्रांजलता, निर्बाध संप्रेषणीयता की दृष्टि से शोधार्थी को व्याकरणगत शुद्धता तथा वर्तनीगत चुस्ती-दुरुस्ती हेतु एक सजग प्रहरी की तरह भूमिका निभानी होगी।

वस्तुतः अनुसंधान एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है। वैज्ञानिक प्रक्रिया में वस्तुनिष्ठता, तर्क तर्कसंगता महत्वपूर्ण होती है। अत: परिमार्जित, परिष्कृत शोध भाषा में वर्तनी शुद्धता की दृष्टि से शोधार्थी को अवश्य ही सतर्कता बरतनी चाहिए।

जब शोध-प्रबंध परीक्षणार्थ बहि:स्थ परीक्षकों के पास प्रेषित किए जाते हैं, तब परीक्षकों-विशेषज्ञों को शोध-प्रबंध के प्रतिवेदन में शोध लेखन की भाषा तथा प्रतिपादित विषय-वस्तु के सामर्थ्य बिन्दुओं तथा अशक्त बिन्दुओं को स्पष्टतः निर्देशित करना पडता है. इस दृष्टि से शोधार्थी को शोध-प्रबंध की भाषा के परिमार्जन, शुद्ध वर्तनी अर्थात शुद्ध भाषा के प्रति दत्त-चित्त रहना चाहिए।

व्याकरण शुद्ध भाषा के अंतर्गत संयुक्ताक्षर, ह्रस्व, दीर्घ ईकार, ऊकार, एक मात्रा, दो मात्राएँ, एक मात्रा और पाई, दो मात्राएँ और पाई, हलंत अक्षर, अनुस्वार, नुक्ता आदि के प्रति शोधार्थी दक्ष एवं भ्रममुक्त रहना चाहिए। यथोचित वर्तनी सुधार हेतु शोधार्थी को अपने पास नित्यतः विविध प्रकार के शब्दकोश, भाषाकोश, पारिभाषिक शब्दकोश रखने चाहिये।

विराम चिन्हों के प्रयोग :-

शोध-लेखन में विभिन्न विरामचिन्हों के स्वल्पविराम (,), अल्पविराम (;), पूर्णविराम (श्र) आदि का यथास्थान प्रयोग किया जाना अत्यावश्यक होता है; क्यों कि इसका पालन न करने से अर्थ परिवर्तन का संकट उपस्थित हो सकता है। जैसे-

रोको मत, जाने दो।

रोको, मत जाने दो।

उपर्युक्त दोनों वाक्यों में अल्पविराम का स्थान परिवर्तित हो जाने से अर्थ अपने मूल अर्थ से विपरीत हो गया है।

अवतरण चिन्हों का प्रयोग:-

शोधार्थी को अपने मत के पुष्टर्थ तथा तथ्यों को प्रमाणित करने हेतु प्रस्तुत किए गए उद्धरण या वक्तव्य यथावश्यक इकहरे या दोहरे अवतरण चिन्हों में ध्यानपूर्वक आबद्ध करने चाहिए।

अंकों, अक्षरों या बुलेटों का प्रयोग :-

जहाँ किसी बात को बिंदुओं में समझाया जाना हो वहाँ पर क्रमांको (1,2,3), अक्षरों (अ, ब, क) अथवा (क, ख, ग) या बुलेटों () का प्रयोग किया जाना चाहिए। अंको अथवा अक्षरों का प्रयोग तब किया जाता है, जब बिंदुओं में क्रमबद्धता होनी आवश्यक होती है। बुलेटों का प्रयोग तब किया जाता है जब

प्रत्येक बिंदु का महत्व एक जैसा होता है और उनमें क्रमबद्धता जैसी कोई बात नहीं होती। कभी-कभी अत्याधिक बिंदु हो जाने पर बुलेटों के स्थान पर अंकों अथवा अक्षरों का प्रयोग करना ही श्रेयस्कर होता है। चार से अधिक बिंदु होने पर प्राय: अंकों का ही प्रयोग करना चाहिए।

3.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :-

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए.

   1. रुपरेखा के लिए अंग्रेजी में .... शब्द का प्रयोग किया जाता है।

      1. Study 2. Research 3. Sruvey 4. Synopsis

   2. .... ही शोध-कार्य की दिशा, गति एवं लक्ष्य का निर्धारक होता है।

      1. विषय 2. शीर्षक 3. रुपरेखा 4. सामग्री

   3. .... एक वैज्ञानिक प्रविधि का प्रारंभिक सोपान है।

      1. भूमिका लेखन 2. अनुक्रमणिका 3. संदर्भ 4. शीर्षक निर्धारण

   4. उपसंहार शोध प्रबंध का .... अध्याय होता है।

      1. प्रथम 2. द्वितीय 3. अंतिम 4. इनमें से नहीं

   5. पाद-टिपण्णी से तात्पर्य है।

      1. उद्धरण 2. परिशिष्ट 3. संदर्भ 4. तलटीप

   6. नए परिच्छेद का आरंभ.... स्पेस छोड़कर करना चाहिए।

      1. 5 2. 7 3. 8 4. 9

   7. .... आर्थाकलन और सुस्पष्टता में बाधक होती है।

      1. सारगर्भितभाषा 2. मानक भाषा 3. अशुद्ध भाषा 4. सहायक भाषा

   8. .... के लिए सामान्यत: प्रस्तावना यह पर्यायी शब्द प्रचलित है।

      1. उपसंहार 2. शीर्षक निर्धारण 3. भूमिका 4. रुपरेखा

   9. डॉ. विनयमोहन शर्मा ने डॉ. प्रभात के शोध प्रबंध ....को रुपरेखा के रूप में प्रस्तुत की है।

      1. मीराबाई 2. मन्नू भंडारी 3. महादेवी वर्मा 4. रमणिका गुप्ता

   10. .... को शरीर की रीढ़ की हड्डी भी कहा जा सकता है।

       1. उपसंहार 2. शीर्षक निर्धारण 3. भूमिका 4. रुपरेखा

   11. प्रबंध लेखन प्रक्रिया में प्रथम स्थान .... आता है।

1. उपसंहार 2. रुपरेखा 3. भूमिका 4. शीर्षक निर्धारण

12. .... प्रबंध लेखन का भाग नहीं होती बल्कि प्रबंध की दिशा का निर्देश होती है।

1. रुपरेखा 2. शीर्षक निर्धारण 3. भूमिका 4. उपसंहार

13. टंकण व्यवस्था की दृष्टि .... अध्याय के अंत में भी दी जा सकती है।

1. परिशिष्ट 2. रुपरेखा 3. पाद टिप्पणियाँ 4. वर्तनी

14. ....के लिए शीर्षक-अभिधान तथा शीर्षक-संरचना आदि पर्यायवाची नाम हैं।

1. प्रस्तावना 2. रुपरेखा 3. भूमिका 4. शीर्षक निर्धारण

2. उचित मिलन कीजिए।

1. अ. संदर्भ 1. ढांचा

ब. रुपरेखा 2. खोज

क. अनुसन्धान 3. वर्णित प्रसंग

पर्याय 1. अ-2 ब-3 क- 1 2. अ-3 ब-2 क- 1

3. अ-1 ब-3 क-2 4. अ-3, ब-1 क- 2

2. अ. शीर्षक 1. समाप्ति

ब. परिशिष्ट 2. हेडिंग

क. उपसंहार 3. छूटा हुआ

पर्याय 1. अ- 2 ब- 3 क- 1 2. अ-3 ब-2 क- 1

3. अ-1 ब- 3 क-2 4. अ- 2 ब- 1 क- 3

3. सही गलत की पहचान कीजिए।

1.

कथन 1. विषय का चयन होने पर उसका शीर्षक आवश्यक नहीं होता।

कथन 2. शोध उपाधि का अंतिम चरण मौखिकी (वायवा) है।

पर्याय 1. दोनों सही है।

2. दोनों गलत है।

3. कथन 1 सही और कथन दो गलत है।

4. कथन 1. गलत और कथन दो सही है।

2.

कथन 1. भूमिका शोध प्रबंध की दिशा का निर्देश करती है।

कथन 2. भूमिका सामग्री संकलन के विविध स्त्रोतों का निर्देश नहीं करती।

पर्याय-1. दोनों सही है।

2. दोनों गलत है।

3. कथन 1 सही और कथन दो गलत है।

4. कथन 1. गलत और कथन दो सही है।

3.

कथन 1. अक्षरों का प्रयोग तब किया जाता है जब बिन्दुओं में क्रम बद्धता होनी आवश्यक होती है।

कथन 2. चार से अधिक बिंदु होने पर प्राय: अंकों का ही प्रयोग करना चाहिए।

पर्याय-1. दोनों सही है।

2. दोनों गलत है।

3. कथन 1 सही और कथन दो गलत है।

4. कथन 1. गलत और कथन दो सही है।

4.

कथन 1. ज्ञानोपलब्धि शोध की सर्वप्रमुख शर्त है।

कथन 2. शोध की भाषा अर्थ समृद्ध, अर्थवाही एवं अर्थग्राही होनी चाहिए।

पर्याय-1. दोनों सही है।

2. दोनों गलत है।

3. कथन 1 सही और कथन दो गलत है।

4. कथन 1. गलत और कथन दो सही है।

3.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

अनुसंधान : शोध, खोज, अन्वेषण,

शीर्षक: लेखों के ऊपर दिया जानेवाला नाम, हेडिंग

रुपरेखा: ढाँचा, किसी कार्य के मुख्य बिंदु

परिशिष्ट: छूटा हुआ, बाकी बचा हुआ

उपसंहार: समाप्ति, लेख के अंत में दिए जानेवाला सार

संदर्भ: वर्णित प्रसंग, विवेचनात्मक ग्रंथ

स्त्रोत : भंडार, आगार, उद्भव, धारा, झरना,

3.6 स्वयं अध्ययन के प्रश्नों के उत्तर।

उत्तर 1) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. synopsis	2. शीर्षक	3. अनुक्रमाणिका	4. अंतिम
5. तलटीप	6.9	7. अशुद्ध भाषा	8. भूमिका
9. मीराबाई	10. रुपरेखा	11. भूमिका	12. भूमिका
13. पाद-टिप्पणियाँ	14. शीर्षक निर्धारण		

2. उचित मिलान

1. पर्याय- 4   2. पर्याय- 1

3. सही गलत

1. पर्याय - 4 कथन 1 गलत कथन 2 गलत
2. पर्याय- 3 कथन 1 सही कथन 2 गलत
3. पर्याय- 1 दोनों सही
4. पर्याय- 1 दोनों सही

3.7 सारांश :-

शोध-प्रबंध की संरचना अनुसंधान का सर्व प्रमुख तत्व है। विषय-चयन, रुपरेखा निर्माण और सामग्री संकलन किया ही जाता है कि शोध प्रबंध लिखा जा सके। इस शोध प्रबंध को लिखने में शोध के नियमों का भी पालन करना पड़ता है। जिसमें शीर्षक देने के साथ ही उद्धरण और टिप्पणियाँ देना भी आवश्यक है, साथ ही संदर्भ ग्रंथों की जानकारी देना भी आवश्यक है, इसी से शोध प्रबंध लेखन में सहायता मिलती है। अनुसंधान अपने में ही एक प्रबंधात्मक व्यवस्था है जिसमें शोध प्रबंध का लेखन करते हुए क्रमबद्ध संयोजन आवश्यक होता है।

शोध प्रबंध लेखन की प्रक्रिया में आधार ग्रंथ, संदर्भ ग्रंथ और सहायक ग्रंथों की प्रमुख भूमिका होती हैं। शोध-प्रबंध के अंत में शोध-सारांश संक्षेप में लिखा जाता है। शोध प्रबंध लेखन में मूल पुस्तक के संदर्भ देना ही पर्याप्त नहीं होता बल्कि विभिन्न स्त्रोतों से भी सामग्री जुटाना आवश्यक है।

शीर्षक निर्धारण :-

विषय का चयन होने पर उसका शीर्षक भी आवश्यक होता है। सही शीर्षक का निर्धारण विषय को गति प्रदान करता है। शीर्षक निर्धारण के लिए तीन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है- i) शीर्षक स्पष्ट हो, ii) उसका क्षेत्र और सीमा विशिष्ट रुप से निर्धारित हो, iii) अध्ययन की दृष्टि से वह व्यंजित होता है। शीर्षक जब तक स्पष्ट नहीं होगा तब तक विषय भी स्पष्ट नहीं होता शीर्षक निर्धारण में स्पष्टता के साथ आकर्षकता भी हो। शीर्षक निर्धारण में शोध की दिशा और दृष्टि की व्यंजना का भी व्यापक महत्व होता है।

रूप रेखा निर्माण : (शोध कार्य का विभाजन, अध्याय, उपशीर्षक और अनुपात)

शोध विषय का चयन करने के उपरांत रूपरेखा का निर्माण करना आवश्यक होता है क्योंकि इसमें वह आधार निहित रहता है, जिसके अंतर्गत शोध कार्य किया जाना है और सामग्री संकलन के लिए भी इसे आधार मिलता है. सामग्री संकलन करने के बाद भी रूपरेखा बदलनी पड़ सकती है। कई विश्वविद्यालयों में शोध पंजीयन के समय रूपरेखा के साथ उसे प्रस्तुत करना अनिवार्य है पर अब इस दृष्टिकोण में परिवर्तन हो रहा है। यह विचार है कि रूपरेखा पहले बनाने से वैज्ञानिकता नहीं रहती क्योंकि शोध कार्य करते समय यह संभव है कि जो रूपरेखा बनाई गई है उसमें शोध की दृष्टि से परिवर्तन करना आवश्यक है। डॉ. विनयमोहन शर्मा ने डॉ. प्रभात के शोध प्रबंध 'मीराबाई' की रूपरेखा आदर्श रूप रेखा के रूप में प्रस्तुत की है. अत: रूपरेखा को शरीर की रीढ़ की हड्डी भी कहा जा सकता है जिस पर सारा शोध ग्रंथ टीका रहता है। बहुत सा शोध औपचारिक रूपरेखा के निर्माण के आधार पर ही किया जा रहा है। शोध ग्रंथ प्रस्तुत करते समय अधिकांश रूपरेखा बदल जाती है, यह चिंताजनक स्थिति है। रूपरेखा का निर्माण एक वैज्ञानिक प्रयोग है और आदर्श रूपरेखा बनाते समय एक वैज्ञानिक के समान ही अनुसंधाता को शोध की प्रयोगशाला में अपने निर्देशक के साथ संवाद स्थापित कर रूपरेखा का निर्माण करना चाहिए, तभी उसके अध्याय, शीर्षक और उपशीर्षक का निर्माण होगा और उसका अनुपात भी वैज्ञानिक रहेगा। क्योंकि शोध कार्य के विभाजन का वैज्ञानिक आधार रूपरेखा प्रबंधन में ही निहित है।

शोध प्रबंध लेखन प्रणाली :-

भूमिका लेखन :-

भूमिका के लिये सामान्यतः प्रस्तावना, प्रास्ताविक, प्राक्कथन, वक्तव्य, पृष्ठभूमि, पूर्वपिटिका आदि पर्यायवाची शब्द प्रचलित है। शोध प्रबंध में सर्वप्रथम स्थान भूमिका का होता है वैसे संपूर्ण शोध प्रबंध तयार होने के पश्चात ही भूमिका लिखी जाती है प्रबंध लेखन प्रक्रिया में प्रथम स्थान भूमिका का आता है किंतु प्रबंध लेखन की सामग्री अलग होती है। भूमिका मूल प्रबंध से अधिक संबद्ध नहीं होती। इस कारण भूमिका

के स्थान के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। भूमिका को मूल प्रबंध का अध्याय बनाना उचित नहीं है। भूमिका प्रबंध का भाग नहीं होती है बल्कि प्रबंध की दिशा का निर्देश होती है। उसमें शोध के अन्य अध्यायों के साथ-साथ क्रम का निर्वाह नहीं होता है।

अनुक्रमणिका :-

अनुक्रमणिका एक वैज्ञानिक प्रविधि का प्रारंभिक सोपान है। स्वाभाविक रूप से शोधग्रंथ की अनुक्रमणिका भी एक स्वीकृत वैज्ञानिक पद्धति है, अत: कोई भी शास्त्रीय ग्रंथ अनुक्रमणिका के बिना पूरा नहीं समझा जा सकता। अनुसंधान प्रविधि के जो क्रमबद्ध विविध सोपान है, उन्हें तर्कसंगत क्रमानुसार अनुक्रमणिका में पृष्ठांकनसहित दर्ज करना पडता है। अनुक्रमणिका संपूर्ण शोध-प्रबंध की अंतरंग परिचयिका होती है। अनुक्रमणिका में संपूर्ण शोध-प्रबंध का पर्यवेक्षण हो जाता है।

अध्याय विभाजन:-

अध्ययन की सुविधा तथा शोध-विषय के सुचारु प्रतिपादन और विषय के क्रमबद्ध एवं प्रभावशाली निरूपण के लिए शोध-प्रबंध का उचित अध्यायों तथा अध्यायों का खंडो-उपखंडो में विभाजन और संख्याकन (क्रमांकन) वैज्ञानिक पद्धति से होना चाहिए। शोध प्रबंध को प्रथम अध्याय से अंतिम अध्याय तथा उपसंहार तक उपक्रमित रखना शोध-प्रबंध को वैज्ञानिकता प्रदान करता है। अध्याय मुख्य शीर्षकों तथा उपशिर्षकों में निर्धारित करने चाहिए। प्रत्येक अध्याय के पृष्ठ पर उसके मुख्य शीर्षक अंकित किए जा सकते हैं। अनुसंधान एक वैज्ञानिक प्रविधि एवं प्रक्रिया है, अत: विषय के सुव्यवस्थित एवं सुनिश्चित अध्ययन हेतु अध्याय-विभाजन अत्यावश्यक है। वह शोध अध्ययन को एक सुनिश्चित एवं सुव्यवस्थित दिशा प्रदान करता है।

उपसंहार:-

उपसंहार शोध-प्रबंध का अंतिम अध्याय होता है। उपसंहार में शोध अध्ययन से प्राप्त शोध के निष्कर्षों को सार-संक्षेप में तथा स्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया जाता है। 'उपसंहार' में शोध-प्रबंध के अध्ययन का निचोड़ रुप में समाहार होता है।

शोध की नई दिशाएँ :-

शोध-प्रक्रिया की क्रमबद्ध सीढ़ियों में एक महत्वपूर्ण सीढ़ी है। शोध की नई दिशाएँ, इसे 'शोध की नई संभावनाएँ' भी कहा जाता है। शोध-कर्ता अपने शोध-प्रबंध में शोध की नई दिशाओं में सामान्यतः अपने विवेच्य शोध विषय से संबंधित कुछ नये, मौलिक विषयों को अधोरेखित करता है। अर्थात विवेच्य शोध-विषय से संबंधित अन्य कौन-कौन से नये संभाव्य विषय हो सकते हैं, उस पर प्रकाश डालता है। इस प्रकार नये शोधेच्छुक शोधकर्ताओं के लिए शोध की नई दिशाएँ पथ-प्रदर्शक होती है।

संदर्भ उल्लेख :-

शोध प्रबंध लेखन में संदर्भ का उल्लेख करना अत्यंत आवश्यक होता है। क्योंकि संदर्भ शोध-प्रबंध की सामग्री को प्रमाणित करते है। संदर्भ की प्रामाणिकता के कारण ही शोध-प्रबंध किसी सामान्य ग्रंथ से भिन्न होता है। संदर्भ का संबंध उस प्रकाशित और अप्रकाशित सामग्री से आता है जो संदर्भिका में भी संकलित की जाती है। संदर्भ देने के कोई विशेष नियम नहीं है। शोध प्रबंध में पाद-टिप्पणी देने की प्रविधि ही संदर्भ देने की प्रविधि को प्रभावित करती है। मुख्य बात यह कि संदर्भिका में संगति और स्पष्टता होनी चाहिए। संदर्भ में जो आवश्यक सूचनाएं दी जानी चाहिए वे इस प्रकार हैं-

लेखक का नाम

पुस्तक का शीर्षक

प्रकाशन का विवरण- दिनांक, स्थान व प्रकाशक का नाम।

यदि किसी पत्रिका के लेख का उदाहरण दिया गया है। तो उसमें उसके प्रकाशक का नाम और प्रकाशन का स्थान देने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि इस प्रकार की महत्त्वपूर्ण पत्रिकाओं की जानकारी पहले से ही रहती है। संपादित ग्रंथों के संदर्भ देने में विधि के अंतर्गत सर्वप्रथम लेख शीर्षक और उसके लेखक का नाम दिया जाता है।

पाद टिप्पणी :-

नाम के आधार पर पाद टिप्पणी का प्रयोग पृष्ठ के नीचे के भाग में किया जाता है। कभी-कभी अध्यायों के बाद या प्रबंध के बाद भी ये टिप्पणियां दे दी जाती हैं।

परिशिष्ट :-

परिशिष्ट से तात्पर्य है विशिष्ट छूटा हुआ अंश। विमर्श या टिप्पणी जिसका अंशतः उपयोग शोध-प्रबंध में क्रम के बीच में हुआ हो किंतु स्थानाभाव या प्रबंध के प्रवाह में अवरोध उत्पन्न होने के कारण पूरे न दिए गए हो 'बाद में शोध ग्रंथ के अंत में परिशिष्ट के रूप में दिये जाते हैं। पाठक परिशिष्ट का वह विशेष पृष्ठ अवलोकन कर सकता है जिससे उसकी जिज्ञासा पूर्ण हो सके तथा उसकी जटिलता का निराकरण हो सके। शोध-प्रबंध में प्रत्येक परिशिष्ट का संदर्भ देना चाहिए।

परिशिष्ट देने के सामान्यतः दो स्थान होते है। जैसे-

1. अंतिम अध्याय और संदर्भ सूची के बीच में रखना।
2. संदर्भ-सूची के उपरांत रखना।

संदर्भ सूची :-

शोध में जिन पुस्तकों, को शोध-पत्रिकाओं से सामग्री संगृहीत की जाती है उसे ग्रंथ सूची या संदर्भ सूची में देते हैं। उपसंहार के ठीक बाद दी जाती है। यह शोध- प्रबंध का एक आवश्यक अंग है। इसके उपर 'ग्रंथ सूची' या 'संदर्भ सूची' शीर्षक डालते हैं तथा इसका पृष्ठांकन अंतिम अध्याय अर्थात उपसंहार के

अंतिम पृष्ठ से आगे चलता है। ग्रंथ सूची के लिए 'संदर्भ सूची' 'संदर्भिका' आदि शीर्षकों का प्रयोग हो सकता है।

शोध प्रबंध टंकन :–

शोध प्रबंध लेखन पूरा हो जाने के बाद नियमतः वह टंकित रूप में प्रस्तुत किया जाता है। विश्वविद्यालय के पीएच.डी. विभाग तथा बाह्य परीक्षकों के पास परीक्षणार्थ शोध–प्रबंध की प्रतियाँ प्रस्तुत करते समय विधिवत उसको टंकित किया जाता है। अतएव शोधार्थी को टंकन की तकनीक और औपचारिकता से भली–भान्ति परिचित होना चाहिए। वास्तव में शोध प्रबंध का टंकन एक विशेषज्ञ का काम है।

प्रबंध टंकन के लिए 22 सें.मी. 28 सें. मी. आकार के बॉण्ड पेपर का उपयोग करना उत्तम होता है। यह कागज पर्याप्त सफेद और टिकाऊ होना चाहिए।

मुख्य लेखन में दो पंक्तियों के बीच दोहरी जगह (डबल स्पेस) छोड़कर टंकन करना चाहिए। कागज के उपरी भाग पर 03 सेंटीमीटर, कागज के निम्न भाग पर 03 सेंटीमीटर बायी ओर 04 सेंटीमीटर और दाहिनीओर 2.5 सेंटीमीटर 1 हाशिया छोड़कर टंकन करना चाहिए। नए परिच्छेद का आरंभ 9 स्पेस छोडकर करना चाहिए। यथा संभव पंक्ति के अंत में आने वाले शब्दों को तोड़ना नहीं चाहिए। पंक्ति के अंत में कोई शब्द पूरा न बैठने पर उसे निम्न पंक्ति में टंकित करना चाहिए। पंक्ति के अंत में आने वाले संयुक्त शब्दों को भी बीच में नहीं काटना चाहिए।

वर्तनी–सुधार या भाषा–शुद्धिकरण :–

वर्तनी सुधार को वर्तनी–संस्कार या भाषा–शुद्धीकरण कहा जा सकता है. वास्तव में शुद्ध भाषा लेखन किसी भी पाठ की जान होता है। शुद्ध भाषा आदर्श, परिनिष्ठित, साधु या सुष्ठ भाषा का आत्म–तत्त्व कहा जा सकता है। अशुद्ध लेखन से बड़ा अन्य कोई दोष नहीं होता।

3.8 स्वाध्याय

3.8.1 **टिप्पणियाँ लिखिए।**

1. शीर्षक निर्धारण
2. भूमिका लेखन
3. पाद टिप्पणी
4. संदर्भ उल्लेख
5. शोध–प्रबंध टंकन
6. वर्तनीसुधार

7. शोधप्रबंध की रुपरेखा

3.8.2 दिर्घोतरी प्रश्न।

1. शोध प्रबंध लेखन प्रणाली पर प्रकाश डालिए।
2. शोध प्रबंध लेखन में रुपरेखा-निर्माण के महत्व को विशद कीजिए।
3. शोध प्रबंध लेखन में संदर्भ एवं सहायक ग्रंथ के महत्व कोस्पष्ट कीजिए।

3.9 क्षेत्रीय कार्य :-

1. किसी ग्रंथालय में जाकर पुराने शोध-प्रबंध का निरीक्षण करें।
2. किसी शोध-निर्देशक से शोध-प्रबंध लिखने की जानकारी प्राप्त करे।
3. टंकन का ज्ञान प्राप्त करे।
4. शोध गंगा पर विभिन्न शोध प्रबंधों की जानकारी प्राप्त करें।
5. संदर्भ एवं सहायक सामग्री के रूप में पत्र-पत्रिकाओं की जानकारी प्राप्त करें।

3.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :-

1. डॉ. अर्जुन तडवी - अनुसंधान एवं प्रक्रिया, चिंतन प्रकाशन, कानपुर।
2. डॉ.सुभाष तलेकर / प्रा. माधुरी नगरकर - अनुसंधान के सिद्धांत, निराली प्रकाशन, पुणे।
3. डॉ. राजेन्द्र मिश्र- अनुसंधान की प्रविधि और प्रक्रिया, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. डॉ. कैलाशनाथ मिश्र- हिंदी अनुसंधान वैज्ञानिक पद्धतियाँ, सरस्वती प्रकाशन, कानपुर।

❑❑❑

इकाई –4

अनुसंधान कार्य में आई. सी. टी (सूचना और संचार प्रौद्योगिकी) का अनुप्रयोग, इंटरनेट का अनुसंधान कार्य में प्रयोग – ई–बुक्स, ई–पत्रिका की खोज, शोध के लिए गूगल स्कॉलर्स का प्रयोग, शोध साहित्य की ऑनलाइन खोज, अनुसंधान की उपयुक्तता एवं महत्त्व, हिंदी साहित्य के अनुसंधान कार्य की स्थिति एवं संभावनाएं।

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 विषय विवेचन

4.3.1 अनुसंधान कार्य में आई. सी. टी (सूचना और संचार प्रौद्योगिकी) का अनुप्रयोग

4.3.2 इंटरनेट का अनुसंधान कार्य में प्रयोग

4.3.2.1 ई–बुक्स

4.3.2.2 ई–पत्रिका की खोज

4.3.2.3 शोध के लिए गूगल स्कॉलर्स का प्रयोग

4.3.2.4 शोध साहित्य की ऑनलाइन खोज

4.3.3 अनुसंधान की उपयुक्तता

4.3.4 अनुसंधान का महत्त्व

4.3.5 हिंदी साहित्य के अनुसंधान कार्य की स्थिति

4.3.6 हिंदी साहित्य के अनुसंधान कार्य की संभावनाएं

4.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

4.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

4.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

4.7 सारांश

4.8 स्वाध्याय

4.9 क्षेत्रीय कार्य

4.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए।

4.1 उद्देश्य :

1. अनुसंधान कार्य में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के प्रयोग से परिचित होंगे।
2. अनुसंधान कार्य में इंटरनेट के प्रयोग से परिचित होंगे।
3. अनुसंधान कार्य में ई-बुक्स और ई-पत्रिका के प्रयोग से अवगत होंगे।
4. अनुसंधान कार्य में गूगल स्कॉलर्स एवं शोध साहित्य की ऑनलाइन खोज से परिचित होंगे।
5. हिंदी साहित्य में अनुसंधान की स्थिति एवं संभावनाओं से परिचित होंगे।

4.2 प्रस्तावना :

सूचना वर्तमान युग का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष है। यदि आज बुद्धिजीवी वर्ग को समय पर वांछित सूचना न मिले तो वह अपने को बहुत असहाय समझता है। वर्तमान युग में दूरदर्शन, केबल नेटवर्क, कम्प्यूटर, इंटरनेट, ई-मेल, मोबाइल जैसी अनेक त्वरित सूचना सम्प्रेषण एवं प्रसारण सुविधाएँ उपलब्ध है। इक्कीसवीं सदी में कम्प्यूटर और मोबाइल ने समस्त विश्व को अपने वश में कर लिया है। कम्प्यूटर ने न केवल वर्तमान मानव की दशा एवं दिशा ही बदल दी है अपितु यह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ऐसे प्रविष्ट हो गया है कि जिससे हमारा सामाजिक, आर्थिक और पारिवारिक ताना-बाना ही बदल गया है। आज व्यक्ति घर बैठे सूचना प्रौद्योगिकी के प्रयोग से शिक्षा, शोध, रक्षा विज्ञान, कृषि, व्यवसाय, अंतरिक्ष अथवा ऐसे ही अन्य क्षेत्रों की समस्त जानकारी सहज ही प्राप्त कर लेता है और अपनी सामयिक समस्याओं से सम्बन्धित विचारों अथवा किसी घटना से सम्बन्धित प्रतिक्रिया को मिनटों में ही हजारों-लाखों लोगों तक सम्प्रेषित कर देता है। यह सब सम्भव और सुलभ हुआ है मात्र सूचना प्रौद्योगिकी से सूचना प्रौद्योगिकी के महत्त्व एवं विस्तार की चर्चा करते हुए श्री सतीश चन्द्र सक्सेना लिखते है-वर्तमान युग सूचना प्रौद्योगिकी का युग है। पिछले दो दशकों में सूचना प्रौद्योगिकी ने हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जबरदस्त क्रान्ति ला दी है। इस क्रान्ति में अन्तरिक्ष अनुसंधान विशेषकर उपग्रह विमोचन, उपग्रह सम्प्रेषण और उपग्रह स्पेक्ट्रम आदि की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका है। वास्तव में उपग्रह सम्प्रेषण और सूचना प्रौद्योगिकी परस्पर पूरक है। सूचना संसाधनों एवं तकनीकों की आवश्यकता को समझते हुए अन्यत्र भी कहा गया है- पिछली सदी के इंसान को यदि जिन्दा करके कम्प्यूटर, मोबाइल, लैपटाप, आई-पैड जैसी न जाने कितनी ही चमत्कारी वस्तुएँ दिखा दी जाएँ तो बेचारा गश खाकर गिर पड़े। आज की पीढ़ी इन चीजों के बिना जीने की कल्पना भी नहीं कर सकती। ज्ञान के क्षेत्र में इंसानों की सबसे बड़ी उपलब्धि इंटरनेट की खोज है, जो अनुसंधान के कार्य में अत्यंत लाभदायक साबित हुई है। इस युग में जो इंटरनेट उपयोग नहीं करता वह व्यावहारिक रूप से निरक्षर माना जाता है।

4.3 विषय विवेचन :

4.3.1 अनुसंधान कार्य में आई. सी. टी (सूचना और संचार प्रौद्योगिकी) का अनुप्रयोग :

वैश्विक सापेक्षता की दृष्टि से भारत जैसे देश में भले ही इंटरनेट प्रायोक्ता आनुपातिक रूप में कम है परन्तु संख्यात्मक दृष्टि से यहाँ अमेरिका, चीन और जापान के बाद सर्वाधिक लोगों द्वारा इंटरनेट का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार इंटरनेट प्रयोगकर्ताओं की दृष्टि से भारत विश्व का चौथा देश है। यही नहीं जिस गति से भारत में निरन्तर इंटरनेट का प्रयोग बढ़ता जा रहा है उससे यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि वह दिन शीघ्र आयेगा जब भारत में सर्वाधिक इंटरनेट का प्रयोग करने वाले होंगे। इंटरनेट का प्रयोग आज भारतीय जीवन के विविध क्षेत्रों में बढ़ता जा रहा है। सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से आज ई-कामर्स, ई-प्रशासन, ई-पंजीकरण, ई-मेल, ई-बैंकिंग, ई-पत्रकारिता, ई-सेवा, ई-मैरिज, ई-चौपाल, डिजिटल लाइब्रेरी, टेलीमेडिसिन, ई-बजट, स्मार्ट हाउसेज, स्मार्ट सिटी, ऑन लाइन चुनाव परिणाम, ऑन लाइन परीक्षा एवं उसके परिणाम जैसी अनेक गतिविधियों को सफलतापूर्वक अंजाम दिया जाने लगा है।

सूचना और संचार प्रौद्योगिकी से तात्पर्य उन प्रौद्योगिकी और तकनीकी से है, जो हमें दूरसंचार के माध्यम से ज्ञान एवं जानकारी के विशाल क्षेत्र तक पहुंच प्रदान करती है। जिसमें इंटरनेट, वायरलेस नेटवर्क, सेलुलर फोन और संचार एवं सूचना के अन्य तरीकों जैसी संचार तकनीकों की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल होती है। निस्संदेह, सूचना और संचार प्रौद्योगिकियों ने हमारे समाज को गतिशील संचार साधनों की एक विस्तृत श्रृंखला को उपहार के रूप में प्रदान किया है। जिसने मानव को अल्प समय में विशेष रूप से त्वरित संदेश, वॉइस ओवर आईपी, वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग, टेली कॉन्फ्रेंसिंग जैसी प्रौद्योगिकियों के माध्यम से उन लोगों के साथ संवाद करने में सक्षम बनाया है, जो दूर-दराज के देशों में रहते हैं। फेसबुक, इंस्टाग्राम, ट्विटर जैसी सोशल नेटवर्किंग साइटें आज भी मौजूद हैं, विश्व के उपयोगकर्ताओं को एक दूसरे के साथ संपर्क स्थापित करने की अनुमति प्रदान करते हैं। सूचना और प्रौद्योगिकी आधुनिक गणना एवं अभिकलन के आधार के रूप में कार्य करती है जिसने बदले में आभासी संचार और संवाद के सबसे आधुनिक रूप को डिजाइन किया है। हालांकि सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के लिए एक सार्वभौमिक परिभाषा को ढूंढना काफी कठिन है, फिर भी इसकी परिभाषा में आम तौर पर उन सभी प्रयोग में आने वाले यंत्रों, उपस्करों, उपकरणों, नेटवर्क से संबंधित विन्यासों (कॉन्फ़िगरेशन), अनुप्रयोगों (एप्लिकेशन) और प्रणाली के निर्देशों (सिस्टम रूब्रिक) का अर्थ निकालने के लिए वाक्यांश का अविष्कार कह सकते हैं, जो व्यक्तियों, सरकार या कॉरपोरेट निकायों के लिए उत्तरदाई जो अंगीकृत दुनिया में बातचीत एवं सहभागिता को सक्षम करने के लिए हितधारकों के रूप में एकजुट होकर काम करते हैं।

सूचना और संचार प्रौद्योगिकी प्रणाली के महत्त्वपूर्ण पहलुओं में तार और बे-तार (वायर्ड और वायरलेस) नेटवर्क दोनों का समावेश होता हैं। इसके साथ ही इसमें लैंड-लाइन टेलीफोन, रेडियो और टेलीविजन जैसी निकटवर्ती प्रौद्योगिकियों का भी समावेश होता है। यद्यपि वे अद्यतन हो गए हैं, लेकिन हमारे लिए अभी भी उनका उपयोग करना स्वचालित दुनिया में बेमानी नहीं रह गया है। क्योंकि स्वचलित दुनिया में

समकालीन कृत्रिम बुद्धिमत्ता और रोबोटिक तकनीक के साथ एक परिवर्तित संस्करण में अब भी उनका उपयोग किया जाता है। आईसीटी के घटकों की सूची पूरी तरह से लंबी हो सकती है क्योंकि यह एक के बाद एक को जोड़ती रहती है। जैसे हमारे स्मार्टफोन, डिजिटल डिवाइस और रोबोटिक सिस्टम भी आईसीटी के मौजूदा उपकरणों में एक साथ जोड़े गये हैं्। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी डिजिटल युग में व्यक्तियों, समूहों अथवा संगठनों के बीच बातचीत या सामाजिक संचार की प्रक्रिया को तेज करने के लिए और उनमें तेज़ी लाने के लिए बनाईं गई तकनीकी व्यवस्था है। इसीलिए आईसीटी एक सर्वव्यापी शब्द है, जो रेडियो, टेलीविजन, डिजिटल फोन, कंप्यूटर, हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर दोनों नेटवर्क, उपग्रह कवरेज से लेकर सभी डिवाइस, सिस्टम या एप्लिकेशन के साथ-साथ वीडियो-कॉलिंग और दूरस्थ शिक्षा जैसे विभिन्न अनुप्रयोगों (एप्लिकेशन), प्रणालियों (सिस्टम) और उनसे संबंधित सेवाओं को भी एक ही समय में समाविष्ट कर लेता है।

सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के साथ-साथ सर्वव्यापी अंकीय विभाजन के एक युग का प्रादुर्भाव हुआ और जिसके साथ-साथ समाज में एक कुख्यात लैंगिक अंतर आया है, जिसने सामाजिक, आर्थिक और साहित्यिक कारकों का उतार-चढ़ाव के रूप में समाज को अलग थलग कर दिया है। २० वीं सदी के शुरुआती दौर से ही उच्च शिक्षा के लिए सर्जक के रूप में आईसीटी का तेजी से उपयोग किया जा रहा है। आईसीटी और साहित्यिक अनुसंधान के बीच गहरा संबंध रहा है। साहित्यिक अनुसंधान में बड़ी संख्या में आईसीटी का अनुप्रयोग होता है। साहित्यिक अनुसंधान के क्षेत्र में इसका अनुप्रयोग काफी हद तक ज्ञान संचय प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाने की क्षमता के कारण होता है, जो कि जांच की एक मजबूत प्रणाली के निर्माण के लिए एक आवश्यक शर्त है। संक्षेप में आईसीटी साहित्यिक अनुसंधान के लिए काफी मददगार साबित हुई है। जिसे अध्ययन हेतु तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया है।

1. **आंकड़े संग्रह के पूर्व और विश्लेषण में आईसीटी का अनुप्रयोग :**

साहित्यिक अनुसंधान में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के अनुप्रयोग से अनुसंधान कार्यों की डिजाइन और तैयारी के अपने प्रत्येक चरण का पता लगाया जा सकता है। जैसा की हम अनुसंधान डिजाइन के इन चरणों में से प्रत्येक का पता लगाएंगे, हम यह समझने में सक्षम होंगे कि आईसीटी में कैसे उतार चढ़ाव होता है।

अ) साहित्य समीक्षा :

जैसे ही हम शोध और अनुसंधान की समस्या चुनते हैं, हम साहित्य समीक्षा में आगे बढ़ते हैं, क्योंकि हम पाठक को उस विषय से परिचित कराना चाहते हैं जिसे हम संबोधित करना चाहते हैं्। हम वास्तव में पाठकों को यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि हमने सवाल में समस्या के बारे में पहले से ही कौनसा ज्ञान प्राप्त किया है। उदाहरण के लिए, यदि आप इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में पारिस्थितिकी विमर्श इस विषय पर अनुसंधान कर रहे हैं, तो यह स्पष्ट किया जाना आवश्यक है कि हमने इस विषय पर किए गए पिछले सभी शोध कार्यों से विषय के बारे में पर्याप्त रूप से सीख लिया है। इस विषय पर अपनी परियोजना शुरू

करने के लिए चुनने से पहले महत्वपूर्ण कार्यों को अच्छी तरह से पढ़ना आवश्यक है। साहित्य की आपकी समीक्षा वर्तमान शोध निष्कर्षों के बीच पाए जाने वाली विसंगतियों और असहमति की ओर इशारा करती है। इसलिए आपका कार्य अनुसंधान अंतराल का पता लगाना और फिर अंतराल को संबोधित करने या ऐसी असंगतियों को हल करने के तरीकों की तलाश करना होगा। साहित्य समीक्षा के इस मुश्किल कार्य को करना बेहद श्रमसाध्य और कठिन हो सकता है। इसकी सहायता के लिए आज बहुत सी शोध सामग्री, साहित्य और कलाकृतियों को इंटरनेट सर्च इंजन और डेटाबेस के माध्यम से एक्सेस किया जा सकता है। ये पुस्तकों, अकादमिक पत्रिकाओं, अभिलेखागारों, संस्थागत रिपोजिटरी एवं वैज्ञानिक और अन्य लेखों के दूसरे संग्रहों में लेखों को खोजने और उन तक पहुंचने के लिए अकादमिक सेटिंग्स में उपयोगी है। हमारे पास सर्च इंजन की एक सामान्य सूची हो सकती है, जो शैक्षिक उद्देश्यों के लिए हमारी सहायता करती है। दूसरी ओर ग्रंथ सूची डेटाबेस हमें पुस्तकों और जर्नल लेखों को खोजने की जानकारी दे सकते हैं। कुछ प्रदाता जो हमें इस तरह के डेटाबेस की पूरक और अतिरिक्त व्यवस्था करते हैं, जिसमें से प्रमुख हैं – अफ्रीकन जर्नल्स ऑनलाइन, ईबीएससीओ पब्लिशिंग, एयरिटि इंक (आईएनसी), गूगल स्कॉलर, दीपडये, इंडियन साइटेशन इंडेक्स, जे-गेट, जेएसटीओआर, मेंडली, माइक्रोसॉफ्ट अकेडमिक, प्रोजेक्ट म्यूजियम, ओपन एडिशन ओआरजी, सोशल साइंस साइटेशन इंडेक्स, सोशल साइंस रिसर्च नेटवर्क, शोध गंगा, स्प्रिंगर लिंक, स्वयंप्रभा, कैम्ब्रिज कोर, विली ऑनलाइन लाइब्रेरी, टेलर और फ्रांसिस और वर्ल्ड कैट आदि। हमें बुनियादी और अनुप्रयुक्त अनुसंधान के दायरे में आईसीटी के हस्तक्षेप का विचार रखने के लिए कुछ आवश्यक डेटाबेस का अध्ययन करना आवश्यक है। अक्सर इनमें से प्रत्येक का समग्र अध्ययन करना हमारे लिए असंभव होता है। इसलिए कुछ डेटाबेस और उनके कार्यों को देखना आवश्यक होता है।

आ) शोधगंगा :

शोधगंगा भारत के शोध प्रबंधों का ऑनलाइन इलेक्ट्रॉनिक भंडार है। यह इनफ्लिबनेट केंद्र (INFLIBNET CENTRE) द्वारा स्थापित किया गया है। इनफ्लिबनेट अहमदाबाद की ऑनलाइन कंपनी है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के जून 2009के एक आदेश के अनुसार विश्वविद्यालयों के शोधार्थियों के लिए अपने शोध प्रबंधों को इलेक्ट्रानिक रूप में भी जमा करना अनिवार्य कर दिया है। संक्षेप में यह भारतीय इलेक्ट्रॉनिक शोध और शोध निबंधों (इंडियन इलेक्ट्रॉनिक थीसिस एंड डिसर्टेशन) के अंकीय डिजिटल भंडार को निरूपित करने वाला नाम है। शोध गंगा शब्द की रचना इनफ्लिबनेट सेंटर द्वारा स्थापित भारतीय इलेक्ट्रॉनिक शोध और शोध निबंध के डिजिटल भंडार की पहचान करने के लिए की गयी है। यह एक उत्कृष्ट उदाहरण है कि कैसे हम एक डेटाबेस तय करने के लिए आईसीटी का अनुप्रयोग कर सकते हैं और अपने विशेष क्षेत्र पर शोध करते हुए साहित्य समीक्षा के लिए इसका अत्यधिक पैमाने पर अनुप्रयोग कर सकते हैं। इसे हेवलेट पैकार्ड (एचपी) के सहयोग से मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी (एमआईटी) के द्वारा विकसित डीस्पेस नामक एक ओपन सोर्स डिजिटल रिपोजिटरी साफ्टवेयर का उपयोग करके स्थापित किया गया था। शोध गंगा हमें अनुसंधान विद्वानों को अपने डॉक्टरेट शोध-पत्रों को जमा करने के लिए एक मंच प्रदान करती है, ताकि इसे समग्र विद्वान समुदाय को उपलब्ध कराया जा सके। कोश (रिपोजिटरी) में

शोधकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत इलेक्ट्रॉनिक अनुसंधान कार्यों को कैप्चर, इंडेक्स, स्टोर करने, प्रसारित करने और संरक्षित करने की बहुमुखी क्षमता होती है।

इ) मेंडली :

मेंडली लंडन में स्थित एक संदर्भ प्रबंधक वेब एप्लिकेशन कंपनी है जिसकी स्थापना सन् 2007 में पीएचडी छात्र पॉल फोकलर, विक्टर हैनिंग, जॉन रीचेक्ट द्वारा की गई थी और सन् 2013 की शुरुआत में एल्सेवियर द्वारा इसे अधिग्रहित किया गया है। यह प्रबंधन हेतू अपनी सेवा के लिए एक अच्छे संदर्भ के रूप में जाना जाता है। जिसका उपयोग बड़े पैमाने पर शोध स्रोतों को एकत्र करने, प्रबंधित करने और उद्धृत करने के लिए किया जाता है। यह विद्वानों के लेखों के लिए ग्रंथ सूची उत्पन्न करती है। यह कार्य साहित्य की समीक्षा करने में हमारी बहुत मदद करते हैं क्योंकि मेंडली में बहुत मजबूत और स्थायी डाटाबेस है। इसके साथ ही यह हमारे साहित्य की समीक्षा में उपयोग किए गए लेखों का हवाला देने के लिए बहुत ध्यान रखता है।

ई) माइक्रोसॉफ्ट अकादमिक :

माइक्रोसॉफ्ट अकादमिक शैक्षणिक प्रकाशनों और साहित्य के लिए एक मुफ्त सार्वजनिक इंटरनेट आधारित अकादमिक वेब सर्च इंजन है। इसे माइक्रोसॉफ्ट संशोधन द्वारा विकसित किया है। इसे 2016 में एक पूरी तरह से नए डेटा संरचना और सर्च इंजन के साथ उजागर होने के लिए स्थापित किया गया था। यह वर्तमान समय में 220 मिलियन से अधिक प्रकाशनों को आश्रय देता है, जिनमें से 88 मिलियन जर्नल लेख हैं। गुगल स्कॉलर्स की तुलना में, बाद वाले को अनुमानतः 99.33 मिलियन या लगभग 114 मिलियन अंग्रेजी भाषा के विद्वानों के दस्तावेजों का 87 प्रतिशत मिल सकता है। एक तकनीकी उपकरण के रूप में, गूगल स्कॉलर न केवल माइक्रोसॉफ्ट अकेडमिक को दरकिनार करता है, बल्कि यह थॉमसन रेउटर के वेब ऑफ साइंस या एल्सेवियर स्कोपस डेटाबेस जैसे सदस्यता वाले उत्पादों को भी बाहर निकालता है। यह माना जाता है कि गूगल स्कॉलर अपने समकक्षों की तुलना में अधिक दस्तावेजों को अनुक्रमित करता है। साहित्य की समीक्षा के बाद शोध विधियों की अवधारणा, संचालन और चयन के लिए समय आता है। विस्तार से पूछताछ की संरचना का पता लगाने के बाद, शोधकर्ता धीरे-धीरे विभिन्न डेटा संग्रह तकनीकों और उनके बाद के विश्लेषण में आगे बढ़ता है। डेटा संग्रह काफी हद तक अनुसंधानकर्ता के लिए उपलब्ध अवलोकन तकनीकों पर निर्भर करता है।

2. आंकड़े संग्रह और विश्लेषण में आईसीटी का अनुप्रयोग :

डेटा संग्रह अनुसंधान का एक अति-आवश्यक चरण बना हुआ है। जिसके माध्यम से अनुसंधानकर्ता उस डेटा को एकत्रित करता है जिसका वह अध्ययन करना चाहता है। यह उन चरों के बारे में जानकारी इकट्ठा करने और मापने की प्रक्रिया होती है, जिन्हें हम दिए गए सेटअप में अध्ययन करना चाहते हैं। यह अनुसंधानकर्ता को उन चरों के बारे में प्रासंगिक सवालों के जवाब देने में सक्षम बनाता है जो वह अध्ययन करना चाहता है। और अपने निष्कर्षों को प्रस्तुत करने के बारे में प्रासंगिक सवालों का ज़वाब देने हेतू सक्षम

बनाता है। आंकड़े संग्रह लगभग किसी भी अनुशासन में आवश्यक होता है, जिसे हम नाम देना चाहते हैं्। यद्यपि विधियां प्रत्येक अनुशासन की प्राथमिकताओं के साथ भिन्न और अलग होती हैं, इसके संबध्द उपकरण के साथ आंकड़े संग्रह सभी अनुसंधान परियोजनाओं का अनिवार्य रूप से आवश्यक घटक बना हुआ है। अनुशासन जो कुछ भी हो, सभी आंकड़े संग्रह का उद्देश्य सबसे उपयुक्त डेटा और गुणवत्ता के सबूत को खींच कर बाहर निकालना होता है। इस तरह के प्रामाणिक डेटा अनुसंधानकर्ता को उत्तरदाताओं से विश्वसनीय आंकड़े प्राप्त करने में मदद करेंगे। डेटा संग्रह के विभिन्न तरीकों को कम करने और आसान बनाने के लिए आईसीटी का उपयोग किया जाता है। जो निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत है-

अ) प्रौद्योगिकी समर्थित प्रयोग :

आधुनिक युग में अनुसंधानकर्ता प्रयोगों के संचालन करने के लिए विश्वव्यापी वेब का उपयोग एक उपकरण के रूप में कर रहे हैं्। चूंकि अधिकांश प्रयोगों में प्रदर्शक नमूने आवश्यक नहीं होते हैं, इसलिए साहित्यिक अनुसंधानकर्ता अक्सर स्वयंसेवकों का उपयोग करते हैं जो ऑनलाइन निमंत्रण का लिखित या मौखिक जवाब देते हैं्। हम आईसीटी की मदद से प्राकृतिक सेटअप से दूर की स्थितियों में किए गए प्रयोगों को पाते हैं्। एक माइक्रो कंप्यूटर आधारित प्रयोगशाला में सभी प्रकार के उपकरण होते हैं, लेकिन हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर का एक संयोजन होता है जो आमतौर पर डेटा एकत्रित करने के लिए अनुप्रयोग किया जाता है। इंटरफेस के माध्यम से माइक्रो कंप्यूटर से जुड़े सेंसर का उपयोग करके डेटा एकत्रित किया जाता है। इन एकत्रित आंकड़ों का वास्तविक रूप में विलंबित समय में ग्राफिक रूपों में विश्लेषण और प्रदर्शन किया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर एमबीएल पैकेज, उपयोगकर्ता के लिए विभिन्न उपकरणों और वातावरण के साथ एक बड़े मंच के रूप में लिया जा सकता है। यहां तक कि जब कंप्यूटर सहायता वातावरण में काम करते हैं और प्रयोग करते हैं, तब भी उन्हें वास्तविक वातावरण का लाभ एवं स्वाद मिलता है। यह ऐसा लगता है, मानों वे प्राकृतिक सेटिंग का अध्ययन कर रहे हैं और अपने प्रयोगों का संचालन कर रहे हैं्। यह विधि हार्ड कॉपी विधि की तुलना में अत्यधिक अनुशंसित होती है जिसमें अनुसंधानकर्ता को सांख्यिकीय प्रसंस्करण शुरू करने से पहले हार्डकॉपी से स्कोर को मैन्युअल रूप से साफ्टकॉपी में बदलना होता है।

आ) कंप्यूटर सहायता प्राप्त सर्वेक्षण :

गूगल डाक्यूमेंट् और सर्वे मंकी का अनुप्रयोग करके आंकड़े को ऑनलाइनल, वेब आधारित या इंटरनेट सर्वेक्षण के माध्यम से एकत्रित किया जा सकता है। यदि हम मात्रात्मक डेटा एकत्रित करने के लिए इन तरीकों का उपयोग करते हैं, तो यह समय की बचत और लागत में कटौती दोनों हो सकता है। इसके अतिरिक्त हम बहुत अधिक व्यक्तियों और समूहों तक पहुंच सकते हैं, जो आसानी से ऑनलाइन उपलब्ध नहीं हो सकतें हैं्। उदाहरण के लिए विकलांगता, एचआईवी या किसी अन्य बीमारी और कलंक वाले लोग सर्वेक्षण में आमने-सामने जाने में संकोच कर सकते हैं्। ये उद्देश्य निर्मित साफ्टवेयर और इंटरनेट टेक्नोलॉजी होती है जो निस्संदेह उत्तरदाताओं से आंकड़े एकत्र करने के अधिक प्रभावी रूप होते हैं्। कंप्यूटर सहायता प्राप्त सर्वेक्षण का एक और लाभ यह है कि इसके मूल प्रारूप में आयोजित आंकड़े संग्रह सीधे सांख्यिकीय

साफ्टवेयर पैकेज की पूर्ति की जा सकती है। इसलिए हार्डकॉपी पद्धति की तुलना में इस तरह का प्रत्यक्ष इनपुट निस्संदेह तेज और अधिक उपयुक्त होता है। हार्ड कॉपी विधि में अनुसंधानकर्ता को आंकड़ों को सांख्यिकीय रूप से संसाधित करने से पहले हार्डकोर से सॉफ्ट कॉपी में मानव संचालित रूप से बदलना होता है। इस प्रत्यक्ष विधि में डेटा को सीधे कंप्यूटर के अनुकूल मोड़ में प्रवेश किया जाता है। दर्ज किए गए डेटा को कंप्यूटर द्वारा सत्यापित किया जाता है और फिर इसे आगे की प्रक्रिया के लिए टेप या डिस्क में स्थानांतरित किया जाता है। बिना किसी रूपांतरण चरण के सीधे डेटा को कैप्चर किया जाता है। उदाहरण के तौर पर प्रश्नावली को एक विशेष इनपुट डिवाइस द्वारा पढ़ा जा सकता है। ऑनलाइन सर्वेक्षण अनुसंधान के लिए आईसीटी हर रोज विकसित हो रही है। वर्तमान समय में अनुसंधानकर्ता ऑनलाइन सर्वेक्षण कार्य के साथ खुद को सहज पाता है। आज अनुसंधानकर्ताओं के लिए दर्जनों ऑनलाइन सर्वेक्षण सॉफ्टवेयर पैकेज और वेब सर्वेक्षण सेवाएं उपलब्ध रहते हैं, जिनमें से अधिकांश को सब्सक्राइब किया जाना चाहिए।

इ) कंप्यूटर सहायता प्राप्त व्यक्तिगत साक्षात्कार :

यह एक ऐसी तकनीक होती है जिसे हमेशा किसी आसान डिवाइस पर डेटा संग्रह के लिए अनुप्रयोग किया जाता है। अनुसंधानकर्ता बड़े पैमाने पर सर्वेक्षण में कंप्यूटर सहायता प्राप्त व्यक्तिगत साक्षात्कार का उपयोग करते हैं क्योंकि यह उन्हें डेटा पर लापता होने से रोकता है, गणितीय गणनाओं पर आत्मनिर्भरता और लगातार अनुपलब्ध प्रतिक्रियाओं की तलाश करता है। सीएपीआई एक आमने-सामने आंकड़े संग्रह विधि है जिसमें अनुसंधानकर्ता एक साक्षात्कार के दौरान दिए गए उत्तरों को अंकित करने के लिए एक टैबलेट, एक मोबाइल फोन, एक कंप्यूटर या एक लैपटॉप का उपयोग करता है। सीएपीआई सॉफ्टवेयर की एक विस्तृत श्रृंखला होती है और इसलिए इसका उपयोग किसी ऐसे व्यक्ति के लिए भी किया जा सकता है, जो बिल्कुल शून्य प्रोग्रामिंग अनुभव के साथ सीएपीआई प्रश्नावली को ठीक से प्रोग्राम कर सकता है।

3. आंकड़े विश्लेषण में आईसीटी का अनुप्रयोग :

अनुसंधान नीतियों में निर्णय लेने को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण तथ्यों की खोज के उद्देश्य से आंकड़े का निरीक्षण, सफाई, रूपांतरण और मॉडलिंग की एक प्रक्रिया होती है। आंकड़े विश्लेषण के कई पहलू होते हैं और उन विषयों से संबंधित दृष्टिकोण होते हैं जिनमें इसका उपयोग किया जाता है। साहित्यिक और सामाजिक विज्ञान में आंकड़े विश्लेषण कैसे कार्य करता है, इसकी गहन समझ को और अधिक सक्षम करने के लिए हमें इन कोष्ठकों की गहराई में उतरना आवश्यक है।

अ) मात्रात्मक और गुणात्मक चर :

साहित्यिक, सामाजिक और व्यावहारिक विज्ञान के मुख्य उद्देश्यों में से एक मानव विशेषताओं को समझने एवं जानने में सहायता करना है। उदाहरण के तौर पर हम यह जानना चाहते हैं कि विद्यार्थी महिला शिक्षकों से खुश हैं या इसके विपरीत? इसे समझने का एक तरीका यह है कि हम जो नमूना पढ़ रहे हैं, उसके लिए प्रासंगिक आंकड़े एकत्र करें। जैसा कि आप पहले से ही जानते होंगे, एक चर एक गुणवत्ता या एक निश्चित विशेषता है, जो भिन्न होती है। यदि इसकी मात्रा अपरिवर्तित रहती है, तो इसे निरंतर कहना

बेहतर है। सामाजिक - व्यवहार विज्ञान को यह जानने में रुचि है कि कुछ विशेषताएं भिन्न क्यों है जबकि अन्य स्थिर रहती हैं।

आ) आंकड़े विश्लेषण के लिए सॉफ्टवेयर :

शोध विश्लेषण में आईसीटी हमारी मदद करता है। इनमें से कुछ मुफ्त सॉफ्टवेयर डेटा विश्लेषण का काम करते हैं। उनमें प्रमुख है - देव इन्फो, ईएलकेआई, केएनआईएमई, ऑरेंज, पांडास, पीडब्ल्यूए, आर, आरओओटी, एससीआईपीवाइ और डाटा एनॉलाइसेस आदि। जिसका विवेचन निम्नांकित रूप में प्रस्तुत किया है -

1. देवइन्फो :

यह संयुक्त राष्ट्र के संरक्षण में बनाया गया एक डेटाबेस सिस्टम है। मानवविकास की निगरानी के लिए संयुक्त राष्ट्र समूह के द्वारा इसका समर्थन किया है। देवइन्फो एक व्यवस्थित और समान तरीके से डेटा को व्यवस्थित करने, संग्रहीत करने और प्रस्तुत करनेवाला उपकरण है। इसका प्रधान लक्ष्य सरकारी विभागों, संयुक्त राष्ट्र एजेंसियों और विकास भागीदारों के बीच डेटा साझाकरण को सुविधाजनक बनाया जा सके।

2. ईएलकेआई :

इंडेक्स स्ट्रक्चर्स द्वारा समर्थित केडीडी एप्लिकेशन को विकसित करने के लिए ईएलकेआई या एनवायरमेंट एक डेटा माइनिंग सॉफ्टवेयर फ्रेमवर्क है जिसका उपयोग शिक्षण और अनुसंधान के लिए बड़े पैमाने पर किया जाता है। यह मूल रूप से जर्मनी के म्यूजिक विश्वविद्यालय के डेटाबेस सिस्टम अनुसंधान इकाई से जुड़ा हुआ है।

3. पांडा :

यह एक कंप्यूटर प्रोग्रामिंग सॉफ्टवेयर लाइब्रेरी है, जिसे डेटा हेरफेर और विश्लेषण के लिए लिखा गया है। यह डेटा संरचनाओं और समय श्रृंखला की पेशकश करने में माहिर हैं। जेएसओएन, एसक्यूएल और माइक्रोएक्सल जैसे फाइल स्वरूपों के ढेर सारे डेटा से डेटा आयात करने के लिए पंडास काफी लोकप्रिय है। पांडा विभिन्न डेटा हेरफेर संचालन जैसे विलय, पुनः आकार देने और चयन करने की अनुमति देता है।

ऐसे असंख्य संगठन हैं जो अनुसंधानकर्ता और अनुसंधान संगठनों को डेटा विश्लेषण के लिए सॉफ्टवेयर पैकेज प्रदान करते हैं। विभिन्न कंपनियां या संगठन डेटा विश्लेषण में आपस में भिड़ते हैं। अनुसंधानकर्ता को अपने डेटा का उपयोग करने या डेटा विश्लेषण का उपयोग करके किसी विशेष प्रश्न को हल करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

3. आंकड़े संग्रह पश्चात् और विश्लेषण में आईसीटी का अनुप्रयोग :

डेटा संग्रह और विश्लेषण के बाद साहित्यिक चोरी की जांच के बिना हमारा शोध कार्य अधूरा है। इस चरण को संपन्न करने के लिए हमें आईसीटी की अत्यंत आवश्यकता होती है। जिसका विवेचन निम्नांकित रूप में प्रस्तुत है -

अ) अनुसंधान और आईसीटी में उद्धरण :

हम सीमित प्रयासों के साथ प्रशंसा पत्र इकट्ठा करने के लिए आईसीटी के समर्थन के साथ विभिन्न उपकरणों का उपयोग करते हैं। ये ऐसे तंत्र हैं जिनका हम विभिन्न प्रकार की प्रणालियों के साथ उपयोग कर सकते हैं, जो हमें न्यूनतम प्रयास के साथ हमारे पेपर के लिए संपूर्ण संदर्भों को प्रारूपित करने में मदद करते हैं। जब हम एक पेपर लिखते हैं तो हमें किताबों, जर्नल्स या किसी अन्य विद्वतापूर्ण सामग्री के स्रोतों की पहचान करनी होती है जो हमने अपने लेख में स्रोत लेखक को उचित महत्व देने के लिए उपयोग किया है। यह न केवल अनुसंधान समुदाय की शैक्षणिक अखंडता को बरकरार रखता है, बल्कि एक ही समय में हमारे शोध लेख की पारदर्शिता को भी बनाएं रखता है। Citation Hunt, Citer, Citoid, MakeRef, RefScripr, WebRef आदि उपकरण आमतौर पर सूचना के आधार पर उद्धरण प्रस्तुत करते हैं। एक ही समय में आईसीटी अनुसंधानकर्ता के लिए इसी तरह के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए टेम्पलेट्स का उपयोग करता है। इनमें से कई टेम्पलेट विद्वानों की कागजों की सूची और उनके साथ उपलब्ध पत्रिकाओं की सूची से उध्दृत सभी कार्यों की एक एक वर्णमाला ग्रंथ सूची भी तैयार कर सकते हैं। जोटेरो, रिफतबूलर आदि प्रसिद्ध टेम्पलेट वेबसाइट है। जोटेरो एक स्वतंत्र और ओपन सोर्स रेफरेंस मैनजमेंट सॉफ्टवेयर है, जो ग्रंथ सूची डेटा और संबंधित अनुसंधान मामलों का प्रबंधन कर सकता है।

आ) साहित्यिक चोरी की जांच :

साहित्यिक चोरी दूसरे लेखक की भाषा, विचारों या भावों का अपने मूल काम के रूप में एक सत्तावादी उपयोग होता है। साहित्यिक चोरी को विश्वास का अकादमिक उल्लंघन और पत्रकारिता नैतिकता का उल्लंघन माना जाता है। यह दंड, निलंबन, निष्कासन, पर्याप्त जुर्माना और यहां तक कि प्रतिबंध जैसे प्रतिबंधों के अधीन है। आमतौर पर शिक्षा में 'चरम साहित्यिक चोरी' के मामलों की पहचान की गई है। 18 वीं शताब्दी में विशेष रूप से रोमांटिक आंदोलन की शुरुआत के साथ यूरोप में एक आदर्श के रूप में अनैतिकता और मौलिकता पर साहित्यिक चोरी की आधुनिक अवधारणा सामने आयी है। वर्तमान समय में साहित्यिक चोरी का पता लगाना निःशुल्क ऑनलाइन तंत्र आसान हो गया है। आईसीटी शोध लेखों की मौलिकता को बनाएं रखने और वेब पेजों पर कॉपीराइट से संबंधित चेतावनी बैनर लगाने में मदद करता है। इसके अलावा एक शोध सामग्री तैयार होने के बाद आईसीटी के प्रचुर उपयोग के माध्यम से साहित्यिक चोरी की जांच करने के लिए इसकी प्रामाणिकता का परीक्षण करने का प्रयास किया जाता है। साहित्यिक चोरी की तलाश करने वाले कुछ सॉफ्टवेयर और टूल्स है जिसके माध्यम से साहित्यिक चोरी का पता लगाया जाता है। जैसे – क्रेटेक्स, टर्निटिन, आईथेनटिकेट, वाइपर, CheckteUt-org, plagscan-com, Grammarly, Crossref, Plagiarism Software, Duplichecker, Copyleaks, PaperRater, Plagiarisma, Plagiarism Checker, Plagium, PlagScan, Plagcan, PlagTracker, Plagiarism Hunt आदि साहित्यिक चोरी की तलाश से संबंधित सॉफ्टवेयर्स है। इसके अलावा वेरिसाइट, यूनिचेक, कॉपीचेक आदि कुछ अन्य सर्च इंजन हैं।

राष्ट्रीय स्तर पर ई-शोधसिंधु की उपसमिति, राष्ट्रीय संचालन समिति की सिफारिशों के आधार पर मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार ने एक कार्यक्रम 'शोध-सुधी' की शुरुआत की है, जो 1 सितम्बर, 2019 से भारत में सभी विश्वविद्यालयों और संस्थानों में साहित्यिक चोरी का पता लगाने वाले सॉफ्टवेयर तक पहुंच प्रदान की है। इस कार्यक्रम में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सभी केंद्रीय विश्वविद्यालयों, राज्य विश्वविद्यालयों, डीम्ड विश्वविद्यालय, निजी विश्वविद्यालयों, केंद्रीय वित्त पोषित तकनीकी संस्थानों और इंटर यूनिवर्सिटी सेंटर शामिल होंगे। इस पहल के तहत, यूरकुंड (णठघणछऊ) एक वेब आधारित साहित्यिक चोरी का पता लगाने वाला सॉफ्टवेयर सिस्टम देश के सभी विश्वविद्यालयों और अंतर्ज्ञान को प्रदान किया है।

इ) शोध निष्कर्ष प्रकाशित करना :

शोध प्रक्रिया के अंतिम चरण में शोध निष्कर्षों का प्रकाशन करने के लिए अनुसंधानकर्ता आईसीटी का अनुप्रयोग करता है। अपनी पांडुलिपियों को मैन्युअल रूप से जमा करने के बजाय हम आमतौर पर ऑनलाइन जमा करवाते हैं्। क्योंकि इस प्रकार के डिजिटल प्लेटफार्म सुविधाजनक भी हैं और इसमें समय की बचत भी होती है। हम अपनी रूचि के क्षेत्रानुसार पत्रिकाओं का चयन करते हैं और आमतौर पर उनकी वेबसाइट पर जाते हैं्। हमें अपनी पांडुलिपियों को ऑनलाइन जमा करने के लिए उनके निर्देशों का सख्ती से पालन करना आवश्यक है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने गुणवत्ता पत्रिकाओं के संदर्भ सूची के निर्माण और रखरखाव के लिए कंसोर्टियम फॉर अकेडमिक एंड रिसर्च एथिक्स (केयर) की स्थापना की है। यूजीसी ने अपने जर्नल विश्लेषण के लिए एक सूचना और संचार सेल का भी गठन किया है। सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय को जर्नल विश्लेषण की यह जिम्मेदारी सौंपी गई थी। यूजीसी ने एसपीपीयू में जर्नल विश्लेषण और सत्यापन के लिए अपने आईसीटी सेल की स्थापना की है। सूचना और पुस्तकालय नेटवर्क इनफ्लिबनेट सेंटर, अहमदाबाद भारत सरकार के इस आईसीटी दृष्टिकोण के लिए सहायक एजेंसी के रूप में कार्य करता है। आईसीटी ने केयर प्रणाली के लिए जर्नल विश्लेषण प्रोटोकॉल की स्थापना की थी, जो यूजीसी की वेबसाइट पर इन पत्रिकाओं के बारे में विस्तृत जानकारी देता है।

संक्षेप में आईसीटी ने शोध के प्रत्येक चरण में शोधार्थी की मदद की है। शोध के लिए एक विषय का चयन करने से लेकर प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं और अन्य प्लेटफार्मों में हमारे कार्यों को प्रकाशित करने तक डिजिटलीकरण को अपार समर्थन प्राप्त हुआ है।

4.3.2 इंटरनेट का अनुसंधान कार्य में प्रयोग :

अनुसंधान कार्य में आईसीटी एक महत्वपूर्ण उपकरण है, जो अनुसंधान कार्य को गति देता है। जैसे ही आधुनिक युग का द्वार खुला तो मनुष्य ने चौंकाने वाले आविष्कार किए हैं, जो मानव जीवन को सहज एवं सुचारू बनाने के लिए मददगार साबित हुए हैं्। जिसका सबसे बड़ा उदाहरण है विज्ञान की महत्वपूर्ण खोज संगणक (Computer) का आविष्कार। आगे चलकर इसी कंप्यूटर को अधिक सार्थक बनाया इंटरनेट ने। वर्तमान दौर में विश्व को सही अर्थों में यदि किसी साधन, संसाधन ने ग्लोबल बनाया है तो वह कंप्यूटर और

इंटरनेट ने ही। आज ऐसा कोई क्षेत्र नहीं रहा होगा जो कंप्यूटर और प्रकारांतर से इंटरनेट से अछूता रहा होगा।

4.3.2.1 ई–बुक्स :

शिक्षा और अनुसंधान के क्षेत्र में भी कंप्यूटर और इंटरनेट काफी लाभप्रद साबित हुआ है। यूं कह सकते हैं कि शिक्षा जगत में कंप्यूटर ने क्रांति की है। आज के दौर में केजी–टू–पीजी तक अर्थात शिक्षा के आरंभिक स्तर से लेकर सर्वोच्च स्तर तक शिक्षा कंप्यूटर और इंटरनेट के सहारे ही चल रही है। कोविड–19 पेडांमिक दौर में शिक्षा क्षेत्र केवल और केवल कंप्यूटर और इंटरनेट पर ही निर्भर था। दो–तीन साल शिक्षा का संवाहक यही तो साधन के रूप में रहा है। अनुसंधान के क्षेत्र में भी इंटरनेट काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। अनुसंधान के कार्य में इंटरनेट के उपयोग कई तरह से हो रहें हैं, जिसमें सबसे महत्वपूर्ण भूमिका ई–बुक्स की रही है।

ई–बुक्स से तात्पर्य है– 'इलेक्ट्रॉनिक बुक्स या डिजिटल रूप में पुस्तक'। ई–बुक्स कागज़ की बजाय डिजिटल संचिका के रूप में होती है जिन्हें कम्प्यूटर, मोबाईल या अन्य डिजिटल यंत्रों पर पढ़ा जा सकता है। यह किताबें फाईल फॉर्मेट में होती है। यह फाईल फॉर्मेट जैसे पीडीएफ (पोर्टेबल डाक्यूमेंट्र फॉर्मेट) थझड जैसे कई रूपों में होती है, जिनमें सर्वाधिक प्रचलित पीडीएफ ही है। आज सजिल्द किताबों की जगह ई–बुक्स ही प्रचलित हो रहा है, जिसका उपयोग वर्तमान समय में अनुसंधान के लिए सर्वाधिक मात्रा में किया जा रहा है। सन् 1993 ई. में पॉल बैन ने ई–बुक्स नामक एक क्रीवेयर हाइपरकार्ड टेक्स्ट जारी किया जिसने इलैक्ट्रोनिक पेपरबैक पुस्तक के समान पेजेबल संस्करण बनाने के लिए किसी भी टेक्स्ट फाईल को आसानी से आयात करने की अनुमति दी जाती है। यह सब कुछ आसान हुआ सन् 1990 के दशक में पर्सनल कम्प्यूटर और इंटरनेट के आगमन से। 1990 के दशक में Adobe और Microsoft जैसी कंपनियों ने ई–बुक्स बनाने और पढ़ने के लिए सॉफ्टवेयर विकसित करना शुरू किया। आज विज्ञान के इस सदी में तो अमेज़न के किंडल ई–रीडर के आगमन ने तो ई–बुक्स को काफी लोकप्रिय बना दिया है, जिसका सबसे अधिक लाभ शोधार्थी को शोध कार्य में हुआ है।

ई–पुस्तकों में लेखक के इंटरव्यू, मानचित्र और एनोटेशन जैसी अतिरिक्त विशेषताएं शामिल हैं, जो अनुसंधानकर्ताओं के लिए अधिक जानकारीपूर्ण और लाभदायक हैं। पीडीएफ ई–बुक्स प्रिंट बुक्स के डिजिटल संस्करण हैं, जो मूल लेआउट को संरक्षित करते हैं, उन्हें पेशेवर दस्तावेजों, मैनुअल और तकनीकी गाइड के लिए उपयुक्त बनाते हैं। ऑडियो बुक्स किताबों के बोले गए संस्करण हैं, जो अनुसंधान कार्य में संदर्भ के लिए अत्यंत लाभदायक है। ईबुक्स को आवश्यकता के अनुसार आसानी से डाउनलोड भी किया जा सकता है। इसे ई–रीडर, स्मार्टफोन या टैबलेट जैसे इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों पर संग्रहीत भी किया जा सकता है, जिससे आप अपनी पूरी लाइब्रेरी को अपने साथ कहीं भी ले जा सकते हैं, जब चाहे तब पढ़ सकते हैं। ई–बुक्स को तुरंत एक्सेस भी किया जा सकता है। और कई ऑनलाइन रिटेलर्स शीर्षकों के विशाल चयन की पेशकश करते हैं, जिससे आपको अपनी इच्छित पुस्तक को ढूंढना और खरीदना आसान

हो जाता है। कुछ लोकप्रिय ई-बुक्स प्लेटफॉर्म्स के नाम नीचे दिए गए हैं। जिसका अनुसंधान कार्य के लिए बड़ी मात्रा में उपयोग किया जाता है। जैसे Amazon Kindle, Apple Books, Barnes Noble Nook, Google Play Books, Kobo, Project Gutenberg, Scribd, Smashwords, Wattpad, OverDrive आदि।

4.3.2.2 ई-पत्रिका की खोज :

ई-पत्रिका, या ई-ज़ीन, शब्द इलेक्ट्रॉनिक पत्रिका का संक्षिप्त रूप है। शब्द से ही, यह एक प्रकार की पत्रिका है जो परंपरागत रूप से कागजी सामग्री का उपयोग करके मुद्रित नहीं की जाती है बल्कि डिजिटल रूप से प्रकाशित और वितरित की जाती है। इस शब्द का प्रारंभिक उपयोग बहुत पुराना है जब इसका उपयोग एक नई तरह की वेबसाइट का वर्णन करने के लिए किया जाता था जिसमें लेख, चित्र और यहां तक कि टिप्पणी जैसी सामग्री का मिश्रण होता था। तब से यह एक नया सूचना माध्यम बना है।

डिजिटल पत्रिका को एक ऑनलाइन पत्रिका या, एक ई-पत्रिका के रूप में जाना जाता है। जिसे वेब या ऐप का उपयोग करके डिजिटल रूप से प्रकाशित किया जाता है, जो शोध कार्य में भी मदद करता है। प्रिंट पत्रिकाओं के विपरीत, डिजिटल पत्रिकाओं में लिंक, अधिक उच्च-रिज़ॉल्यूशन छवियां, वीडियो, ऑडियो और वेब एनिमेशन शामिल होते हैं। ई-पत्रिका प्रकाशकों ने इसे एक अवसर के रूप में देखा है, जहां वे सीधे संपर्क के बिना भी दर्शकों तक आसानी से पहुंच सकेंगे क्योंकि यह इलेक्ट्रॉनिक या डिजिटल रूप से प्रकाशित और वितरित किया जाता है और विशेष रूप से पारंपरिक प्रिंट माध्यम की तुलना में आर्थिक रूप से ई-पत्रिकाओं की सुविधा ने प्रकाशकों को मुद्रण के लिए नकदी खर्च किए बिना आसानी से जानकारी वितरित करना संभव बना दिया है। हालाँकि ई-पत्रिकाओं के उदय के साथ भी इसने पारंपरिक प्रिंट मीडिया के प्रकाशन को नहीं रोका क्योंकि उन्होंने अपने मुद्रित पत्रिकाओं के लिए एक ई-पत्रिका समकक्ष या जिसे वे इलेक्ट्रॉनिक संस्करण के द्वारा डिजिटल मीडिया को अपना लिया है, जो पत्रिका कंप्यूटर पर लिखी जाए और कंप्यूटर पर ही पढ़ी जाए उसको जाल-नियतकालिक या इलेक्ट्रानिक पत्रिका (e-zine) कह सकते हैं। इस दृष्टि से जाल-पत्रिका को भी इलेक्ट्रानिक पत्रिका कहा जा सकता है। लेकिन हर इलेक्ट्रानिक पत्रिका जाल-पत्रिका हो यह ज़रूरी नहीं है। बहुत सी इलेक्ट्रानिक पत्रिकाएं पीडीएफ प्रारूप में तैयार की जाती हैं और बहुत सी एमएसवर्ड में्। ये ई-मेल से पाठकों के पास भेजी जाती हैं या फिर डाउनलोड के लिए भी उपलब्ध होती हैं। बहुत सी कंपनियां अपने न्यूज़-लेटर इलेक्ट्रानिक-पत्रिका के रूप में प्रकाशित करती हैं। इनके प्रकाशन की तिथि निश्चित होती है और इनका संपादक मंडल भी होता है।

आधुनिक समय के अनुरूप ढलने वाले प्रिंट मीडिया में पत्रिका भी शामिल है। पत्रिकाएँ एक प्रकार का प्रकाशन है जिसमें विभिन्न कहानियाँ या लेख, चित्र और यहाँ तक कि विज्ञापन भी शामिल होते हैं। पत्रिकाएँ बनाना काफी महंगा हो सकता है क्योंकि अधिकांश प्रकाशक इसे मासिक रूप से प्रकाशित करेंगे, कुछ साप्ताहिक, और कुछ नियमित रूप से भी प्रकाशित करेंगे। चूँकि प्रकाशकों ने परिवर्तनों को अपना लिया हैं।

भारतीय भाषा के विकास के लिए संपूर्ण विश्व में रहने वाले भारतीयों के द्वारा भी प्रयास किया जा रहा है। इसी के परिणामस्वरूप आज विश्व के अनेक देशों से हिंदी में ई-पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही है। जैसे - 'हिंदी चेतना' कनाडा से प्रकाशित होती है। इसका उद्देश्य भारत की प्राचीन संस्कृति, साहित्य तथा शोध का प्रसार करना है। यह पत्रिका हिंदी लेखकों, कवियों, पाठकों एवं अनुसंधानकर्ताओं के बीच संवाद का एक सशक्त माध्यम है। 'भारत दर्शन' न्यूजीलैंड से ऑनलाइन प्रकाशित होने वाली पत्रिका है जिसमें हिंदी साहित्य, हिंदी कहानियां, लघुकथाएं, बाल साहित्य, हिंदी कविताएं तथा आलेख नियमित रूप से प्रकाशित होते हैं। इसके अलावा अनेक हिंदी पत्रिकाएं ऑनलाइन उपलब्ध है - कलायन, अभिव्यक्ति, अखंड ज्योति, साहित्य सरिता, कंप्यूटर दुनिया, शोध संचयन, मालती आदि ऐसी अनगिनत पत्रिकाएं है, जो आज अनुसंधान के कार्य में अत्यधिक उपयुक्त एवं लाभदायक रही है। यह सभी पत्र पत्रिकाएं आज इंटरनेट पर निःशुल्क उपलब्ध है, जिनके माध्यम से अनुसंधानकर्ता को ज्ञान की प्राप्ति होती है।

4.3.2.3 शोध के लिए गूगल स्कॉलर्स का प्रयोग :

गूगल स्कॉलर्स एक मुक्त रूप से सुलभ वेब सर्च इंजन है, जो विभिन्न प्रकाशन प्रारूपों और विषयों में विद्वतापूर्ण साहित्य के संपूर्ण पाठ या मेटाडेटा को अनुक्रमित करता है। यह नवंबर, 2004 से अस्तित्व में आया है। और तब से लेकर आज तक इसमें अधिकांश अकादमिक पत्रिकाओं और पुस्तकों, सम्मेलन-पत्रों, शोध-पत्रों और शोध-प्रबंधों, पूर्व-प्रिंटों, सार, तकनीकी रिपोर्टों और अन्य विद्वानों के साहित्य शामिल होते रहे हैं। यह उपयोगकर्ताओं को लेखों की डिजिटल या भौतिक प्रतियों की खोज करने की अनुमति देता है, चाहे वह ऑनलाइन हों या पुस्तकालयों में हों। यह पूर्ण पाठ पत्रिका लेख, तकनीकी रिपोर्ट, पूर्व प्रिंट, शोध, पुस्तकें और अन्य दस्तावेजों को अनुक्रमित करने में लगा हुआ है, जिसमें ऐसे वेब पृष्ठ भी शामिल किये गये हैं जिन्हें विद्वानों के रूप में लिया जाता है। चूंकि गूगल स्कॉलर्स की खोज के परिणाम वाणिज्यिक पत्रिका लेखों पर फ़ीड करते हैं, इसलिए अक्सर हम किसी लेख के केवल सार और उध्दरण की रूपरेखा तक पहुंच सकते हैं। शुल्क का भुगतान करने के बाद ही हमें उस सामग्री तक पहुंच की अनुमति दी जा सकती है जिसकी हम तलाश कर रहे हैं और ढूंढ़ रहे हैं। फिर भी 2006 से इसने हमें प्रकाशित संस्करणों और प्रमुख ओपन एक्सेस रिपॉजिटरी दोनों के संपर्क (लिंक) प्रदान किए हैं। इसमें वैयक्तिक संकाय के वेब पेजों पर पोस्ट की गई सामग्री और समानता से पहचाने जाने वाले अन्य असंरचित स्रोत शामिल किये गये हैं। गूगल स्कॉलर के इस अतिरिक्त फीचर ने अनुसंधानकर्ता द्वारा साहित्य समीक्षा के काम को बहुत मदद दी है।

4.3.2.4 शोध साहित्य की ऑनलाइन खोज :

शोध साहित्य की ऑनलाइन खोज किसी भी गंभीर शोध परियोजना में एक महत्वपूर्ण प्रारंभिक कदम के रूप में संभावित विषय पर अधिक-से-अधिक मौजूदा सामग्री का पता लगाने के उद्देश्य से सभी ग्रंथपरक उपकरण का उपयोग कर उस विषय पर प्रकाशित सूचना हेतु एक संपूर्ण खोज है। साहित्य की खोज शोध गतिविधियों में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। किसी भी नए शोध परियोजना को शुरू करते समय किसी

भी शोधकर्ता को विस्तार से जानने की आवश्यकता होती है कि उसके शोध के क्षेत्र पर क्या प्रकाशित किया जा चुका है। इसी तरह शोध परिणामों की रिपोर्टिंग के समय, एक शोधकर्ता को उसी क्षेत्र में काम करने वाले अन्य विद्वानों के साथ शोध परिणामों की तुलना करने के लिए साहित्य की समीक्षा करने की आवश्यकता होती है। इसके लिए उस विषय पर पूर्व में प्रकाशित साहित्य की विस्तृत खोज और ग्रंथसूची का संकलन आवश्यक है। किसी शोध समस्या को हल करने के लिए और यह जानने के लिए कि अन्य विद्वानों ने उसी समस्या को कैसे हल किया है।

शोधकर्ता वैज्ञानिक, प्रौद्योगिकी, सामाजिक वैज्ञानिक आदि की सूचना आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कई बार पुस्तकों, पत्रिकाओं, गैर पुस्तक सामग्री आदि जैसे कई स्रोतों में व्यापक साहित्य की ऑनलाइन खोज की जाती है। कभी-कभी इस सेवा को प्रदान करने के लिए अनौपचारिक स्रोत से भी परामर्श किया जाता है। इस प्रकार इन मामलों में साहित्य खोज को दोनों गहराई और सीमा के संदर्भ में अधिक विस्तृत होना आवश्यक है। ग्रंथ सूची के अलावा अन्य द्वितीयक स्रोतों जैसे कि संस्करण और अनुक्रमणीकरण पत्रिकाएं, समीक्षा पत्रिकाओं की सूचना खोजने हेतु परामर्श किया जाता है।

साहित्य खोज के लिए विषय, ग्रंथ सूची का संकलन महत्वपूर्ण है। एक शोधकर्ता को इसकी तैयारी में शामिल बुनियादी चरणों को अवश्य जानना चाहिए्। मैन्युअल खोज में मुद्रित स्रोतों से परामर्श किया जाता है, जबकि कंप्यूटर आधारित खोज में कंप्यूटरीकृत सूचना सेवा डाटाबेस का उपयोग किया जाता है। कंप्यूटर डाटाबेस खोज उस विषय पर प्रकाशित साहित्य की पहचान करने में सबसे अधिक कुशल है। कंप्यूटर खोजों को मुद्रित स्रोतों की मैन्युअल खोजों के साथ पूरक किया जा सकता है। किसी विशेष विषय पर कुशलता से खोज करने के लिए साहित्य खोज की ऑनलाइन प्रक्रिया को समझना अत्यंत आवश्यक है।

शोध साहित्य की ऑनलाइन खोज की आवश्यकता:

अ) अध्ययन और शोध कार्य में शोधकर्ता की मदद करने के लिए्।

आ) शोध प्रयासों के दोहराव से बचने के लिए्।

इ) शोध से संबंधित समस्याओं को हल करने में मदद करना।

ई) सीखने के तरीकों और तकनीकों में सहायता करता है, जो विशेष क्षेत्र के अध्ययन के लिए उपयुक्त है।

उ) शोधार्थियों को यह प्रदर्शित करने में मदद करती है कि शोधकर्ता का योगदान नया और दूसरों से अलग है।

संक्षेप में शोध साहित्य की खोज एक विशिष्ट विषय पर प्रकाशित सामग्री के लिए एक व्यवस्थित खोज है। यह सेवा उपयोक्ता से एक विशेष अनुरोध के जवाब में प्रलेखों को खोजने और पता लगाने से संबंधित है।

4.3.3 अनुसंधान की उपयुक्तता :

मनुष्य एक चिंतनशील प्राणी है, वह सोचता-विचारता है, अपने चारों ओर के रहस्यमय संसार को देखने और समझने का प्रयत्न करता है। वह विभिन्न प्रकार की घटनाओं के पीछे छिपे कारणों को ढूंढ निकालने की कोशिश करता है। मनुष्य ने सूर्य, चांद, तारें, आकाश, पृथ्वी, दिन-रात, ऋतुओं, आंधी, तूफान, वर्षा, नदी-पर्वत आदि को जानने का प्रयास किया है। वह प्रारंभ में इन सबको ईश्वर की सृष्टि मानकर उसे ही इन सभी का कारण मानने लगा। धीरे-धीरे प्रकृति के संबंध में उसका ज्ञान बढ़ता गया । जैसे-जैसे प्रकृति के संबंध में उसके ज्ञान में वृद्धि होती गयी, वैसे-वैसे प्रश्नों का उत्तर ढूंढता चला गया कि रात और दिन क्यों होते हैं, मौसम क्यों बदलता हैं, वर्षां क्यों होती है आदि। मनुष्य अपनी जिज्ञासु प्रवृत्ति के कारण ही बहुत कुछ जान पाया है, अनेक आविष्कार कर सका है, भौगोलिक दूरी को कम कर सका है। मनुष्य की चांद पर पहुंच प्रकृति पर उसके बढ़ते हुए नियंत्रण का ही परिणाम में है। अनुसंधान घटनाओं के बारे में ज्ञान प्राप्त करने तथा उन घटनाओं के मूल तक पहुंचने एवं कार्य कारण संबंधों का पता लगाने का एक सुव्यवस्थित वैज्ञानिक तरीका है। नवीन ज्ञान की प्राप्ति, नये सिद्धांतों का निर्माण, पुराने सिद्धांतों की सत्यता तथा विद्यमान ज्ञान में संशोधन, परिवर्धन या परिमार्जन के उद्देश्य से अनुसंधान का कार्य किया जाता है। आधुनिक युग में अनुसंधान की उपयोगिता विभिन्न क्षेत्रों में दिखाई देता है। जिसका विवेचन निम्नांकित रूप में प्रस्तुत है -

1. नवीन ज्ञान की प्राप्ति :

अनुसंधान का सबसे महत्वपूर्ण उपयोग नवीन ज्ञान की प्राप्ति से संबंधित है। उपयोगी ज्ञान की सहायता से ही प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ा जा सकता है। इस नवीन तथ्यों के आधार पर हम नये विचारों, विश्वासों और मान्यताओं को जन्म देते हैं। यह विचार समाज के अनुकूल होते हैं और इनसे सामाजिक विकास और प्रगति में सहायता प्राप्त होती है। हेरिंग के अनुसार अनुसंधान का प्रत्यक्ष कार्य ज्ञान के मौजूदा भण्डार में नवीन ज्ञान को जोड़ना है।

2. विश्वसनीय ज्ञान की प्राप्ति :

अनुसंधान के माध्यम से हमें नवीन ज्ञान की प्राप्ति तो होती ही है, साथ ही ऐसा ज्ञान प्राप्त होता है, जिस पर विश्वास किया जा सके। इस ज्ञान का परीक्षण और पुनः परीक्षण भी किया जा सकता है। जैसे यदि किसी व्यक्ति से वेश्या व्यवसाय का कारण पूछा जाय तो शायद वह एक ही उत्तर देगा और यही कहेगा कि 'यौन संबंधों सुखों में विभिन्नता की इच्छा' इसका एकमात्र कारण है। किंतु यदि अनुसंधानकर्ता से इस समस्या का कारण पूछा जायें, तो वह मज़बूरी, पितृहीनता, बुध्दिहीनता, आर्थिक संकट आदि अनेक कारण बतायेगा। यह सभी कारण विश्वसनीय होंगे क्योंकि उन्हें आंकड़ों के आधार पर प्राप्त किया गया है।

3. अज्ञानता और अंधविश्वास का नाश :

अनुसंधान ही एकमात्र ऐसा आधार है जिसके द्वारा मानव धीरे-धीरे अपनी अज्ञानता और अंधविश्वास को समाप्त कर सकता है। प्रत्येक समाज में कुछ-न-कुछ अंधविश्वास और रूढ़ियां होती है, जिनसे समाज

का अत्यंत नुकसान होता है। हमारे जीवन व्यवहार में अनेक प्रथाएं ऐसी होती हैं, जो तर्कसंगत नहीं होती हैं। अज्ञानता के कारण समाज इन विश्वासों पर चलता रहता है। इसी से जीवन में अनेक प्रकार की कठिनाइयां आती है और समस्याओं का जन्म होता है। आज हमारे समाज में क्षेत्रवाद, भाषावाद, जातिवाद, वर्गवाद, भ्रष्टाचार, तनावग्रस्त युवा, अपराध, धर्म, नैतिकता और मनोरंजन में पतन आदि जैसी विषम समस्याएं विद्यमान हैं। उनके वास्तविक कारणों को अनुसंधान के द्वारा ज्ञात करके ही इसके प्रभाव को कम किया जा सकता है। अनुसंधान के माध्यम से ही समाज में फैली अज्ञानता और अंधविश्वास को समाप्त किया जा सकता है। और सही मूल्यांकन के आधार पर समाज को आगे बढ़ाने का प्रयास किया जाता है।

4. वैज्ञानिक अध्ययन :

अनुसंधान घटनाओं और समस्याओं के वैज्ञानिक अध्ययन और विश्लेषण से संबंधित है। आधुनिक युग विज्ञान का युग है। इस युग में प्रत्येक अध्ययन को तब तक स्वीकार नहीं किया जाता, तब तक कि वह वैज्ञानिक आधार पर न हो। संक्षेप में अनुसंधान के माध्यम से साहित्य एवं समाज का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है।

5. सामाजिक जीवन की निष्पक्ष व्याख्या :

सामाजिक जीवन में मनुष्य के विचार और भावनाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इन विचारों और भावनाओं के कारण सामाजिक जीवन की सत्य प्रतिलिपि सामने नहीं आ पाती और उसमें मनुष्य के विचार और भावनाओं की प्रधानता हो जाती है। अनुसंधानकर्ता जब समाज के किसी भाग का अध्ययन करता है, तो वह अपने विचार और भावनाओं से अलग कर देता है तथा तटस्थ होकर समस्या का अवलोकन, निरीक्षण और पुनः परीक्षण करता है। ऐसा करके वह सामाजिक जीवन की निष्पक्ष तस्वीर समाज को प्रस्तुत करने में सहायक होता है।

6. समस्याओं का समाधान :

वर्तमान भारतीय समाज संक्रमणकालीन परिस्थितियों से गुजर रहा है। इस कारण भारतीय जीवन में अनेक समस्याएं व्याप्त हैं। इन समस्याओं में प्रमुख इस प्रकार है। 1) जनसंख्या वृद्धि की समस्या 2) बेरोज़गारी की समस्या 3) निर्धनता और अभाव की समस्या 4) अपराध और बाल अपराध की समस्या 5) पारिवारिक तनाव और विघटन की समस्या 6) संस्कृतिकरण तथा सांस्कृतिक विलंब की समस्या 7) भ्रष्टाचार की समस्या 8) जातिवाद एवं धर्म के आडम्बर की समस्या आदि ऐसी अनगिनत समस्याएं हैं। अत्यंत प्राचीन काल से सामाजिक विचारकों द्वारा इन समस्याओं के समाधान के प्रयास किए जाते रहे हैं। इन विचारकों ने समस्याओं को अपने दृष्टिकोण से देखा तथा समाधान के भी वही प्रयास किए। इसका परिणाम भी निराशजनक ही रहा, क्योंकि समस्याओं का समाधान नहीं हो सका। समस्याओं के समाधान के न होने का प्रमुख कारण वैज्ञानिकता का अभाव हैं। अनुसंधान यथार्थवादी दृष्टिकोण से सामाजिक समस्याओं के समाधान का प्रयास करता है। इस प्रकार भारत जैसे अर्धविकसित देश में व्याप्त समस्याओं के समाधान के लिए भी अनुसंधान की नितांत आवश्यकता है।

7. समाज कल्याण में सहायक :

समाज कल्याण वर्तमान जीवन की प्रमुख आवश्यकता है। सदियों की दासता के बाद भारत स्वतंत्र हुआ। स्वतंत्र भारत को कल्याणकारी राज्य का दर्जा प्रदान किया गया। आज भी समाज के कई वर्ग समस्याओं के शिकार हैं। ऐसी स्थिति में देश में कल्याणकारी योजनाओं की सहायता से इन वर्गों के कल्याण में वृद्धि की जा सकती है। आज की वास्तविकता यही है कि कल्याणकारी योजनाओं से संबंधित कोई भी कार्यक्रम तब तक सफल नहीं हो सकता है जब तक वैज्ञानिक अनुसंधान से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर उसे एक व्यावहारिक स्वरूप न प्रदान किया जाये। संक्षेप में अनुसंधान सामाजिक दशाओं के वैज्ञानिक अध्ययन में मदद करके सामाजिक कल्याण के वृद्धि में सहायक सिद्ध हुआ है।

8. सामाजिक प्रगति :

भारतीय लोकतंत्र का मौलिक उद्देश्य भारत को प्रगति और विकास के मार्ग की ओर ले जाना है। किसी भी समाज के विकास और प्रगति में ज्ञान की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अनुसंधान विकसित तथा अविकसित समाजों का तुलनात्मक अध्ययन करना है। इससे समाज को इच्छित विकास की ओर ले जाने में मदद मिलती है। निश्चित दिशा में अभाव में किसी भी समाज के विकास और प्रगति की कल्पना नहीं की जा सकती है। भारत में सामुदायिक विकास को सामाजिक प्रगति का आधार बनाया गया है। इसलिए आवश्यकता है कि सामुदायिक जीवन से संबंधित सही तथ्यों की जानकारी हो। इस जानकारी के लिए भी भारत में अनुसंधान की नितांत आवश्यकता है।

9. प्रशासन एवं समाज सुधार में उपयोगिता :

एक प्रशासक विभिन्न दशाओं में एक प्रभावपूर्ण भूमिका तभी निभा सकता है जब वह अपने चारों ओर की वास्तविक दशाओं से परिचित हो तथा विभिन्न समस्याओं के आधारभूत कारणों को जानता हो। ऐसा ज्ञान उसे अनुसंधान पर आधारित निष्कर्षों से ही प्राप्त हो सकता है। समाज सुधारक अपने सीमित ज्ञान के आधार पर विभिन्न समस्याओं की वास्तविक प्रकृति को ठीक से नहीं समझ पाते। वे समाज सुधारक के रूप में अपनी भूमिका प्रभावशाली ढंग से उसी समय निभा सकते हैं जब उन्हें अनुसंधान द्वारा आवश्यक ज्ञान प्रदान किया जाये।

10. उपकल्पना की जाँच का आधार :

अनुसंधान वह महत्वपूर्ण आधार है जिसके द्वारा हम विभिन्न उपकल्पनों की जांच करके किसी वास्तविक निष्कर्ष तक पहुंचते हैं। उपकल्पना की जांच के द्वारा अनुसंधान ऐसे तार्किक निष्कर्ष प्रदान करता है जिनकी सहायता से उपयोगी सिध्दांतों का निर्माण संभव हो जाता है। वास्तव में अधिकांश सामाजिक सिद्धांत सर्वकालिक नहीं होते। सामाजिक आवश्यकताओं, मूल्यों और मानवीय ज्ञान में परिवर्तन के साथ इनकी उपयोगिता में परिवर्तन होता रहता है। अनुसंधान के द्वारा ही यह ज्ञात किया जा सकता है कि अतीत के सिद्धांत वर्तमान दशाओं में किस सीमा तक उपयोगी अथवा अनुपयोगी है।

11. व्यावहारिक महत्त्व :

सैद्धांतिक लाभों के अतिरिक्त व्यावहारिक दृष्टि से भी भारत में अनुसंधान की उपयोगिता है। आज मानव सभ्यता विकास की अपनी चरम सीमा पर पहुंच रही है। समाज के अनेक वर्गों के व्यक्तियों सामाजिक संबंधों की दशाओं का ज्ञान अनिवार्य आवश्यकता है। जीवन के हर क्षेत्र में अपनी समस्याओं के समाधान में अनुसंधान से व्यावहारिक लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं।

निष्कर्षत: अनुसंधान का उद्देश्य केवल सैद्धांतिक ज्ञान में वृद्धि करना ही नहीं होता बल्कि मानवीय समस्याओं का समाधान खोजने तथा भविष्य की चुनौतियों का प्रत्युत्तर देने में भी यह उतना ही अधिक सहायक है। आज यह कल्पना भी नहीं की जा सकती कि अनुसंधान के बिना सामाजिक जीवन को संगठित और प्रगतिशील बनाया जा सकता है।

4.3.4 अनुसंधान का महत्त्व :

आधुनिक शिक्षा प्रणाली अनुसंधान के महत्व और छात्रों के लिए इसके लाभों को तेजी से पहचान रही है। अनुसंधान शैक्षिक प्रक्रिया का एक अनिवार्य घटक है, जो छात्रों को अपने आस-पास की दुनिया का पता लगाने, गंभीर रूप से सोचने और जिस सामग्री का वे अध्ययन कर रहे हैं उसकी गहरी समझ विकसित करने की अनुमति देता है। यह समस्या-समाधान, संचार और सहयोग जैसे आवश्यक कौशल विकसित करने में भी छात्रों की मदद करता है। अनुसंधान छात्रों को सफल होने के लिए आवश्यक ज्ञान प्रदान करके उन्हें भविष्य के करियर के लिए तैयार करने में मदद करता है। शोध के माध्यम से, छात्र उस क्षेत्र को बेहतर ढंग से समझ सकते हैं जिसमें उनकी रुचि है और जिस नौकरी की उन्हें एक दिन उम्मीद है। अनुसंधान छात्रों को महत्वपूर्ण सोच कौशल विकसित करने, जानकारी का मूल्यांकन करने और उनके विषय के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त करने में मदद करता है। यह छात्रों को उनके लेखन और संचार कौशल विकसित करने में भी मदद करता है, क्योंकि उन्हें अपने विचारों और निष्कर्षों को प्रभावी ढंग से दूसरों तक पहुंचाना चाहिए। शोध से छात्रों को यह सीखने में भी मदद मिलती है कि भविष्य में शोध कैसे करना है। यह उन्हें प्रश्न पूछने, परिकल्पना तैयार करने और डेटा एकत्र करने और उसका विश्लेषण करने का महत्व सिखाता है। शोध छात्रों को भविष्य में रोजगार के लिए आवश्यक कौशल, स्वतंत्र रूप से और सहयोगात्मक रूप से कैसे काम करना है, यह भी सिखाता है। अनुसंधान का महत्त्व निम्न कारणों से है -

1) अनुसंधान के माध्यम से हम अपने देश और समुदाय को अधिक संगठित बना सकते हैं।

2) अनुसंधान के माध्यम से हमें समाज में अनुकूलन और आत्मसात के संबंध में भी जानकारी प्राप्त होती है।

3) अनुसंधान द्वारा प्रौद्योगिकी और भौतिक उपलब्धियों का उचित दिशा में प्रयोग कर सकते हैं।

4) अनुसंधान से हमें जो ज्ञान प्राप्त होता है, उसकी सहायता से हम तनाव और भेदभाव की भावना को भी दूर कर सकते हैं।

5) अनुसंधान के द्वारा हमें समाज के विकास के लिए योजनाओं के निर्धारण में सहायता मिलती है।

6) अनुसंधान से व्यक्तित्व का बौद्धिक विकास होता है।

7) अनुसंधान अनेक नवीन कार्य विधियों व उत्पादों को विकसित करता है।

8) अनुसंधान पूर्वाग्रहों के निदान और निवारण में सहायक है।

9) शोध मानव ज्ञान को दिशा प्रदान करता है तथा ज्ञान भण्डार को विकसित एवं परिमार्जित करता है।

10) शोध व्यावहारिक समस्याओं के समाधान एवं पूर्वाग्रहों के निदान और निवारण में सहायक है।

11) शोध अनेक नवीन कार्यविधियों व उत्पादों को विकसित करता है।

12) शोध ज्ञान के विविध पक्षों में गहनता और सूक्ष्मता लाता है।

13) अनुसंधान हमारी आर्थिक प्रणाली में लगभग सभी सरकारी नीतियों के लिए आधार प्रदान करता है।

14) अनुसंधान के माध्यम से हम वैकल्पिक नीतियों पर विचार और इन विकल्पों में से प्रत्येक के परिणामों की जांच कर सकते हैं्।

15) अनुसंधान नए सिद्धांत का सामान्यीकरण एवं नई शैली और रचनात्मकता के विकास के लिए सहायक हो सकता है।

संक्षेप में अनुसंधान छात्रों को उनकी क्षमताओं पर विश्वास हासिल करने और अधिक पेशेवर रवैया विकसित करने में मदद करता है। करियर की तैयारी में शोध महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह छात्रों को सफल होने के लिए आवश्यक ज्ञान और कौशल हासिल करने में मदद करता है।

4.3.5 हिंदी साहित्य के अनुसंधान कार्य की स्थिति :

वर्तमान समय में हिंदी अपने देश की स्वतंत्र राजभाषा बनी है। पहले यह परकीय भाषा मानी जाती थी। इसलिए हिंदी में विविध स्तरों पर अनुसंधान होना और उसे उच्च स्तर तक पहुंचाना जरूरी है। कई सालों से साहित्य और भाषा के अध्ययन-अध्यापन के क्षेत्र में विदेश में ही नहीं बल्कि भारत में भी नये-नये प्रयोग शुरू हुए हैं्। हिंदी अन्वेषण का कार्य पिछले 70 सालों से लगातार चल रहा है। डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तथा डॉ. हरवंश लाल शर्मा हिंदी से संबंधित प्रथम थीसिस डॉ. मोहीउद्दीन कादरी द्वारा लिखित 'हिंदुस्तानी ध्वनियों का अनुसंधान' (1930) को मानते हैं्। लेकिन यह शोध प्रबंध लंदन विश्वविद्यालय में पूर्ण किया गया था और वहीं से स्वीकृत हुआ था। भारत में प्रयाग विश्वविद्यालय से स्वीकृत डॉ. बाबूराव सक्सेना का शोध-प्रबंध डॉक्टरेट उपाधि के लिए प्रथम थीसिस माना जाता है। उनके शोध का विषय था 'अवधी का विकास' (1930) साहित्य के अंतर्गत हिंदी का पहला शोध-प्रबंध डॉ. पीतांबर बडथ्वाल का 'हिंदी काव्य में निर्गुण संप्रदाय'(1932) जो काशी विश्वविद्यालय के द्वारा स्वीकृत था तब से लेकर आज तक हिंदी में हजारों शोध-प्रबंध डॉक्टरेट तथा डी.लिट के लिए स्वीकृत किए गए हैं्। आज यह अनुसंधान कार्य की विकास यात्रा निरंतर गतिशील रही है। अलग-अलग विश्वविद्यालय में स्वीकृत शोध प्रबंध का सामान्य

परिचय देने का महत्वपूर्ण कार्य डॉ. धीरेंद्र वर्मा तथा डॉ. हरवंशलाल शर्मा ने देने का सफलतम प्रयास किया है। इनमें डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के द्वारा लिखित 'हिंदी साहित्य का इतिहास' विशेष रूप से उल्लेखनीय शोध प्रबंध है।

हिंदी के क्षेत्र में कार्य करने वाले शोधार्थी को यह महसूस होने लगा है कि हिंदी के क्षेत्र में कार्य करने वाले लोगों की जानकारी सबको पता चले तथा विषयों की पुनरावृत्ति ना हो। इसलिए हर विश्वविद्यालय में जो अनुसंधान कार्य हो रहे हैं, उनकी जानकारी प्रतिवर्ष साझा की जाए्। वर्तमान युग संचार माध्यम का युग है, इंटरनेट का दौर है, इसलिए उनकी जानकारी इंटरनेट पर दी जानी चाहिए्। जिससे यह पता चलेगा की कौन किस विषय पर और किस विश्वविद्यालय में संशोधन कार्य कर रहा है। अनुसंधान कार्य की यह यात्रा कई वर्षों से जारी है और जिसके परिणाम स्वरुप हिंदी साहित्य रूपी सागर जल से भर रहा है, संपन्न हो रहा है। भारत में अनेक वर्षों से अनुसंधान कार्य हो रहा है्। भाषा, साहित्य, संस्कृति और ग्रंथ संपादन संबंधी अनेक विषयों पर हिंदी में शोध-कार्य हो रहा है्। इतना ही नहीं वर्तमान समय में विदेशों में भी यह शोध कार्य जारी है। हिंदी के लिए यह संतोषजनक तथा गर्व की बात है। इसके साथ ही यह भी जरूरी है कि विचार-विमर्श पुनःपरीक्षण, निरीक्षण करके उपलब्धियों, अभावों तथा त्रुटियों, पिष्ट-पेषण पर विचार हो।

हिंदी में सर्वप्रथम अनुसंधान कार्य संस्कृति के क्षेत्र में हुआ था। इसके बाद भाषा क्षेत्र, मध्यकालीन काव्य और अब कृतिकार तथा उनकी कृतियों पर अनुसंधान कार्य हुआ है और अभी भी यह कार्य जारी है। इस प्रकार के सभी कार्यों का आरंभ यूरोप के विश्वविद्यालय से सन 1918 से माना जाता है। गत अनेक वर्षों से लंडन, पेरिस, ऑक्सफोर्ड, पेन्सिल्वेनिया, प्लेरेंस, कोनिग्सबर्ग विश्वविद्यालयों से संस्कृति, भाषा, काव्य, काव्यशास्त्र, साहित्य एवं इतिहास और संपादन पर अनेक शोध उपाधियां दी जा चुकी है। भारत में सबसे पहले काशी तथा आगरा विश्वविद्यालयों में डी.लिट की शोध उपाधि दी जाती थी। बाद में इन विश्वविद्यालयों में तथा अन्य विश्वविद्यालयों में पीएच.डी की उपाधि प्रदान करने लगे। कलकत्ता और प्रयाग विश्वविद्यालयों में डी.लिट की उपाधि दी जाती थी और अब भी दी जाती है।

भारत में अंग्रेज शासकों के आगमन के पश्चात भारतीय विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई तथा सर्वप्रथम कलकत्ता, मद्रास, इलाहाबाद और मुंबई में पाश्चात्य शिक्षक प्रणाली के आधार पर भारतीय विश्वविद्यालयों का गठन किया गया किंतु इन विश्वविद्यालयों में हिंदी का पठन-पाठन 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में हुआ तथा 1990 ई. में हिंदी साहित्य से संबंधित प्रथम शोध प्रबंध इटालिवा विद्वान एल. पी. टैसीटरी ने फ्लोरेंस विश्विद्यालय में प्रोफेसर पेवोलिनी के निर्देशन में ' रामचरितमानस' और 'रामायण' प्रस्तुत किया। 1910 से भारत में शोध प्रबंध की एक लंबी परम्परा रही ही है।

काल एवं प्रकृति के आधार पर विद्वानों ने इस अंतराल को कई वर्गों में विभाजित करने का प्रयास किया है। इस दृष्टि से सर्व प्रथम वर्गीकरण डॉ. उदयभानु सिंह ने प्रस्तुत किया है। उन्होंने सन् 1918 ई. से हिंदी शोध का विकास माना है। उदयभानु सिंह ने हिंदी के अनुसंधान काल को चार भागों में विभाजित किया है -

1. प्रस्तावना काल – 1918 ई. से 1931 ई. तक

2. प्रारम्भ काल – 1934 ई. से 1937 ई. तक

3. विकास काल – 1938 ई. से 1950 ई. तक

4. विस्तारण काल 1951 ई. से अब तक

उपरोक्त वर्गीकरण में हिंदी अनुसंधान के विकास को स्वातंत्र्यपूर्व और स्वातंत्र्योत्तर दो कालों में विभाजित किया। इन्होंने हिंदी के साहित्यिक अनुसंधान का उद्भव 1934 ई. से मानना उचित समझा है। डॉ. हरवंशलाल शर्मा ने 1850 ई. तक की रचनाओं तथा उनके रचनाकारों से संबंधित शोधों का विषयानुसार वर्गीकरण किया है। इसी प्रकार डॉ. सत्येन्द्र ने आधुनिक साहित्य की विविध विधाओं एवं उनकी प्रवृत्तियों के आधार पर वर्गीकरण किया। हिंदी साहित्य में शोध की इस सुदीर्घ यात्रा को शोधों की वैज्ञानिकता बहुलता एवं व्याप्ति के आधार पर तीन चरणों में विभाजित करना युक्तिसंगत प्रतीत होता है–

1. प्रथम चरण (उद्भव काल) 1934 ई. से 1947 ई. तक।

2. द्वितीय चरण (उन्मेष काल) 1948 ई. से 1960 ई. तक।

3. तृतीय चरण (उत्कर्ष काल) 1961 ई. से अब तक।

1. प्रथम चरण : उद्भव काल :

सन् 1934 ई. में डॉ. बड़थ्वाल के शोध प्रबंध प्रस्तुति के उपरांत हिंदी के अनुसंधान ग्रंथों का भारतीय विश्वविद्यालयों में लेखन आरंभ हुआ्। सन् 1934 ई. से 1947 ई. तक अनेक विश्वविद्यालयों में पीएच.डी एवं डी.लिट की उपाधि हेतु शोध प्रबंध प्रस्तुत किए गए है्। इस काल के शोध प्रबंध मध्ययुगीन विषयों से संबंधित है। इस युग में शोध ग्रंथों की संख्या भी अत्यल्प रही है। इसका कारण यह है कि सन् 1948 ई. तक केवल आठ भारतीय विश्वविद्यालयों में हिंदी साहित्य से संबंधित अनुसंधान का कार्य संपन्न हो रहा था। इनमें 1940 में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रस्तुत डॉ. केशरी नारायण शुक्ल का आधुनिक काव्यधारा, डॉ. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा द्वारा प्रस्तुत प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन तथा इन्द्रनाथ मदान द्वारा प्रस्तुत आधुनिक हिंदी साहित्य की समालोचना शीर्षक शोध प्रबंध आधुनिक साहित्य से संबंध है, जबकि डॉ. रामकुमार वर्मा तथा डॉ. श्रीकृष्ण लाल के शोध प्रबंध हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन से संबंधित है। इस काल के उल्लेखनीय शोध प्रबंधों में डॉ. नगेन्द्र द्वारा प्रस्तुत 'रीतिकाल की भूमिका में देव का अध्ययन' रहा है। इस प्रथम उद्भव काल में मध्ययुग एवं काव्यशास्त्रीय विषयों पर साहित्यिक अनुसंधान कार्य कराने की अभिरुचि इसलिए भी रही क्योंकि भारतीय स्वतंत्रता की चेतना से अनुप्राणित होकर अनुसंधान कर्ताओं ने भारतीय संस्कृति एवं काव्यशास्त्र की गौरवान्वित परम्परा को ही अनुशीलन का आधार बनाया है। इसके विपरीत द्विवेदी युगीन नैतिकता एवं आदर्शवादिता के फलस्वरूप रीति युगीन काव्य को वाणी के कारण विश्वविद्यालय शोधों के प्रारंभ काल में रीति युग की अवहेलना हुई तथा डॉ. नगेन्द्र के अतिरिक्त किसी उद्भव कालीन अनुसंधान कर्ताओं ने इस काल पर शोध प्रबंध प्रस्तुत नहीं किया।

हिंदी अनुसंधान के विकास का प्रथम चरण गंभीर अध्ययन, सम्यक आलोचना एवं जीवन व्यापिनी विचारणा की दृष्टि से उल्लेखनीय है। किंतु इस काल के अनुसंधानों की सीमित संख्या को विशाल हिंदी साहित्य के सन्तरण का एक लघु प्रयास ही कहा जायेगा। राष्ट्रीय स्वाधीनता के उपरांत 1948 में हिंदी को भारतीय संविधान के अनुसार राजभाषा का गौरव प्राप्त हुआ्। इसके बाद विभिन्न भारतीय विश्वविद्यालयों में क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से अध्ययन एवं अध्यापन कार्य का प्रारंभ हुआ्। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के निर्माण के साथ ही प्रांतीय स्तर पर शिक्षा का विकेंद्रीकरण किया गया। इन विभिन्न अनुकूल परिस्थितियों के कारण साहित्येतिहास के पुनरावलोकन, प्रवृत्ति मूलक विवेचन एवं युगीन परिवेश के अभिप्रेरक, प्राचीन तथ्यों के उद्घाटन की प्रवृत्ति हिंदी अनुसंधान कर्ताओं में विकसित हुई्।

2. **द्वितीय चरण : उन्मेष काल :**

हिंदी अनुसंधान के द्वितीय चरण में उद्भव काल का विवेचन करते हुए यह कहा जाता है कि, उस युग के शोध ग्रंथ कतिपय विशिष्ट संदर्भी विशेषतः काव्यशास्त्र भक्तिकाल एवं हिंदी साहित्य के इतिहास से संबंधित है। इस काल में विविध प्रवृतियों के आधार पर शोध ग्रंथों का निर्माण हुआ्। इस युग के शोध ग्रंथों के द्वारा अखिल भारतीय साहित्यिक चेतना के निमार्ण को बल मिला इसलिए हिंदी अनुसंधान के द्वितीय चरण को उन्मेष काल की संज्ञा से विभूषित किया है। वस्तुत: इस काल में हिंदी अनुसंधान के कारक का प्रस्फुटन मात्र हुआ है, जिसका पल्लवित एवं पुष्पित रूप उत्कर्ष काल में दृष्टिगोचर होता है। इस काल में विश्वविद्यालयीन शोधों की अधिकता भी है। सन् 1947 ई. तक हिंदी साहित्य से संबंधित केवल चौबीस शोध ग्रंथों पर उपाधियां प्रदान की गयी थी। तथा उद्भव काल में अनुसंधान के क्षेत्र में केवल आठ विश्वविद्यालयों ने रचनात्मक योगदान दिया। इसके विपरीत सन् 1948 ई. से 1960 ई. तक उन्नीस विश्वविद्यालय हिंदी शोध के क्षेत्र में अग्रसर हुए तथा इस अवधि में डी.लिट उपाधि हेतु बीस और पीएच.डी उपाधि हेतु तीन सौ से अधिक शोध प्रबंध प्रस्तुत हुए्। उन्मेष काल की सर्वश्रेष्ठ विशेषता यह रही है कि, इस काल में हिंदी भाषी प्रदेश के विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त हिंदीतर प्रदेशस्थ विश्वविद्यालयों ने भी हिंदी साहित्य के अनुसंधान कार्य को एक नवीन दिशा प्रदान की। इस युग में विश्वविद्यालयों एवं शोध प्रबंधों की संख्या में अभिवृद्धि के साथ ही अनुसंधान की प्रवृतियों का विकास भी हुआ है। उद्भव काल में केवल हिंदी साहित्य के इतिहास, काव्यशास्त्र एवं भक्तिकाल से संबंधित विषयों का संस्पर्श किया था जबकि 1948 से 1960 के मध्य हिंदी साहित्य की विविध विधाओं हिंदी के विशिष्ट साहित्यकारों, साहित्यिक प्रवृतियों, साहित्येतिहास, साहित्यशास्त्र, कृतियों के तुलनात्मक अनुशीलन, विभिन्न सम्प्रदाय, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से कृतियों के महत्व, हस्तलिखित ग्रंथों के पाठानुसंधान राज्याश्रित कवि समुदायों, लोक साहित्य एवं हिन्दी साहित्य पर पड़े अन्य समकालीन एवं पूर्ववर्ती साहित्य के प्रभावों का अनुशीलन हुआ्। इसके साथ ही इस काल में शोध प्रवृत्ति का बहुमुखी विकास भी हो रहा था। हिंदी साहित्य के ज्ञाताज्ञात विविध रहस्यों का उद्घाटन करते हुए अनुसंधान कर्ताओं ने हिंदी अनुसंधान क्षेत्र को समृद्ध किया है। हिंदी अनुसंधान के उन्मेष काल की उपर्युक्त उपलब्धियों के अतिरिक्त इन शोध प्रबंधों की तथ्यात्मकता, आलोचनात्मक एवं गवेषणात्मक दृष्टि भी उद्भव कालीन प्रवृतियों से श्रेष्ठ है। अनुसंधान कर्ताओं ने इस काल

के हिंदी साहित्य की अज्ञात प्रचुर सामग्री को पाठालोचन के सिद्धांत के आधार पर परिष्कृत करके आधुनिक समीक्षकों के लिए अनुशीलन का पथ प्रशस्त किया है। इस दृष्टि से डॉ. पारसनाथ तिवारी द्वारा संपादित कबीर ग्रंथावली का विशेष योगदान है। इस रचना के आधार पर एक और पाठालोचन को सैध्दांतिक प्रतिष्ठा मिली तो दूसरी ओर कबीर साहित्य की ग्यारह प्रतियों के आधार पर एक सर्वमान्य प्रामाणिक पाठ प्रस्तुत किया है। डॉ. माताप्रसाद गुप्त द्वारा तुलसी की कृतियों की प्रामाणिक समीक्षा प्रस्तुत की गयी। इस युग के शोध प्रबंधों के माध्यम से भारतीय साहित्य के परस्पर आदान-प्रदान द्वारा राष्ट्रीय भावात्मक एकता को आश्रय मिला और जन-मानस में राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति अनुराग बढ़ा।

हिंदी साहित्य के आख्यात एवं अनाख्यात तत्वों के विश्लेषण की दृष्टि से हिंदी अनुसंधान का उन्मेष काल विशेष सफल रहा है। अनाख्यात तथ्यों के शोधन उनके यथार्थ स्वरूप के साथ के अन्वेषण एवं वस्तुनिष्ठ वैज्ञानिक अनुसंधान का प्रयास इस द्वितीय काल के अनुसंधान कर्ताओं ने किया है। आख्यात तत्वों के आलोचनात्मक अध्ययन द्वारा उनके पुनरीक्षण, युगीन दृष्टि से उनके महत्व-आकलन, गुण-दोष विवेचन एवं आलोचनात्मक अध्ययन के आधार पर प्राचीन रचनाओं को राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना के लिए उपयोगी बनाया है। इन्हीं शोध ग्रंथों के आधार पर कालांतर में मानविकी एवं जैविकी के सिद्धांतों का हिंदी साहित्य के अनुसंधान के क्षेत्र में प्रवेश हुआ, जिससे साहित्यिक के विश्लेषण के लिए कल्पना एवं संवेदना की अपेक्षा प्रतिभा एवं प्रभा को कृतियों से सत्यापन हेतु अनिवार्य तत्व माना तथा तथ्य पुष्ट प्रमाणों के स्थान पर प्रयोग एवं प्रवृत्ति पुष्ट प्रमाणों को सत्यापन के उपयुक्त बताते हुए अनुसंधान का कार्य किया है।

3. तृतीय चरण : उत्कर्ष काल :

साहित्यानुसंधान के क्षेत्र को स्वातंत्र्योत्तर अनुसंधान कर्ताओं ने ज्ञान-विज्ञान की परिधि से जोड़कर स्वच्छंदता अथवा अव्यवस्था के स्थान पर प्रमाण सम्मत एवं तर्क संगत विवेचन प्रणाली को विकसित किया। समाज वैज्ञानिक एवं प्रकृति वैज्ञानिक सिद्धांतों को इस वैज्ञानिक प्रविधि के विकास का आधार बनाया गया है। स्वाधीनता के पश्चात् भारत में वैज्ञानिक तकनीक का विकास हुआ्। वैज्ञानिक प्रगति ने अंशत: अथवा पूर्णतः भारतीय जन जीवन को प्रभावित किया है। स्वतंत्रता पूर्व भारत को वैज्ञानिक आविष्कारों के लिए परामुख रहना पड़ा किंतु स्वातंत्र्योत्तर भारत में भारतीय वैज्ञानिकों ने भारतीय भूमि को ही वैज्ञानिक गवेषणाओं का केंद्र बिन्दु बनाया। इस प्रविधिक शिशिक्षुओं ने भारतीय जन-जीवन को नवीन आविष्कारों से इतना चमत्कृत कर दिया कि राष्ट्रीय राजनय, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र जैसे मानवीय विज्ञानों के विकास का श्रेय तकनीकी शिक्षा को ही मिला। साहित्य में वैज्ञानिक तत्वों के समावेश के साथ ही वित्तीनुवर्ती संचरण की प्रवृत्ति विलुप्त प्राय हो गयी और बौध्दिक पर्यावरण से प्रभावित साहित्य सर्जना का शनै: शनै: विकास हुआ्। साहित्य की वैज्ञानिकता ने साहित्यानुसंधान की प्रवृतियों को भी वैज्ञानिक बनाने के लिए बाध्य कर दिया, क्योंकि अनुसंधान साहित्य से प्रतिश्रुत होता है।

1960 ई. के बाद इस कार्य को अधिक गति मिली क्योंकि विश्वविद्यालयों में शिक्षा के माध्यम के रूप में हिंदी को स्वीकार किये जाने के बाद शोध कार्य को आजीविका के रूप में जोड़ दिया गया। हिंदी साहित्य

का सर्वतोन्मुखी अध्ययन इस काल में आरंभ हो गया था। किंतु स्वतंत्रता के पूर्व विश्वविद्यालयों में नियुक्ति का मानदंड शैक्षिक स्तर को नहीं अपितु बौद्धिक स्तर को माना गया। आ. रामचंद्र शुक्ल, बाबू श्यामसुंदर दास, बाबू गुलाब राय, आ. नंददुलारे वाजपेयी, आ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र आदि हिंदी के निष्णात विद्वान साहित्यानुसंधान एवं शैक्षिक ज्ञान के आधार पर आचार्य पद को नहीं प्राप्त कर सके थे अपितु साहित्यिक वैदग्ध एवं प्रतिभा वैचक्षण्य से ही इस गौरवशाली पद पर आसीन हुए थे।

उत्कर्ष कालीन अनुसंधान का क्षेत्र शोधार्थियों की संख्या एवं शोध प्रबंधों की प्रस्तुति की दृष्टि से अत्यंत व्यापक है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की संस्थापना के पश्चात् विश्वविद्यालयों को शोधोन्मुखी बनाने का प्रयास किया गया। प्राकृतिक विज्ञानों के क्षेत्र में नवीन आविष्कारों के लिए विश्वस्तरीय अधुनातन प्रयोगशालाओं की स्थापना हुई। जन सामान्य के जीवन के सर्वेक्षण हेतु विभिन्न आयोगों का गठन किया जिनके द्वारा सामाजिक अभ्युत्थान को अभिप्रेरणा मिली। सन् 1960 के पश्चात् नेतृत्व एवं मानविकी के अध्ययन का धरातल पूर्णतः भारतीय पृष्ठभूमि पर निर्मित हुआ। जिसके फलस्वरूप मनोविज्ञान, दर्शन, समाजशास्त्र, जीवविज्ञान, इतिहास, संस्कृति, राजनीति, धर्म, प्राचीन एवं आधुनिक भारतीय भाषाओं विदेशी भाषाओं के आलोक में हिंदी साहित्य का अनुशीलन हुआ जिससे राष्ट्रीय ही नहीं अपितु अंत्तराष्ट्रीय भावात्मक संगमन संभव हो सका।

साहित्यानुसंधान के क्षेत्र में शोध प्रबंधों की अतिशयता का एक प्रमुख कारण यह भी रहा है कि, आलोचना एवं अनुसंधान दोनों इस काल में परस्पर पर्याय बन गये। उन्मेष काल में भारतीय एवं पाश्चात्य समीक्षा के तुलनात्मक अनुशीलन द्वारा आ. रामचंद्र शुक्ल तथा समवर्ती आलोचकों द्वारा जो प्रतिमान प्रस्थापित हुए थे उनके आधार पर नवलेखन की समीक्षा तत्कालीन समीक्षकों ने की जबकि, विश्वविद्यालयीन अध्यापकों ने प्राचीन साहित्य के अवलोकन के लिए अनुसंधान के जटिल पथ का वरण किया। आलोचना एवं अनुसंधान दो पृथक साधन बने जिसका साध्य साहित्य था। तत्कालीन समय में आलोचना स्वयं एक साहित्यिक विधा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी इसलिए कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास एवं कथेत्तर साहित्य की विधाओं की भांति आलोचना को भी एक विधा के रूप में अनुसंधान को विषय बनाया गया।

हिंदी साहित्यानुसंधान के उत्कर्ष काल में शोधों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। इसीलिए इस काल को अनुसंधान के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। उपरोक्त कारणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि, इस युग में अनुसंधान विषय वैविध्य की दृष्टि से अधिक मौलिक रहा है। प्रवृत्त्यात्मक दृष्टि से भी इस युग के अनुसंधान ग्रंथों में मौलिकता का परिचय मिलता है। अज्ञेय, मुक्तिबोध, दिनकर, निराला, हरिवंशराय बच्चन, अमृतलाल नागर, इलाचंद्र जोशी, प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, उपेंद्रनाथ अश्क, नागार्जुन, यशपाल, रागेय राघव, राहुल सांकृत्यायन, मन्नू भंडारी, प्रभा खेतान, ममता कालिया, धूमिल, रघुवीर सहाय, नासिरा शर्मा आदि साहित्यकारों एवं उनकी कृतियों का अनुशीलन उत्कर्ष कालीन अनुसंधान कर्ताओं ने किया है। आधुनिक हिंदी गद्य की विभिन्न विधाओं - निबंध, आत्मकथा, जीवनी, रेखाचित्र, डायरी, यात्रा वर्णन और संस्मरण पर भी इस काल में अनुसंधान हुआ है। इतना ही नहीं फिल्म से संबंधित अनुसंधान ग्रंथों का प्रणयन भी इस युग के अनुसंधान कर्ताओं ने किया है।

4.3.6 हिंदी साहित्य के अनुसंधान कार्य की संभावनाएं :

आज संचार क्रांति के युग में संगणक और इंटरनेट ने नवीन संभावनाओं को जन्म दिया है और आने वाले समय में और भी सुधार उपस्थित होंगे किन्तु वर्तमान समय तक हिंदी अनुसंधान में अधिक संभावनाएं दृष्टिगोचर नहीं हो रही हैं और जो कुछ भी उपलब्ध है वह अनुसंधान के लिए अधिक उपयोगी नहीं है। इंटरनेट पर किसी कवि विशेष की सामान्य जानकारी तो अवश्य मिल जाएगी परन्तु कवि विशेष पर हुएं निरंतर और सामायिक कार्य और आलोचनाएं आज भी उपलब्ध नहीं है। रामचरितमानस और कबीर के दोहे पर आज तक सबसे अधिक अनुसंधान कार्य संपन्न हुआ हैं, परंतु ये सभी अनुसंधान कार्य अभी भी इंटरनेट पर उपलब्ध नहीं है।

हिंदी साहित्य अनुसंधान में अभी क्रांति आना बाकी है। हिंदी में कई प्रकार के कुंजीपटल और अनेकानेक हिंदी फ़ॉन्ट्स उपलब्ध होने के कारण भी भ्रांति उत्पन्न होती है। हिंदी साहित्य शोध के प्रारूप में एकरूपता लाने के लिए और वैश्विक आधार पर हिंदी के अनुसंधान को प्रतिष्ठित करने के लिए शोध लेखन के मानक प्रारूप को निश्चित करना आवश्यक है। अनुसंधान की गुणवत्ता को सुधारने ओर पुनरावृत्ति से बचने के लिए आवश्यकता है कि हिंदी भाषा और साहित्य के सभी प्रकाशित संदर्भ ग्रंथों की ओर रचनाओं की विशाल सूची बने और अध्यनकर्ता को आवश्यकता पड़ने पर उपलब्ध हो सके। हिंदी साहित्य में अनुसंधान योग्य कई विधाएं हैं। हिंदी साहित्य में अनुसंधान की आवश्यकता को स्पष्ट करते हुए कहते हैं– 'व्यावहारिक दृष्टि से सारा मानव ज्ञान पुस्तकों एवं पुस्तकालयों में प्राप्त किया जाता है। अन्य प्राणियों से भिन्न मानव को अतीत से प्राप्त ज्ञान को प्रत्येक पीढ़ी के साथ नवीन ज्ञान के रूप में प्रारंभ करना चाहिए।' मानव समाज अपने प्राचीन अनुभव को संग्रहित एवं सुरक्षित रखता है। ज्ञान के अथाह भण्डार में मानव का निरंतर योग सभी क्षेत्रों में उनके विकास का आधार है। साहित्य में अनुसंधान कार्य से अर्जित ज्ञान में विकास होता है। इससे भाषाओं की प्रगति भी संभव है। साहित्य में प्रतिबिंबित सामाजिक संबंधों का अनुसंधान के द्वारा सुव्यवस्थित समाज का निर्माण कर सकते हैं। हिंदी साहित्य की विधाएं हैं – काव्य, कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, निबंध, यात्रा वर्णन, आत्मकथा, रेखाचित्र, डायरी, पत्र लेखन आदि किसी क्षेत्र में अनुसंधान करने से ज्ञात होता है कि साहित्य में अनुसंधान कितना आवश्यक है। हिंदी साहित्य में इन सभी विधाओं का उन्नत स्थान है।

भाषा भावाभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण साधन है। भाषा द्वारा ही जीवन की सरस अभिव्यक्ति की जाती है। यह जो अभिव्यक्ति भाषा द्वारा की जाती है, उसका संबंध मनुष्य के आंतरिक और बाह्य जगत से होता है। साहित्य मानव जीवन के लिए ही उपयोगी होता है। लेकिन मनुष्य का संबंध प्राकृतिक सृष्टि तथा प्राणी मात्र से भी रहा है। अंततः मानव जीवन का क्षेत्र उतना ही व्यापक है जितना जीव सृष्टि। मानव की जिज्ञासा यह रही कि वह जीव सृष्टि की सभी बातों को जाने। वह यह जानना चाहता है कि सत्य क्या है? इस भौतिक प्रकृति के पीछे क्या तत्व है? सत्य और तत्व के मध्य के आवरण का स्वरूप क्या है? इन बातों की जानकारी पाना उसकी जिज्ञासा रही है और इसी जिज्ञासा की पूर्ति करने के लिए वह प्रयोगशाला तथा भौतिक-अभौतिक तत्वों की गहराई से खोजबीन करने का प्रयास करता है। वह अपने ज्ञान को सुरक्षित

रखने के लिए उसे लिपिबद्ध करता है। इस प्रकार की खोजबीन का मकसद यह रहा है कि प्राप्त ज्ञान को सुरक्षित रखते हुए नए-नए अन्वेषण करना और मौलिक बातें सामने लाना है।

साहित्य तत्वों में भाषा एक महत्वपूर्ण तत्व है। भाषा भावाभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण साधन है और अभिव्यंजना कला का आधार है। भाषानुसंधान के कई रूप हैं। किसी साहित्यिक कृति में प्रयुक्त भाषा का व्याकरणिक दृष्टि से, भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से, सांस्कृतिक दृष्टि से अथवा मिश्रित दृष्टिकोण से अध्ययन हो सकता है। इसके अलावा बोलियों के मौखिक रुप का भी अध्ययन होता है। बोलियों के भाषा वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक दोनों रूपों में अध्ययन होता है। इसमें किसी भाषा या बोली के शब्दों का ध्वनि, अर्थ परिवर्तन, वाक्य विन्यास आदि पर भाषा शास्त्र के आधार पर अनुसंधान कार्य किया जा सकता है। भाषा संबंधित अनुसंधान में देशी-विदेशी शब्द चयन, मुहावरे, लोकोक्तियां, भाषा की अभिव्यंजना शक्ति आदि का अनुसंधान होता है। इसमें दो या दो से अधिक भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन भी किया जा सकता है।

ऐतिहासिक तथा पौराणिक तथ्यों का अनुसंधान होता है। ऐतिहासिक तथ्यों का संबंध किसी घटना, किसी देश, समाज तथा देश और समाज की सांस्कृतिक और राजनीतिक स्थिति, लेखक अथवा आश्रयदाता संरक्षक की जीवनी अथवा किसी भावात्मक और विचारात्मक परम्परा के विकास से होता है। आदि सभी की खोज किसी साहित्य कृति में की जा सकती है। ऐसी कृतियों में से समकालीन समय, समाज और इसके जीवन परिचय को खोजा जाता है।

तुलनात्मक अनुसंधान, अनुसंधान की नयी और स्वतंत्र प्रणाली है। इसका कोई स्वतंत्र साहित्यशास्त्र नहीं है। किसी साहित्य का विश्लेषण, आस्वाद तथा मूल्यांकन करने के लिए तुलनात्मक अनुसंधान भी उन्हीं बातों का अनुसरण करता है, जो परम्परागत समीक्षा अपनाती है। इतना आवश्यक है कि इस अनुसंधान का मूल आधार तुलना है। साहित्य में अलग-अलग भाषाओं में भावों की अभिव्यक्ति होती है। इसमें मुख्यतः मानवीय मन ही मुख्य होता है। इन्हीं की तुलना करना इस अनुसंधान का मूल काम होता है। तुलनात्मक अनुसंधान की दृष्टि तटस्थ तथा वस्तुनिष्ठ होती है। इसमें आत्मनिंदा या आत्मश्लाघा का होना अनुचित माना जाता है। तुलनात्मक अनुसंधान का मुख्य लक्ष्य होता है विभिन्न परम्पराओं का खयाल रखना, साहित्य की अलग-अलग कृतियों में समानता या विषमताओं की खोज करना, मीमांसा करना, उनके कारक घटकों को तलाशना। इस अनुसंधान के मुख्यतः चार घटक हैं- समानता, विषमता, उद्‌गम और प्रभाव। यह अनुसंधान दो या दो से अधिक अलग-अलग भाषी समाजों में पारस्परिक संबंधों के आदान-प्रदान को प्रकाश में लाते हैं।

तुलनात्मक अनुसंधान की एक दिशा मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन से मिलती है। सृष्टि में जो स्वाभाविक तथा अस्वाभाविक घटनाएं घटित होती है उसका परिणाम मनुष्य मन पर होता है। इसकी प्रतीति भारतीय उपखंडों के सभी संवेदनशील मनों पर होती है। संवेदनशील मन उसे अभिव्यक्त करता है। जैसे एक भाषा के साहित्यिक द्वारा अभिव्यक्त मनोभाव और दूसरी अन्य भाषा के साहित्यिक द्वारा अभिव्यक्त मनोभावों की तुलना की जा सकती है। जैसे - प्रभाकर और परशराम ने पेशवा राज के अंत के बाद जिन व्यथित भावों को व्यक्त किया है और मीर-तकी-मीर ने दिल्ली की मुगल सल्तनत के विनाश के उपरांत जो

दुःख प्रकट किया है उन दोनों आयामों को अधिक अर्थपूर्ण बनाते हैं। इसी तरह अनेक अलग-अलग भारतीय भाषाओं के लोक साहित्य का अध्ययन करते समय इसका प्रमाण प्राप्त होता है। लोक साहित्य का अध्ययन करते समय मिलने वाली जानकारी, उनके समाज संस्कार केवल चकाचौंध ही निर्माण नहीं करते अपितु उनके आकलन, विश्लेषण के लिए उपयोगी सिद्ध होते हैं। जैसे - महाराष्ट्र के आदिवासी और मध्य प्रदेश के आदिवासियों के लोक साहित्य का अध्ययन। इसी तरह तुलनात्मक अनुसंधान के जरिए साहित्य प्रवृतियों के खोज की दिशा मिलती है। बहुधा एक भाषा के साहित्य विधाओं के अध्ययन के लिए पर्याप्त साधन सामग्री उपलब्ध नहीं होती तो अन्य भाषाओं का उसी के समान विधाओं से उसका अध्ययन समृद्ध हो सकता है।

हिंदी तथा मराठी साहित्य का तुलनात्मक अनुसंधान करने पर यह विदित होगा कि प्राचीन मराठी और हिंदी साहित्य में काफी समानता है। प्राचीन मराठी साहित्य का अवलोकन करने पर यह ज्ञात होता है कि इसमें सबसे महत्वपूर्ण प्रेरणा नाथपंथ की है। गोरखनाथ ने स्वयं मराठी में 'अमरनाथ संवाद' की रचना की थी। गैनीनाथ नाथ संप्रदाय के प्रवर्तक रहे हैं। निवृत्तिनाथ उनके शिष्य थे। गोरखनाथ और चर्पटनाथ के लेखन से पंजाबी साहित्य का आरंभ माना जाता है। यही परंपरा हिंदी साहित्य में भी लक्षित होती है। वैसे देखा जाए तो उस समय निर्मित साहित्य में हिंदी और पंजाबी में भेद करना कठिन काम है। बंगाल नाथपंथियों का प्रमुख शक्ति स्थल माना जाता है। गुणात्मक तथा संख्यात्मक दृष्टियों से बांग्ला में नाथ साहित्य बहुत समृद्ध है। मध्ययुगीन मराठी साहित्य का आधार तल समझने के लिए बांग्ला, पंजाबी और हिंदी के नाथ साहित्य की खोज करना तथा मराठी के साहित्य की अभिव्यक्ति की विशेषताएं निश्चित करना एक आह्वान है। नाथ पंत के प्रेरणा स्त्रोत केवल मराठी में न मिलने वाले ऐसे अनेक रूप इसमें मिल सकते हैं।

महाराष्ट्र में मध्यकाल में नामदेव ऐसे संत हुए हैं जिन्होंने मराठी के अलावा हिंदी में भी काफी पदों की रचना की है। संत हमेशा तीर्थ यात्रा करते रहे हैं। नामदेव भी अनेक जगहों पर घूमें है। उन्होंने जनता का निरीक्षण परीक्षण किया है। वे महाराष्ट्र से लेकर पंजाब तक घूमें और भक्ति का संदेश उन्होंने जनमानस में फैलाया। उन्होंने मराठी में नहीं तो हिंदी के माध्यम से पंजाब में अपना प्रभाव छोड़ा है। घूमने के कारण ही उनकी तुलना नानक के साथ की जाती है। नानक ने भी अनेक जगहों का भ्रमण करके अपनी मातृभाषा के अलावा अन्य भाषा में लोगों के हृदय में स्थान प्राप्त किया था। सिखों के पवित्र ग्रंथ में नामदेव के ही पद को स्थान दिया गया है तथा उनके तीन सौ पदों को संकलित कर ग्रंथ तैयार किया गया है। इस विवेचन से तात्पर्य यह है कि नामदेव के मराठी तथा हिंदी के काव्य की तुलनात्मक अध्ययन का महत्वपूर्ण क्षेत्र निर्माण हुआ है। इस पर अनुसंधान किया जा सकता है। विशेषकर हिंदी के लिए इसका अपना विशेष महत्व है। क्योंकि नामदेव के हिंदी पदों में विठ्ठल भगवान के सगुन भक्ति के अनेक पद उल्लेखनीय हैं लेकिन इसका प्रमुख उद्देश्य भगवान के निर्गुण रूप की अभिव्यक्ति रहा है। अंततः केवल किसी एक भाषा के पदों से नामदेव की भक्ति का अर्थ लगाना नामदेव के प्रति अन्याय होगा। कुछ लोगों ने तो मराठी के नामदेव और हिंदी के नामदेव को अलग-अलग रूप में प्रस्तुत किया है। कुछ विद्वानों ने यह प्रयास किया है कि महाराष्ट्र के नामदेव जो सगुन भक्ति प्रेमी थे वे उत्तरी भारत में पहुंचकर संत नामदेव बन गए और निर्गुण का अनुभव

करने लगे। सगुन और निर्गुण में बुनियादी अंतर मानने वाले आलोचक शायद इस बात को नहीं समझ पाये कि महाराष्ट्र के भक्ति भावना में सगुन और निर्गुण का एक अनोखा निर्माण दृष्टिगत होता है। महाराष्ट्र में संत ज्ञानेश्वर से लेकर निलोबा सभी संत महात्माओं ने भगवान के निर्गुण निराकार का मूल रूप मन में काव्य भक्ति प्रेम की उत्कटता के लिए सगुण रूप को चित्रित किया है।

मराठी और हिंदी में और एक क्षेत्र तुलनात्मक अनुसंधान में अछूता है। हिंदी और अंग्रेजी में 'रोमैण्टिसिझम' पर काफी अनुसंधान हुआ है लेकिन मराठी और हिंदी में रोमैण्टिसिझम पर अनुसंधान नहीं हुआ है। रोमैण्टिसिझम एक विशिष्टता पूर्ण व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है जो अंग्रेजी में शैली, कीट्स, स्लॅक, वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज आदि कवियों की कविता में व्यक्त हुई है वैसे ही हिंदी में भी हुई लेकिन मराठी के कवियों के साथ उसकी तुलना नहीं हुई है।

तुलनात्मक अनुसंधान का एक महत्वपूर्ण साधन अनुवाद भी है। वैसे देखा जाए तो तुलनात्मक अनुसंधान विविध भाषाओं साहित्यकृति का होता है। इसके लिए अनुवाद का महत्व अनन्य साधारण है। वैसे देखा जाए तो अनूदित साहित्य में मूल कृति का सौंदर्य, भावबोध, सही रूप में व्यक्त हो पाना कठिन होता है। अनुवाद एक ऐसा साधन है जिससे हम अन्य भाषी साहित्य को तुलना के लिए उपलब्ध करा सकते हैं। अन्य भाषा का साहित्य विश्व में झांकने के लिए एक खिड़की खुली कर देता है अनुवाद।

संक्षेप में तुलनात्मक अनुसंधान के लिए अनेक दरवाजे खुले हैं, पर जरूरत है उनमें से झांकने के लिए सही आंखों की। सही रूप से अध्ययन करने पर हिंदी तथा मराठी में ऐसी अनेक प्रवृर्तियां, कृतियों तथा अनेक स्रोत प्राप्त हो सकते हैं जिनका हम तुलनात्मक अध्ययन करके साहित्य जगत में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं।

4.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

i) निम्नलिखित वाक्यों के नीचे दिए गए उचित विकल्प चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1. सूचना और संचार प्रौद्योगिकी का तात्पर्य से है।

   अ) आईसीटी ब) आएआयटी क) आईआईएम ड) आयएमटई

2. आईसीटी का पूर्ण रूप..... है।

   अ) सूचना और संचार प्रौद्योगिकी ब) सूचना प्रौद्योगिकी

   क) संचार प्रौद्योगिकी ड) प्रौद्योगिकी

3. भारतीय इलेक्ट्रॉनिक शोध और शोध निबंधों के अंकीय डिजिटल भण्डार ....को निरूपित करता है।

   अ) मेंडली ब) शोधगंगा क) शब्दगंगा ड) आईसीटी

4. 'शोधगंगा' शब्द की रचना........ सेंटर द्वारा की गई है।

अ) रिपॉजिटरी ब) स्वयंप्रभा क) इंगलिनेट ड) एचपीसीएल

5. 'शोधगंगा'.......को डॉक्टरेट शोधपत्रों को जमा कराने का मंच प्रदान करता है।

अ) अनुसंधानकर्ता ब) पत्रकार क) निर्देशक ड) संपादक

6. मेंडली.......... में स्थित कंपनी है।

अ) अमेरिका ब) सिंगापुर क) भारत ड) लंडन

7. मेंडली का उपयोग..........के लिए किया जाता है।

अ) शोध पत्रों के प्रबंधन ब) शोध पत्रों के प्रकाशन

क) शोध प्रबंध प्रकाशन ड) शोध पत्रों को तैयार करने

8. शोधकर्ता बड़े पैमाने पर सर्वेक्षण में......... का उपयोग करते हैं।

अ) सीएपीआई ब) ट्रैक क) वेब सर्वेयर ड) इंफो पोल

9. साहित्यिक चोरी की जांच करनेवाला सॉफ्टवेयर............ हैं

अ) शोधगंगा ब) प्लेजरिजम क) माइक्रोसॉफ्ट ड) गूगल स्कॉलर

10. साहित्यिक चोरी को विश्वास का .... उल्लंघन माना जाता है।

अ) अकादमिक ब) सामाजिक क) राजनीतिक ड) धार्मिक

11. यूजीसी ने जर्नल विश्लेषण के लिए........... सेल का गठन किया है।

अ) तकनीकी ब) सूचना और संचार क) प्रौद्योगिकी ड) गूगल स्कॉलर

12. सूचना और पुस्तकालय नेटवर्क सेंटर............... में स्थित है।

अ) मुंबई ब) दिल्ली क) हैद्राबाद ड) अहमदाबाद

13. गूगल स्कॉलर........... हैं।

अ) विज्ञापन ब) वेब सर्च इंजन क) प्रकाशन ड) माध्यम

14. गूगल स्कॉलर की स्थापना........... ई. में हुई है।

अ) 2001 ब) 2002 क) 2003 ड) 2004

15. साहित्य की खोजकी गतिविधियों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

अ) पत्रकारिता ब) शोध क) लेखन ड) इंटरनेट

16. ई-पुस्तक का तात्पर्य.............. से हैं।

अ) इलेक्ट्रॉनिक पुस्तक　　ब) इलेक्ट्रिक पुस्तक

क) कंप्यूटर पुस्तक　　ड) ऑनलाइन पुस्तक

17. ई-पत्रिका का तात्पर्य........... से हैं।

अ) इलेक्ट्रॉनिक पत्रिका　　ब) इलेक्ट्रिक पत्रिका

क) कंप्यूटर पत्रिका　　ड) ऑनलाइन पत्रिका

18. .... का थीसिस डॉक्टरेट उपाधि के लिए प्रथम थीसिस माना जाता है।

अ) हजारी प्रसाद द्विवेदी　　ब) बाबूराम सक्सेना

क) रामचंद्र शुक्ल　　ड) धीरेंद्र वर्मा

19. आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के थीसिस का शीर्षक................. है।

अ) अवधी का विकास　　ब) ब्रजभाषा

क) तुलसीदास　　ड) हिंदी साहित्य का इतिहास

20. उदयभानु सिंह हिंदी के अनुसंधान काल को.............भागों में विभाजित किया है।

अ) तीन　　ब) चार　　क) पांच　　ड) छः

ii) उचित मिलान कीजिए।

य) निम्नलिखित का मिलान कीजिय।

सूची - 1	सूची - 2
1. प्रस्तावना काल	अ) 1934 ई. से 1937 ई. तक
2. प्रारम्भ काल	ब) 1918 ई. से 1931 ई. तक
3. विकास काल	क) 1951 ई. से 1950 ई. तक
4. विस्तरण काल	ड) 1938 ई. से 1950 ई. तक

A) 1-क, 2-ड, 3-ब, 4-अ

B) 1-ब, 2-अ, 3-ड, 4-क

C) 1-अ, 2-ब, 3-क, 4-ड

D) 1-ड, 2-ब, 3-क, 4-अ

a) निम्नलिखित का मिलान कीजिय।

सूची - 1	सूची - 2
1. बाबूराम सक्सेना	अ) ब्रजभाषा
2. आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी	ब) हिंदी काव्य में निर्गुण संप्रदाय
3. डॉ. पीतांबर बडथ्वाल	क) अवधी का विकास
4. डॉ. धीरेंद्र वर्मा	अ) हिंदी साहित्य का इतिहास

A) 1-क, 2-ड, 3-ब, 4-अ

B) 1-अ, 2-क, 3-ब, 4-ड

C) 1-ब, 2-अ, 3-ड, 4-क

D) 1-ड, 2-ब, 3-क, 4-अ

b) **निम्नलिखित का मिलान कीजिय।**

सूची - 1	सूची - 2
1. शोध गंगा	अ) 2004
2. मेंडली	ब) इम्फालनेट सेंटर
3. गूगल स्कॉलर	क) इनफ्लिबनेट
4. यूजीसी	ड) लंडन

A) 1-क, 2-ड, 3-अ, 4-ब

B) 1-अ, 2-क, 3-ब, 4-ड

C) 1-ब, 2-ड, 3-अ, 4-क

D) 1-ड, 2-ब, 3-क, 4-अ

iii) सही गलत का निर्णय कीजिए्।

1. नीचे दो कथन दिए गए हैं:

कथन 1 - साहित्य के अनुसंधान में आईसीटी का प्रयोग किया जाता है।

कथन 2 - शोधगंगा अनुसंधान करने वालों के लिए शोध-प्रबंध को जमा करने का मंच प्रदान करती है।

य) कथन 1 और 2 सही है।

र) कथन 1 और 2 गलत है।

ल) कथन 1 सही है, लेकिन कथन 2 गलत है।

व) कथन 1 गलत है, लेकिन कथन 2 सही है।

2. नीचे दो कथन दिए गए हैं:

कथन 1- युरोपीय प्रभाव से हिंदी के औपचारिक शोध ग्रंथों का विकास हुआ्।

कथन 2 - भारत में अंग्रेजी शासकों के आगमन के पश्चात् भारतीय विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई्।

य) कथन 1 और 2 सही है।

र) कथन १ और २ गलत है।

ल) कथन १ सही है, लेकिन कथन २ गलत है।

व) कथन १ गलत है, लेकिन कथन २ सही है।

3. नीचे दो कथन दिए गए हैं :

कथन 1 - ऐतिहासिक अनुसंधान में ऐतिहासिक तथा पौराणिक तथ्यों का अनुसंधान होता है।

कथन 2 - उत्कर्ष काल में अनुसंधान एवं आलोचना दोनों साहित्यान्वेषण के तत्व बने।

य) कथन 1 और 2 सही है।

र) कथन 1 और 2 गलत है।

ल) कथन 1 सही है, लेकिन कथन 2 गलत है।

व) कथन 1 गलत है, लेकिन कथन 2 सही है।

4.5 शब्दार्थ, संदर्भ, टिप्पणियां :

आईसीटी - सूचना और संचार प्रौद्योगिकी

मात्रात्मक - संख्यात्मक

गुणात्मक - गुणों पर आधारित, गुणवत्तापरक

डिजिटल डिवाइड - अंकीय विभाजन

अकादमिक - शैक्षिक

प्रबंधन – आयोजन करना, व्यवस्था करना

अवलोकन – निरीक्षण, ध्यानपूर्वक देखना

सर्वेक्षण – मूल्यांकन करना

उन्मेष – विकास

उत्कर्ष – उन्नति

4.6 स्वयं – अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

उत्तर – i) बहुविकल्पी प्रश्नों के उत्तर।

1.(अ) आईसीटी 2.(अ) सूचना और संचार प्रौद्योगिकी 3.(ब) शोधगंगा 4.(क) इंगलिनेट 5.(अ) अनुसंधानकर्ता 6.(ड) लंडन 7.(अ) शोध पत्रों के प्रबंधन 8.(अ) सीएपीआई 9.(ब) प्लेजरिजम 10.(अ) अकादमिक 11.(ब) सूचना और संचार 12. (ड) अहमदाबाद 13. (ब) वेब सर्च इंजन 14. (ड) 2004 15. (ब) शोध 16. (अ) इलेक्ट्रॉनिक पुस्तक 17. (अ) इलेक्ट्रॉनिक पत्रिका 18. (ब) बाबूराम सक्सेना 19. (ड) हिंदी साहित्य का इतिहास 20. (ब) चार

उत्तर – ii) उचित मिलान।

य इ) 1–ब, 2–अ, 3–ड, 4–क

र –) 1–क, 2–ड, 3–ब, 4–अ

ल उ) 1–ब, 2–ड, 3–अ, 4–क

उत्तर – iii) सही–गलत।

1. य) कथन 1 और 2 सही है।

2. य) कथन 1 और 2 सही है।

3. य) कथन 1 और 2 सही है।

4.7 सारांश :

सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से आज ई–कामर्स, ई–प्रशासन, ई–पंजीकरण, ई–मेल, ई–बैंकिंग, ई–पत्रकारिता, ई–सेवा, ई–मैरिज, ई–चौपाल, डिजिटल लाइब्रेरी, टेलीमेडिसिन, ई–बजट, स्मार्ट हाउसेज, स्मार्ट सिटी, ऑन लाइन चुनाव परिणाम, ऑन लाइन परीक्षा एवं उसके परिणाम जैसी अनेक गतिविधियों को सफलतापूर्वक अंजाम दिया जाने लगा है।

आईसीटी शोध लेखों की मौलिकता को बनाएं रखने और वेब पेजों पर कॉपीराइट से संबंधित चेतावनी बैनर लगाने में मदद करता है।

शोधकर्ता वैज्ञानिक, प्रौद्योगिकी, सामाजिक वैज्ञानिक आदि की सूचना आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कई बार पुस्तकों, पत्रिकाओं, गैर पुस्तक सामग्री आदि जैसे कई स्रोतों में व्यापक साहित्य की ऑनलाइन खोज की जाती है।

अनुसंधान शैक्षिक प्रक्रिया का एक अनिवार्य घटक है, जो छात्रों को अपने आस-पास की दुनिया का पता लगाने, गंभीर रूप से सोचने और जिस सामग्री का वे अध्ययन कर रहे हैं उसकी गहरी समझ विकसित करने की अनुमति देता है।

उत्कर्ष कालीन अनुसंधान का क्षेत्र शोधार्थियों की संख्या एवं शोध प्रबंधों की प्रस्तुति की दृष्टि से अत्यंत व्यापक है।

4.8 स्वाध्याय :

अ) निम्नलिखित दीर्घोत्तरी प्रश्नों के उत्तर लिखिए।

1. अनुसंधान कार्य में आईसीटी के अनुप्रयोग पर प्रकाश डालिए।
2. इंटरनेट का अनुसंधान कार्य में प्रयोग स्पष्ट कीजिए।
3. अनुसंधान की उपयुक्तता का विवेचन कीजिए।
4. अनुसंधान के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
5. हिंदी साहित्य के अनुसंधान कार्य की स्थिति एवं संभावनाओं पर प्रकाश डालिए।

ब) निम्नलिखित लघुत्तरी प्रश्नों के उत्तर लिखिए।

1. शोधगंगा।
2. साहित्यिक चोरी (प्लेजरिजम)।
3. शोध साहित्य की ऑनलाइन खोज।
4. ई-बुक्स।
5. ई-पत्रिका।
6. गूगल स्कॉर्ल।
7. अनुसंधान का महत्व।
8. हिंदी साहित्य में अनुसंधान की स्थिति।
9. हिंदी साहित्य में अनुसंधान की संभावनाएं।

4.9 क्षेत्रीय कार्य :

1. साहित्यिक एवं सामाजिक अनुसंधान का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।
2. सामाजिक अनुसंधान में आईसीटी का प्रयोग।
3. आधुनिक शोध प्रणालियों का अध्ययन।
4. अनुसंधान कार्य में ई-मेल, टेली-कान्फ्रेंसिंग का प्रयोग।

4.10 अतिरिक्त अध्ययन हेतु संदर्भ :

1. शोध : निकष पर - डॉ.अरोड़ा हरीश, रेखा प्रकाशन, दिल्ली, 2004
2. साहित्य शोध के विविध परिप्रेक्ष्य एवं चुनौतियां - डॉ. योगेंद्र प्रताप सिंह
3. अनुसंधान प्रविधि - डॉ.विनय मोहन शर्मा, नेशनल पेपरबैक्स, नय दिल्ली।
4. शोध एवं प्रकाशन नीतिशास्त्र - सुरेन्द्र कटारिया, श्रीराम पाण्डेय, आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स, जयपुर।
5. अनुसंधान स्वरूप और आयाम - डॉ.उमाकांत गुप्त, डॉ. ब्रजरतन जोशी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली।
6. शोध पद्धतियां - डॉ.डी.एस.बघेल, एस.बी.पी.डी.पब्लिकेशन, आगरा।
7. हिंदी अनुसंधान - विजयपाल सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

❑❑❑